बीएड – 117

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

Gender, School and Society
जेंडर, विद्यालय एवं समाज

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

संरक्षक	अध्यक्ष
प्रो. अशोक शर्मा	**प्रो. एल.आर. गुर्जर**
कुलपति	निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

संयोजक एवं सदस्य

** संयोजक	* संयोजक
डॉ. अनिल कुमार जैन	**डॉ. रजनी रंजन सिंह**
सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ	सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

प्रो. (डॉ) एल.आर. गुर्जर निदेशक (अकादमिक) वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**प्रो. जे. के. जोशी** निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रो. दिव्य प्रभा नागर पूर्व कुलपति ज.रा. नागर राजस्थान विद्यापीठ विश्वविद्यालय, उदयपुर	**प्रो. दामीना चौधरी (सेवानिवृत्त)** शिक्षा विद्यापीठ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
प्रो. अनिल शुक्ला आचार्य शिक्षा , लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ	**डॉ. रजनी रंजन सिंह** सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. अनिल कुमार जैन सह आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**डॉ. कीर्ति सिंह** सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
डॉ. पतंजलि मिश्र सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**डॉ. अखिलेश कुमार** सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

*डॉ. रजनी रंजन सिंह ,सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 13.06.2015 तक

** डॉ. अनिल कुमार जैन, सह आचार्य एवं निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ 14.06.2015 से निरन्तर

समन्वयक एवं सम्पादक

समन्वयक (बी.एड.)
डॉ. कीर्ति सिंह
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादक
डॉ. कीर्ति सिंह
सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम लेखन

1. **श्री अनिल कुमार जैन** (इकाई सं. 1)
   टीचर एजुकेटर, जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, बरुआसागर, झाँसी
2. **डॉ सुषमा सिंह** (इकाई 2,5, 8)
   रीडर, JLNTT कॉलेज, कोटा
3. **डॉ. कीर्ति सिंह** (इकाई सं. 3,4,7, 10)
   सहायक आचार्य, शिक्षा विद्यापीठ
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
4. **डॉ. प्रीति सिंह** (इकाई सं. 6, 9)
   पोस्ट डॉक्टरल फैलो
   जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

आभार

प्रो. विनय कुमार पाठक
पूर्व कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. अशोक शर्मा
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो. एल.आर. गुर्जर
निदेशक (अकादमिक)
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

प्रो. करण सिंह
निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

डॉ. सुबोध कुमार
अतिरिक्त निदेशक
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण प्रभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

उत्पादन 2016, ISBN : 978-81-8496-537-7

इस सामग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि.वि., कोटा, की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है। व.म.खु.वि.वि., कोटा के लिए कुलसचिव, व.म.खु.वि.वि., कोटा (राजस्थान) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

अनुक्रमणिका

इकाई सं.	इकाई का नाम	पेज न.
1	लिंग: लड़का अथवा लड़की होने का विभिन्न सामाजिक समूहों, क्षेत्रों और समय अवधियों में अर्थ	1
2	समाज की विविध संस्थाओं (जैसे परिवार, जाति, धर्म, संस्कृति) मीडिया या प्रचलित मीडिया (जैसे सिनेमा, विज्ञापन, गाने आदि) कानून और, राज्य के द्वारा जेंडर संबंधित भूमिकाएं की चुनौतियां और उन को सीखना	14
3	भारत में बालिका शिक्षा का अवलोकन राजस्थान के विशेष संदर्भ में (ऐतिहासिक परिपेक्ष्य से वर्तमान तक)	25
4	लिंग सम शिक्षा का संप्रत्यय,शिक्षा तक पहुँच और प्रभावित करने वाले कारक, बलिका शिक्षा को असमान करने वाले कारक	74
5	जैंडर असमानता की चुनौतियां अथवा जैंडर समता की और सुदृढ़ीकरण में विद्यालय, साथियों शिक्षकों पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों आदि की भूमिका	106
6	विषम लिंग वास्तविकताएं और डोमेन (ग्रामीण, शहरी, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति), मुसलमान और विकलांग	116
7	लैंगिक परिपेक्ष्य (सैद्धांतिक आधार)	125
8	समाजीकरण की प्रक्रिया, जैण्डर की पहचान का निर्माण विविध संस्थाओं (जैसे परिवार, जाति, धर्म, संस्कृति) मीडिया और प्रचलित मीडिया (जैसे सिनेमा, विज्ञापन, गाने आदि) कानून और राज्य सेक्सुआलेटी की ओर सकारात्मक रवैया का निर्माण	152
9	सुग्राहयी शिक्षा मे जीवन कौशल आधारित विषयों का महत्त्व-समूह शिक्षण (बौद्धिक मंथन) ब्रेन स्टारमिन, एवं दृष्य श्रव्य सांमग्री के संदर्भ में। अध्यापक, परामर्श कर्ता, अभिभावक, समाज (एन.जी.ओ.) के सहयोग एवं भूमिका	163
10	पाठन-पठन प्रक्रिया में लिंग संवेदीकरण (पाठ्यक्रम का निर्माण (लिंग परिपेक्ष्य में), शिक्षण-प्रशिक्षण में लिंग संवेदीकरण, लिंग संवेदीकरन में वर्तमान trends, मुद्दे और challenges लिंग समानता कक्षा के संदर्भ में, विधियाँ pedagogic material बनाने में जिससे लिंग समान शिक्षा हेतु)	173

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठकों से आग्रह

प्रिय पाठकों,

शिक्षक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2009 एवं 2010 में शिक्षक प्रशिक्षण के लिए दी गई अनुशंसाओं के क्रम में एनसीटीई द्वारा 2014 में तैयार किये गये पाठ्यक्रम की अनुपालना में विश्वविद्यालय ने अपनी विद्या परिषद् की स्वीकृति के पश्चात अन्तिम रूप में बने बी.एड. (ओडीएल) पाठ्यक्रम के अनुसार प्रथम वर्ष की स्व-अधिगम सामग्री (SLM) तैयार की है। यह पाठ्यसामग्री विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय के सदस्यों और विश्वविद्यालय से जुड़े हुए अन्य शिक्षाविदों के अथक प्रयास से तैयार की गई है। यह एनसीटीई द्वारा 2014 में सुझाये गये नये पाठ्यक्रम के प्रकाश में किया गया प्रथम प्रयास है। आप प्रबुद्ध पाठक हैं। आपको इस SLM के किसी विषय, उप विषय, बिन्दु या किसी भी प्रकार की त्रुटि दिखाई पड़ती है या इसके परिवर्द्धन हेतु आप कोई सुझाव देना चाहते हैं तो शिक्षा विद्यापीठ सहर्ष आपके सुझावों को अगले संस्करण में सम्मिलित करने का प्रयास करेगा। आप अपने सुझाव हमें निदेशक, शिक्षा विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, रावतभाटा रोड, कोटा - 324010 या मेल soe@vmou.ac.in पर भेजने का कष्ट करें।

धन्यवाद

(डॉ. अनिल कुमार जैन)
निदेशक
शिक्षा विद्यापीठ
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई - 1

लिंग: लड़का अथवा लड़की होने का विभिन्न सामाजिक समूहों, क्षेत्रों और समय अवधियों में अर्थ

(Gender: Meaning of being a boy or a girl across different social groups, regions and time-periods)

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 लिंग और सेक्स

1.4 विभिन्न सामाजिक समूहों में एक लडका या लडकी होने का अर्थ एवं अनुभव

- 1.4.1 सामान्य वर्ग
- 1.4.2 अन्य पिछडा वर्ग
- 1.4.3 अनुसूचित जाति एवं जनजाति
- 1.4.4 अल्पसंख्यक समुदाय

1.5 विभिन्न क्षेत्रों में एक लडका या लडकी होने का अर्थ एवं अनुभव

- 1.5.1 ग्रामीण क्षेत्रों में
- 1.5.2 शहरी क्षेत्रों में

1.6 विभिन्न समयावधियों में एक लडका या लडकी होने का अर्थ एवं अनुभव

- 1.6.1 प्राचीन काल में
- 1.6.2 मध्यकाल में
- 1.6.3 ब्रिटिश काल में
- 1.6.4 आधुनिक काल

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

जेंडर एवं सेक्स के अन्तर्गत दोनों के अर्थ एवं अन्तर के बारे में अध्ययन किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में आप जेंडर एवं सेक्स का अर्थ एवं दोनों के मध्य अन्तर का अध्ययन करेंगे एवं विभिन्न सामाजिक समूहों में, क्षेत्रों और समय अवधियों में एक लडका या लडकी होने का अर्थ एवं अनुभवों का अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य (Object)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- जेंडर का अर्थ एवं परिभाषा बता सकेंगे।
- सेक्स का अर्थ एवं परिभाषा बता सकेंगे।
- जेंडर एवं सेक्स में विभेद कर सकेंगे।
- विभिन्न सामाजिक समूहों में लडका या लडकी होने का अर्थ एवं अनुभव बता सकेंगे।
- विभिन्न क्षेत्रों में लडका या लडकी होने का अर्थ एवं अनुभव बता सकेंगे।
- विभिन्न समयावधियों में लडका या लडकी होने का अर्थ एवं अनुभव बता सकेंगे।

1.3 लिंग व सेक्स (Gender and Sex)

हम अपने आसपास के वातावरण को यदि देखें, तो हमारी सामाजिक संरचना में कुछ विशेष प्रकार की भूमिकाएं एवं दायित्व पहले से निर्धारित नजर आते हैं। जैसे महिलाओं के लिये अलग भूमिकाएँ होती हैं, और पुरुषों के लिये अलग। इन्हीं के आधार पर यह निश्चित किया जाता है कि कौनसी भूमिकाओं के लिए किस प्रकार के साधनों और सुविधाओं की जरुरत होगी।

“राजू बचपन से ही इस बात को देखता आया है, कि उसके परिवार में उसके और उसकी बड़ी बहन मीना के लिए अलग-अलग व्यवहार की अपेक्षा होती है। वह देर तक बाहर रह सकता है, लेकिन उसकी बहन को बहार अधिक समय तक रहने नहीं दिया जाता। कल की ही बात है- मीना कुछ ऊँची आवाज में बोली तो माँ ने उसे बहुत डांटा–लड़की होकर इतने ऊँचें सुर में बात करती है! लड़कियों को पराये घर जाना होता है। ऐसा राजू के साथ तो कभी नहीं हुआ। स्कूल तक तो दोनों भाई-बहन साथ में पढ़े, लेकिन अब मीना आगे नहीं पढ़ती। माता-पिता जोर शोर से उसके लिए रिश्ता देख रहे हैं। अब मीना पर बहुत साड़ी पाबंदियां लग गयी हैं, जैसे बहार खेलना, तेज आवाज में बात करना, घुमने जाना, सहेलियों के साथ फिल्म देखने जाना आदि। अधिकतर समय वो माँ के साथ रसोई के कार्य में जुटी रहती है। एक दो

बार उसने दबी आवाज में आगे पढने की बात की तो, पिताजी ने मना कर दिया। इसके विपरीत राजू की डॉक्टर बनाने के सपने देखे जा रहे हैं। उसे घर का काम भी नहीं करना पड़ता। न बहार आने-जाने की पाबन्दी है। राजू को अभी भी याद है, जब वो बहुत छोटा था तो उसकी बड़ी बहन मीना को बहार जाना होता तो माँ राजू को भी साथ जाने के लिए कहती। यह बात राजू ने अच्छी तरह समझ ली है। अब जब भी मीना बहार खड़ी दिखायी देती है, तो राजू उसकी चोटी पकड़कर उसे घर के अन्दर ले आता हैं।"

उपरोक्त कहानी पढ़कर यह प्रश्न मस्तिष्क मे उठाना सव्भाविक है कि दोनों बच्चों के साथ परिवार के सदस्यों का व्यवहार अलग- अलग क्यों है। मीना को पढाई के अवसर से क्यों वंचित रखा गया। घर का काम केवल मीना ही क्यों करती है, राजू क्यों नहीं। सब पाबंदियां मीना पर ही क्यों हैं। राजू, मीना की चोटी पकड़कर घर ले आता है, क्या यह अच्छी बात है? क्या लड़के व लड़की में यह भेद हर स्थिति, समाज, देश एवं काल में होता है?

लड़का क्या है और लड़की क्या है या लिंग और जेंडर में क्या भेद है? इन सभी बातों को समझने के लिए कि इनका शाब्दिक अर्थ को समझना बहुत जरुरी है।

शब्दकोश के अनुसार लिंग व सेक्स का अर्थ निम्नानुसार है-

लिंग (जेंडर)- व्याकरण के शब्दों का स्त्री व पुरुष विभाजन।

सेक्स- वे विशेषतायें जो स्त्री एवं पुरुष के अन्तर को स्पष्ट करतीं हैं।

सेक्स एक जैविक शब्दावली है जो स्त्री और पुरुष में जैविक भेद को प्रदर्शित करती है, वहीं जेन्डर शब्द स्त्री और पुरुष के बीच सामाजिक भेदभाव को प्रदर्शित करता है। जेन्डर शब्द इस बात की ओर इशारा करता है कि जैविक भेद के अतिरिक्त जितने भी भेद दिखते हैं, वे प्राकृतिक न होकर समाज द्वारा निर्धारित किये गये हैं और इसी में यह बात भी सम्मिलित है कि अगर यह भेद बनाया हुआ है तो दूर भी किया जा सकता है। समाज में स्त्रियों के साथ होने वाले भेदभाव के पीछे पूरी सामाजीकरण की प्रक्रिया है, जिसके तहत बचपन से ही बालक-बालिका का अलग-अलग ढंग से पालन-पोषण किया जाता है और यह फर्क सामान्यतः सभी जगह देखा जा सकता है। सामान्यतः लिंग एवं सेक्स को एकही माना जाता है एवं एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग करना आम बात है परन्तु इनमें बहुत अन्तर व्याप्त है खासकर सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में इनका अन्तर और भी व्यापक हो जाता है। सेक्स जैवकीय अवधारणा है वरन लिंग एक सामाजिक अवधारणा है। लिंग एवं सेक्स का अर्थ निम्नवत है-

- **लिंग-** लिंग शब्द अंग्रेजी के शब्द जेंडर का हिन्दी रूपान्तरण है। सामान्यतः लिंग शब्द का प्रयोग पुरुष एवं स्त्रियों के गुणों के कुलक तथा उनके समाज द्वारा उनसे अपेक्षित व्यवहारों के लिए किया जाता है। फेमिनिस्ट के अनुसार- ''सामाजिक लिंग को स्त्री-पुरुष विभेद के सामाजिक संगठन अथवा स्त्री-पुरुष के मध्य असमान सम्बन्धों की व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''
- **सेक्स-** सेक्स एक जैविकीय अवधारणा है। अन्न ओकले ने अपनी पुस्तक सेक्स जेंडर एण्ड सोसाइटी 1972 में सेक्स को परिभाषित करते हुये कहा है कि, ''सेक्स का तात्पर्य पुरुषों अथवा

स्त्रियों के जैविक विभाजन से है।'' यहां तक की संसार में सभी जीवितों को उनके जैविकीय आधार पर दो वर्गों नर तथा मादा में बांटा गया है।

इस तरह हम देखते हैं और पाते हैं कि सेक्स शब्द का प्रयोग महिलाओं एवं पुरुषों में जैविक भिन्नता दर्शाने के लिये प्रयुक्त होता है जबकि जेण्डर शब्द का प्रयोग पुरुषों एवं महिलाओं के सामाजिक एवं सांस्कृतिक भेद को दर्शाने के लिये प्रयुक्त होता है। जेण्डर विभाजन का आधार सेक्स ही है। सेक्स के आधार पर कुछ कार्यों में विभाजन अनिवार्य है जैसे कि स्त्री अपनी यौन संरचना के कारण बच्चे को जन्म देती है एवं उसे दूध पिलाकर उसका पालन पोषण करती है। पुरुषों की जैविकीय संरचना भिन्न होने के कारण किसी भी स्थिति में पुरुष यह कार्य नहीं कर सकता है। यह एक जैविकीय भेद है इसमें समाज चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता है। परन्तु सेक्स के आधार पर समाज द्वारा जो कार्यों का विभाजन किया गया है वह लैंगिक भेद के अन्तर्गत आता है। जैसे- स्त्रियों को सेना में कार्य नहीं करना चाहिए, रात्रि में अकेले नहीं घूमना चाहिए, स्त्रियां कमजोर होती, स्त्रियां भावुक होतीं हैं, स्त्रियों को सत्ता गृहण करने का अधिकार नहीं है आदि लैंगिक भेद को प्रदर्शित करने वाले तत्व हैं।

लैंगिक भेद समाज में आज से नहीं वरन सदियों से व्याप्त है। समय-समय पर स्त्रियों एवं पुरुषों की स्थिति अलग-अलग रही है एवं क्षेत्रों तथा समाजिक वर्गों के आधार पर स्त्रियों एवं पुरुषों की स्थिति अलग-अलग है जिनका विस्तृत विवरण निम्नानुसार है।

अभ्यास प्रश्नः- 1

1. लिंग शब्द अंग्रेजी के................................शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है।
2. पितृ सत्तात्मक समाज में किसकी प्रधानता होती है?

   (क) स्त्री की (ख) पुरुष की (ग) दोनों की (घ) किसी की नहीं।

1.4 विभिन्न सामाजिक समूहों में एक लडका या लडकी होने का अर्थ एवं अनुभव (Meaning and experience of being a boy or a girl across different social groups)

भारत वर्ष में पूरा मानव समुदाय अनेक सामाजिक समूहों मे विभक्त है। अलग-अलग समय में सामाजिक समूहों का निर्धारण करने का आधार अलग-अलग था। प्राचीन काल में भारत में समाज मुख्य रूप से चार समूहों ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्गों में विभाजित था जिसका विभाजन पहले कर्म के आधार पर था परन्तु समय के साथ यह विभाजन जन्म के आधार पर हो गया। समय के साथ आज समाज कई समूहों में बंट गया है एवं प्रत्येक समूह में महिलाओं एवं पुरुषों की स्थिति अलग-अलग है जिनका विवरण निम्नानुसार है।

1.4.1 सामान्य वर्ग

सामान्य वर्ग में सवर्ण वर्ग के लोग सम्मिलित हैं। सामान्यतः इस वर्ग के आर्थिक रूप से सम्पन्न एवं शिक्षा से जुडे हुये हैं अतः समाज में इन्हे उच्च स्थान प्राप्त है। सामान्य वर्ग के समुदायों में महिलाओं की

स्थिति बहुत अच्छी है इस वर्ग में महिलाओं का शोषण नगन्य है। प्राचीन काल में भी इस वर्ग के लोग आर्थिक रूप से अधिक सम्पन्न हुआ करते थे जिसका प्रभाव आज भी देखने को मिलता है। राजाओं के शासन काल मे भी इस वर्ग के लोगों को समाज में व राजसभाओं में उच्च स्थान प्रदान किया गया था। इस वर्ग के लोग कभी भी शोषण के शिकार नहीं हुये हैं। वर्तमान समाज में भी अधिकांशतः व्यक्ति जो सामान्य वर्ग के समुदाय से सम्बन्धित हैं, उच्च पदों पर आसीन हैं। परिवार में महिलायें एक गृहणी के रूप में रहतीं हैं। इस समुदाय में लडकों एवं लडकियों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान किये जाते हैं। लैंगिक असमानता दूर करने की पहल का श्रेय यदि सामाजिक वर्ग के तौर पर देखा जाये तो केवल सामान्य वर्ग को ही जाता है। परन्तु ऐसे सामान्य वर्ग के लोग जो ग्रामीण अंचलों में निवास करते हैं वहां आज भी महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर नहीं दिये जाते हैं जिसका मुख्य कारण है ग्रामीण क्षेत्रो में विद्यालय का न होना जिस कारण अभिभावक जागरुक होते हुये भी अपनी बालिकाओं को शिक्षा प्रदान नहीं कर पाते हैं।

1.4.2 अन्य पिछडा वर्ग

पिछडा वर्ग समुदाय में सामान्यतः मध्यम वर्गीय लोग निवास करते हैं। इस वर्ग मे महिलाओं की स्थिति सामान्य है। महिलाऐं परिवार में केवल एक गृहणी के रूप में निवास करती हैं एवं शोषण से मुक्त हैं। इस वर्ग के लोग सामान्यतः कृषि या व्यवसाय करके अपना जीवन यापन करते हैं। आज के आधुनिक समाज मे अन्य पिछडा वर्ग में बालिकाओं को भी शिक्षा प्रदान की जाने लगी है। इस वर्ग के लोग सामान्य जीवन व्यतीत करते हैं। कुछ व्यक्ति उच्च शिक्षा गृहण करके उच्च पदों पर भी आसीन हो गये हैं परन्तु उनके द्वारा पूरे समाज के उत्थान के लिये कोई कार्य नहीं किये जाते हैं।

1.4.3 अनुसूचित जाति एवं जनजाति

अनुसूचित जाति वर्ग के लोग शिक्षा से अछूते हैं जिसका मुख्य कारण प्राचीन काल से ही समाज के सवर्ण वर्गों द्वारा इनकी उपेक्षा है। अनुसूचित जाति की पहचान उनके सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक पिछड़ेपन के आधार पर की जाती है। समाज में इस जाति के लोग चमड़े, मैला ढ़ोने आदि का व्यापार करते हैं एवं समाज में आज भी उन्हें उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता है। इस वर्ग के कुछ लोग उच्च वर्ग के द्वारा उपेक्षित होने के कारण स्वयं को अछूत एवं शिक्षा ग्रहण करने में अयोग्य समझते हैं। महिलाऐं भी शिक्षा से कोशों दूर हैं। समाज में इस समुदाय के कुछ लोगों द्वारा महिलाओं का उत्पीडन भी किया जाता है। अशिक्षा एवं गरीबी इस वर्ग के कुछ लोगों को आपराधिक प्रवत्ति की ओर बढने का मुख्य कारण है।

अनुसूचित जनजाति वर्ग का अर्थ परम्परागत समाज के ऐसे सामाजिक भाग से है जो आपस में सामाजिक, आर्थिक अथवा रक्त सम्बन्ध एवं समान संस्कृति के आधार पर जुड़े हुये हैं। अनुसूचित जनजाति वर्ग के लोग पर्वतों, जंगलों, रेगिस्तान आदि जगहों पर निवास करते हैं। भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही समाज के इस भाग को शिक्षा से वंचित रखा गया। परन्तु समाज के इस समूह में महिलाओं की स्थिति अन्य समूहों की तुलना में कहीं अच्छी है। जनजातियों में महिलायें अन्य समुदायों के सापेक्ष अत्यधिक स्वतन्त्र रूप से जीवन-यापन करतीं हैं। महिलायें पुरुषों के समान कार्य करतीं है अतः पुरुषों का महिलाओं पर कोई विशेष अंकुश नहीं है। साथ ही महिलाओं का किसी भी प्रकार से शोषण

या उत्पीडन नहीं किया जाता है। समाज का यह भाग शिक्षा से वंचित है जिस कारण आज भी इनके कानून पुराने रीति-रिवाजों पर आधारित हैं। महिलायें एवं पुरुष वर्ग भी शिक्षा गृहण नहीं करते हैं। जीविकोपार्जन के लिये ये बस्तियों के समीप झोंपड़ी बना कर रहते हैं एवं छोटे-छोटे व्यवसाय करके जीवन यापन करते हैं।

1.4.4 अल्पसंख्यक समुदाय

अल्संख्यक समुदाय का तात्पर्य ऐसे सामाजिक समूहों से है जिनकी संख्या नगन्य है। भारत में मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी आदि धर्मों को मानने वाले लोगों को अल्पसंख्यक समुदाय में रखा गया है। वर्तमान में समाज मे इनकी स्थिति अच्छी है। यदि महिलाओं की स्थिति के बारे मे कहा जाये तो मुस्लिम समुदाय को छोडकर अन्य समुदायों में महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त हैं एवं उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है। परन्तु मुस्लिम समुदाय में पर्दा प्रथा आज भी प्रचलित है, महिलाओं को अकेले बाहर जाने का अधिकार नहीं है। जिसका मुख्य कारण पहले से चली आ रही इस समुदाय की परम्परायें हैं। महिलाओं को पुरुषों समान नहीं माना जाता है, उनके लिये जो कार्य निर्धारित किये गये हैं उन्हें वही करने पडते हैं। उनके निजी कानून के अनुसार तो महिलाओं को शिक्षा गृहण करने का भी अधिकार नहीं है यहां तक की महिलाओं को मस्जिद मे जाने तक का अधिकार नहीं है। मुस्लिम सम्प्रदाय मे बहुपत्नि प्रथा भी प्रचलित है जिससे यह पता चलता है कि इस समुदाय में पत्नि को अर्धांगिनी न मानकर उपभोग की वस्तु माना जाता है एवं विवाह इनके लिये एक सौदा की भांति है। मुस्लिम वर्ग के पुरुष अधिकांशतः स्वयं का व्यवसाय स्थापित करके जीवन यापन करते हैं।

अभ्यास प्रश्नः- 2

1. किस समुदाय में स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय है?

   (क) सामान्य (ख) अन्य पिछडा वर्ग (ग) मुस्लिम (घ) उपरोक्त सभी ।

2. ....वर्ग के लोग प्राचीन काल में उच्च्व पदों पर आसीन थे।

1.5 विभिन्न क्षेत्रों में एक लडका या लडकी होने का अर्थ एवं अनुभव (Meaning and experience of being a boy or a girl across different regions)

भारत में क्षेत्रों को मुख्यतः दो भागों में बांटा जाता है, शहरी क्षेत्र एवं ग्रामीण क्षेत्र। भारत में ग्रामीण क्षेत्रों रहने वाले व्यक्तियों की संख्या शहरी क्षेत्र में रहने वालों से कहीं अधिक है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के लोगों का रहन-सहन, व्यवसाय आदि में बहुत अन्तर पाया जाता है। अतः दोनों क्षेत्रों में पुरुष एवं महिलाओं की सामाजिक स्थिति भी भिन्न-भिन्न है। लैंगिक असमानता जैसी सामाजिक कुरूतियां आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में पनप रही है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में महिलाओं एवं पुरुषों की सामाजिक स्थिति का विस्तृत विवरण निम्नवत है।

1.5.1 ग्रामीण क्षेत्रों में

भारत में आधी से अधिक आबादी ग्रामीण क्षेत्रों मे निवास करती है। ग्रामीण इलाके जो सुदूर क्षेत्रों में स्थित हैं एवं आधुनिक संसाधनों से पूर्ण रुप से दूर हैं वहां पर महिलाओं एवं पुरुषों की स्थिति वहां पर प्रचलित रीति रिवाजों पर निर्भर करती है। जैसे कि किन्ही स्थानों पर आज भी बाल-विवाह प्रथा प्रचलित है। वहां पर छोटी सी उम्र में ही बालिकाओं का विवाह कर दिया जाता है एवं प्रसव के दौरान या तो उनकी मृत्यु हो जाती है या जीवन भर किसी न किसी बीमारी की शिकार हो जाती हैं। कुछ ग्रामीण क्षेत्र जहां पंचायत प्रचलित हैं वहां आज भी पुरुषों एवं महिलाओं की स्थिति वहुत खराब है। ऐसे स्थानों पर पूर्व काल से चले आ रहे उनके लोक कानूनों के आधार पर ही निर्णय लिया जाता है। उदाहरण के तौर पर खाप पंचायतों को लिया जा सकता है जहां पर पुरुष या स्त्री अन्तर्जातीय विवाह नहीं कर सकते हैं यदि वे ऐसा करते हैं तो उन्हे दण्डित किया जाता है। ऐसे कई अन्य उनके कानून हैं जो वर्तमान भारत में अवैध हैं। कुछ ग्रामीण क्षेत्र जहां पर कुछ धनवान एवं बाहुबली लोगों का वर्चस्व है वहां पर स्त्रियों की दशा खराब है। ऐसे स्थानों पर महिलाऐं उनके लिये केवल उपभोग की वस्तु हैं।

ग्रामीण क्षेत्रो में विकास की सबसे बडी बाधा अशिक्षा है। शिक्षा के अभाव के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले पुरुष एवं स्त्रियों को न तो अपने अधिकारों के बारे में जानकारी है और न ही कर्तव्यों के बारे में पता है अर्थात ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री का स्थान एक गृहणी तक ही सीमित रह गया है। महिलाओं का कार्य केवल बच्चे पैदा करना, उनकी देखभाल करना, घर के सारे काम-काज करना एवं कृषि या अन्य कार्यां में अपने परिवार के लोगों की सहायता करना ही निर्धारित हो गया है। यहां तक कि उनकी जो बच्चियां होती हैं उन्हें भी बचपन से ही घर के काम काज करना सिखाया जाता है एवं वे शिक्षा से कोशों दूर हैं।

वे ग्रामीण क्षेत्र जो शहरों से जुड़ते जा रहे हैं वहां पर इन लोक रीति एवं रिवा जों का पतन धीरे-धीरे देखने को मिला है। शहरी क्षेत्रों से जुडे होने के कारण व्यक्तियों को सभी मूलभूत सुविधाऐं मिल रही हैं। इन ग्रामीण इलाकों में तकनीकि के आ जाने से कृषि भी लाभ का व्यवसाय हो गया है। शिक्षा के प्रचार प्रसार से बच्चियों को भी शिक्षा गृहण करने के समुचित अवसर प्राप्त हो रहे हैं। ग्रामीण इलाकों में भी विद्यालय खोले जा चुके हैं फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकांशतः बच्चे पढ़ रहे हैं एवं शिक्षा के स्तर में सकारात्मक परिणाम देखने को मिला है। शिक्षा के स्तर मे वृद्धि होने के परिणामस्वरूप बाल विवाह जैसे कई अन्य कुप्रथाओं पर स्वमेव ही रोक लग गई। सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में ही रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जा रहे हैं फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं एवं पुरुषों को घर बैठे रोजगार प्राप्त हो रहे हैं। पहले जहां ग्रामीण क्षेत्रों के व्यक्ति पूर्णतः कृषि पर निर्भर थे आज वहीं पर अपनी जीविका चलाने के अनेक साधन उपलब्ध हो गये हैं। इन ग्रामीण क्षेत्रों में लैंगिक असमानता में कमी लाने का पूरा श्रेय शिक्षा को ही जाता है।

1.5.2 शहरी क्षेत्रों में

शहरी क्षेत्रों में महिलाओं एवं पुरुषों दोनों की सामाजिक स्थिति अच्छी है। ऐसे शहरी क्षेत्र जो अभी तक पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुये अर्थात जो कस्बे के समान हैं वहां पर लैंगिक असमानता आज भी व्याप्त है। ऐसे स्थानों पर महिलाओ के लिये घर के काम काज तथा पुरुष वर्ग के लिये धन कमाना एवं अन्य

बाहर के कार्य करना निर्धारित है। परन्तु इन क्षेत्रों में महिलाओं का शोषण नहीं किया जाता है उनके साथ सामान्य व्यवहार किया जाता जिसके दो मुख्य कारण है एक शिक्षित समाज एवं कानून का डर। इन दोनों कारणों में से नारी का शोषण रोकने का श्रेय सबसे अधिक शिक्षा को जाता है। कस्बे वाले क्षेत्रों में मध्यमवर्गीय परिवारो की संख्या सबसे अधिक होती है इन स्थानों पर लोग सामान्यतः छोटे-छोटे कुटीर उद्योग स्थापित कर लेते हैं या नौकरी करते हैं तथा इन्हीं के माध्यम से अपना जीवन यापन करते हैं। अतः कस्बे वाले क्षेत्रों में महिलाओं एवं पुरुषों का जीवन सामान्य है तथा स्त्रियों का शोषण नहीं किया जाता है।

ऐसे शहरी क्षेत्र जो विकसित हो गये वहां पर महिलाये पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खडी हैं यहां तक की कुछ क्षेत्रों में महिलायें पुरुषों से भी आगे निकल रहीं हैं। शहरी क्षेत्रों में महिलाओं का जीवन अब घर की चार दीवारों तक ही सीमित नहीं रह गया है वरन् आज की स्त्री समाज के विकास मे अपना पूर्ण योगदान कर रही है। शिक्षा, जिससे पहले महिलाओं को वंचित रखा जाता था आज की नारी उसी क्षेत्र में पुरुषों से कई गुना आगे बढ़ गई हैं। शहरी क्षेत्र किसी भी प्रकार के लोक रिवाजों से पूर्णत परे है। बाल विवाह, पर्दा प्रथा जैसे रिवाजों को ताक पर रख दिया गया है, महिलायें एवं पुरुष पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं। शहरी क्षेत्रों में पुरुष एवं स्त्रियां किसी भी जाति मेंविवाह करने के लिये पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं। अर्थात कहा जा सकता है इन क्षेत्रों में महिलाऐं एवं पुरुष अपने भविष्य के लिये निर्णय स्वयं ले सकते हैं। इन क्षेत्रों में जीवकोपार्जन के लिये बड़े-बड़े उद्योग स्थापित हैं जहां पुरुष एवं स्त्रियां समान रूप से कार्य करते हैं एवं किसी भी कम्पनी या सरकारी नौकरियों में किसी भी पद के लिये एवं वेतन के लिये सेक्स के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता है। भारत में लैंगिक असमानता दूर करने का प्रारम्भिक बिन्दु शहरी क्षेत्र ही हैं।

अभ्यास प्रश्नः- 3

1. स्त्रियों की दशा आज भी दयनीय है।

   (क) ग्रामीण क्षेत्रों में (ख) शहरी क्षेत्रों में (ग) दोनो क्षेत्रों में (घ) उपरोक्त में से कोई नहीं।

2. महिलाओं की सामाजिक स्थिति खराब होने का मुख्य कारण.........................है।

1.6 विभिन्न समयावधियों में एक लडका या लडकी होने का अर्थ एवं अनुभव (Meaning and experience of being a boy or a girl across different time-periods)

भारत पुरातन काल से ही पुरुष प्रधान राष्ट्र रहा है। परन्तु विभिन्न समयावधियों में स्त्रियों एवं पुरुषों के सामाजिक स्तर में अधिक भेदभाव देखने को मिलता है। समयावधि के आधार पर समय को मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया गया है, जिनके अन्तर्गत हम महिलाओं एवं पुरुषों की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करेंगे, जिनका विवरण निम्नवत है।

1.6.1 प्राचीन काल में

प्राचीन काल के ग्रन्थों में नारी की महानताओं का वर्णन एवं प्रशंसा की गई है। इनके अनुसार नारी के बिना संसार अधूरा है। मनु ने तो नारी को घर की लक्ष्मी एवं शोभा बताते हुये यहां तक कहा है कि -''हे महाभाग! नारियां सन्तानोत्पादन के निमित्त आदर सत्कार के योग्य घर की दीप्ति है और लक्ष्मी के रूप में रहती है, इन दोनों में कोई विशेष नहीं है अर्थात् दोनों समान हैं।'' प्राचीन काल में शास्त्रों में स्त्रियों की महत्ता एवं योग्यता बताते हुये यह कहा गया है कि, स्त्री पवित्रता, कामधेनु, श्रद्धा, सिद्ध ऋषि, अन्नपूर्णा यहां तक कि सब कुछ है जो मानव के सभी प्रकार के कष्टों, संकटों एवं अभावों का निवारण करने में पूर्णतः समर्थ है। वैदिक काल में स्त्रियों को पूज्य माना जाता था जिसका पता ''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता'' सूक्ति से पता चलता है।

वैदिक काल में स्त्रियों को पुरुषों के समान शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार था। परन्तु शिक्षा का पाठ्यक्रम पृथक -प्रथक था। जैसे ब्राम्हणों की कन्याओं को वैदिक ऋचाओं की शिक्षा प्रदान की जाती थी जबकि क्षत्रिय कन्याओं को तीर-कमान, भाला, तलवार आदि चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता था परन्तु इस युग में शूद्र जाति की स्त्रियां शिक्षा प्राप्त करने से पूर्णतः वंचित थी। अर्थात स्त्रियों की शिक्षा वर्ण व्यवस्था से पूर्णतः प्रभावित थी।

प्राचीन काल में वर्ण व्यवस्था प्रचलित होने के कारण पुरुषों में शिक्षा केवल उच्च वर्ण के लोगों तक ही सीमित थी। शूद्र वर्ग के पुरुषों एवं स्त्रियों दशा अत्यन्त सोचनीय थी। इस वर्ग के लोगों का कार्य केवल उच्च वर्ग के लोगों को सेवा प्रदान करना था। शूद्र शिक्षा से पूर्णतः वंचित थे। महाभारत काल में द्रोणाचार्य द्वारा एकलब्य को शूद्र वर्ण से सम्बन्धित होने के कारण शिक्षा प्रदान न करना इसका जीवन्त उदाहरण है।

1.6.2 मध्यकाल में

भारत में मध्यकाल को मुख्यतः दो भागों में बांटा गया है, बौद्ध काल एवं मुस्लिम काल। बौद्ध धर्म की स्थापना समाज में व्याप्त वर्ण व्यवस्था को समाप्त करने एवं सभी वर्ण के पुरुष एवं स्त्रियों को समाज में समान स्थान प्रदान करने के लिए की गई थी। बौद्ध काल के प्रारम्भ में स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा गया परन्तु कालान्तर में स्त्रियों को भी पुरुषों की भांति शिक्षा प्रदान की जाने लगी। बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में स्त्रियों एवं पुरुषों को समान अधिकार प्राप्त थे। अर्थात यह कहा जा सकता है कि इस काल में महिलाओं एवं पुरुषों की सामाजिक स्थिति अच्छी थी। महिलाओं को भी महत्व दिया जाता था अशोक महान द्वारा अपनी पुत्री शंघमित्रा को बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए श्री लंका भेजना इस बात का प्रमाण है।

मुस्लिम काल आते-आते समाज में पुरुषों का वर्चस्व स्थापित हो गया एवं स्त्री केवल गृहणी बन कर रह गई। पर्दा प्रथा प्रचलित होने के कारण स्त्रियों का जीवन चार दीवारी के अन्दर ही सिमट कर रह गया और महिलाऐं शिक्षा से पूर्णतः वंचित हो गई़ं महिलाओं में अशिक्षा के कारण वे हीन भावना की शिकार होती गई फलस्वरूप इस काल में महिलाओं का व्यक्तित्व विकास पूर्णरूप से दब गया और वे सिर्फ पुरुष अनुगामिनी बन कर रह गईं आक्रमण का भय महिलाओं के लिये सबसे अधिक हानिकारक सिद्ध हुआ महिलाओं का जीवन केवल घर मे ही सीमित रह गया। मध्यकाल में महिलाओं को केवल हवस पूरा

करने की वस्तु माना जाता था। सती प्रथा प्रचलित होने के कारण इस समय में पति के मर जाने पर स्त्रियों को जिन्दा जला दिया जाता था। अधिकांशतः क्षेत्रों में बाल विवाह प्रथा प्रचलित होने के कारण महिलाओं का बचपन से ही शोषण शुरु हो जाता था। कम उम्र में मां बनने के कारण कई स्त्रियां या तो जीवन भर बीमार रहतीं थीं या मर जाती थीं।

मुस्लिम शासन काल में निरंकुश राजाओं के शासन काल में स्त्रियों की दशा और भी खराब थी। दास प्रथा प्रचलित होने के कारण दासों पर भी अत्याचार किया जाता था। सामंत वर्ग के पुरुषों एवं स्त्रिओं का जीवन उच्च कोटि का था, उनका पूरा कार्य दासों को करना पडता था। किसान वर्ग के पुरुष स्त्रियां भी उपेक्षित रहे, किसानों को कर देना पडता था जिस कारण उनकी आर्थिक स्थिति में कभी सुधार नहीं हो पाया।

मध्यकाल में केवल कुछ ही स्त्रियों ने शिक्षा ग्रहण कर पाई वो जो शासक वर्ग से सम्बन्धित थीं। इनमें गुलबदन बेगम, नूरजहां, मुमताज महल, जेब-निस्सा, जहांआरा बेगम ने उच्च शिक्षा प्राप्त थी। मध्यकाल के अन्त तक स्त्रियों की शिक्षा का स्तर इतना गिर गया था कि 19 वीं सदी के प्रारम्भ में महिलाओं की साक्षरता केवल 2 प्रतिशत रह गई।

1.6.3 ब्रिटिश काल में

ब्रिटिश युग का आरम्भ भारत में अंग्रेजों के शासन काल से माना जाता है। इस समय में स्त्रियां अशिक्षित थीं। समाज में अभी भी स्त्री को उपभोग की वस्तु माना जाता था। अंग्रेजों के शासन के कारण निम्न एवं मध्यम वर्गीय परिवारों के महिलाओं एवं पुरुषों दोनों की स्थिति दिन प्रतिदिन बदतर होने लगी। जिस वर्ग के लोगों का शोषण राजाओं द्वारा किया जाता था इसी वर्ग का शोषण अंग्रेजों द्वारा किया जाने लगा। इस समय भी भारत में पर्दा प्रथा, सती प्रथा एवं बाल विवाह प्रथा प्रचलन में थी। इस समय में महिलाओं एवं पुरुषों का कृय विकृय भी प्रचलन में था। गांधी जी ने महिलाओं की समाज में स्थिति का वर्णन किया है।

गांधी जी ने यंग इंडिया में लिखा है कि- ‘‘ये हमारी अभागी बहनें जिन्हें पुरुषों ने अपनी हवस के लिये बेच दिया है, यह बडे शर्म व दुःख की बात है। महिलाओं के लिए बड़ी ही अपमान जनक स्थिति है। पुरुष जो कानून बनाने वाला है, उसे महिलाओं के प्रति किए गए व थोपे गए अपमानजनक नियमों व कानूनों के लिए भयानक दण्ड चुकाना पड़ेगा।’’

ब्रिटिश काल के कुछ शासकों ने महिला शिक्षा के प्रोत्साहन के लिये भी कार्य किया। महिलाओं को शिक्षा प्रदान करने के लिये अलग से विश्वविद्यालय खोले जाने लगे। कुछ समाज सुधारकों जैसे महात्मा गांधी, गोपाल कृष्ण गोखले आदि ने भी महिलाओं की शिक्षा के प्रोत्साहन के लिये अथक प्रयास किये। फलस्वरूप महिलाओं के सामाजिक स्तर में वृद्धि हुई। उन्हें भी सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक दास प्रथा समाप्त हो गई अर्थात निम्न वर्ग के पुरुष एवं महिलायें स्वतंत्र जीवन यापन करने लगे।

1.6.4 आधुनिक काल मे

आधुनिक काल में पुरुष व स्त्रियां पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं जिसका मुख्य कारण शिक्षित समुदाय है। समाज में पुरुष तथा स्त्रियों को समान शिक्षा के अवसर प्राप्त हो सकें इसके लिये सरकार द्वारा कानून का निर्माण

किया गया। स्त्रियां समाज में उच्च स्थान प्राप्त कर सकें इसके लिये आज उनकी शिक्षा की उत्तम व्यवस्था है। राज्य सरकारें उनकी शिक्षा के लिये विशेष प्रोत्साहन दे रही हैं।

21 वीं सदी के आधुनिक समाज में स्त्रियां पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर चल रहीं हैं इसकी छवि किसी भी महानगर में देखी जा सकती है। आज किसी भी व्यवसाय में स्त्रियों एवं पुरुषों को समान अवसर प्रदान किये जा रहे हैं। आज स्त्री एक दासी न होकर अर्धांगिनी है। ग्रामीण क्षेत्रों को यदि छोड दिया जाये तो पर्दा प्रथा समाप्त हो गई है। बाल विवाह पर रोक लगाने के लिय कड़े कानून बना दिये गये हैं। आज के समय में स्त्रियों को प्रताडित नहीं किया जा सकता है। प्राचीन काल में कर्तव्य केवल महिलाओं के लिए होते थे वे आधुनिक समाज में पुरुषों के लिये भी निर्धारित किये गये हैं।

मधु किश्वर एवं बनिता रूप द्वारा सम्पादित 'इन सर्च आफ आन्सर्स: इंडियन वीमेन्स व्हायसेस फ्राम मानुशी' में मधु किश्वर ने लिखा है कि, ''भारत में स्त्रीत्व का जो व्यापक लोकप्रिय सांस्कृतिक आदर्श है, वह हम लोगों में से ज्यादातर के लिये फांसी का फंदा बन गया है। उस आदेश के अनुसार स्त्री निःस्वार्थ त्याग की मूर्ति है जो देती ही जाती है- अनन्त काल तक अनन्त सीमा तक वह भी गरिमा के साथ हंसते-हंसते, मांगे चाहे जो हों, चाहे जितनी अविवेकपूर्ण और हानिकारक हों, उन्हें पूरा करना उसका कर्तव्य है। वह केवल प्रेम अनुराग तथा निःस्वार्थ सेवा ही नहीं देती, बल्कि पति, बच्चों और परिवार के प्रति अपने कर्तव्य की वेदी पर अपना स्वास्थ्य और जीवन तक न्यौछावर कर देती है। परिवार में स्त्री को दासी मानने और उसके प्रति अनादर का भाव रखने की विचारधारा इतनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है कि इसके कारण स्त्रियों को लाठी और गाली से दबाना आम बात माना जाता है।''

इन सब के बावजूद लिंग-भेद को पूर्ण रूप से समाप्त करने की ओर कदम आधुनिक समाज में उठाये जा रहे हैं। आज महिलायें घर की चार दीवारी में कैद न होकर प्रत्येक उस व्यवसाय में अपना वर्चस्व दिखा रहीं हैं जहां कभी पुरुषों का आधिपत्य स्थापित हुआ करता था। प्रत्येक व्यवसाय में स्त्रियां उच्च पद को प्राप्त कर रहीं हैं। इस भेद को समाप्त करने का श्रेय केवल शिक्षा को जाता है। वर्तमान समाज में स्त्रियों की शिक्षा के दर में दिन प्रतिदिन बढोत्तरी होती जा रही है।

अभ्यास प्रश्नः- 4

3. नरियों को देवी के रूप में पूजा जाता था।

   (क) वैदिक काल में (ख) मध्यकाल में (ग) ब्रिटिश काल में (घ) उपरोक्त सभी ।

4. ....काल में नारियां पूर्ण रूप से स्वतंत्र एवं शोषण से मुक्त हैं।

5. शंघमित्रा बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये........................गई थी।

1.7 सारांश (Conclusion)

नारी के संदर्भ में हमेशा से माना गया कि वह एक 'ऑब्जेक्ट' है फिर वह चाहे पाश्चात्य में किर्केगार्द हो 'जिन्होंने नारी को जटिल रहस्मय सृष्टि माना' या फिर नीत्शे 'जिसने माना कि नारी पुरुष का सबसे

पसंदीदा या कहें कि खतरनाक खेल है', वहीं दूसरी जगह रूसो ने 'स्त्री की निर्मिति पुरुष को खुश करना स्वीकारा'।

भारतीय संदर्भों में भी स्त्री को 'सेक्स ऑब्जेक्ट' के रूप में देखा व स्वीकारा गया जहाँ उसकी उपयोगिता पुरुष को खुश करने तक ही सीमित थी। महादेवी वर्मा लिखती हैं 'स्त्री न घर का अलंकार मात्र बनकर जीवित रहना चाहती है, न देवता की मूर्ति बनकर प्राण प्रतिष्ठा चाहती है। कारण वह जान गई है की एक का अर्थ अन्य की शोभा बढ़ाना है तथा उपयोग न रहने पर फेंक दिया जाता है तथा दूसरे का अभिप्राय दूर से उस पुजापे का देखते रहना है, जिसे उसे न देकर उसी के नाम पर लोग बाँट लेंगे"।

जैसा कि हम पहले ही अध्ययन कर चुके हैं कि लैंगिक असमानता का आधार सेक्स है, परन्तु लैंगिक असमानता वर्तमान समाज में एक बहुत बड़ी बुराई है। मध्यकाल से ही महिलाओं की सामाजिक स्थिति में गिरावट शुरु होकर चरम स्थिति तक पहुंच गई थी जिस कारण महिलाऐं आज तक भी पुरुषों के समान नहीं समझा जाता है।

लैंगिक असमानता यदि आज समाज मे व्याप्त है तो उसका एक मात्र कारण हमारी कुण्ठित मानसिकता है। यदि महिलाओं को भी समाज में समान स्थान प्रदान करना है तो सर्वप्रथम अपनी मानसिकता को परिवर्तित करने की आवश्यकता है। जिन वर्गों में आज भी महिलाओं को केवल हवस पूरा करने की विषय वस्तु माना जाता है उनके लिये कठोर कानून बनाये जाने की आवश्यकता है। नारी के स्तर के में सुधार के लिये एवं नारी एवं पुरुष के सामाजिक स्तर की खाई पाटने के लिये एक और सबसे बडी आवश्यकता नारियों को शिक्षा प्रदान करना है। शिक्षित नारी ही शिक्षित समाज का निर्माण करती है अतः बालिकाओं को शिक्षा प्रदान करने के लिये अभी तक जो भी कदम उठाये गये हैं उन्हें और प्रभावी करने की आवश्यकता है एवं नई योजनाओं को भी लागू करने की आवश्यकता है।

1.8 शब्दावली (Vocabulary)

- जेंडर - लिंग
- निरंकुश - तानाशाह
- सम्प्रदाय - समाज
- जीवकोपार्जन - जीवन यापन करना

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

1. जेंडर 2. पुरुष की।

अभ्यास प्रश्न - 2

1. मुस्लिम 2. सामान्य।

अभ्यास प्रश्न - 3

1. ग्रामीण क्षेत्रों में 2. अशिक्षा।

अभ्यास प्रश्न - 4

1. वैदिक काल में 2. आधुनिक 3. श्री लंका।

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference book list)

- सिंह, अमिता (2015), *''लिंग एवं समाज''* दिल्लीः विवेक प्रकाशन.
- भंडारे, उद्धव तुकाराम (2014), *''भारतीय महिलाऐं: बदलते परिप्रेक्ष्य''* नई दिल्लीः एक्सिस बुक प्राइवेट लिमटेड.
- शर्मा, ऋचा (2011), *''भारत में सामाजिक समस्याएँ''* जयपुरः सागर पब्लिशर्स.
- हेमन्त कुमार, कुमार गौरव, कु. अनुराधा (2008), *''उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा''* लुधियानाः विनोद पब्लिकेशन्स.
- महाजन, धर्मवीर, एवं महाजन, कमलेश (2007), *''भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएँ''* दिल्लीः विवेक प्रकाशन.
- सारस्वत, स्वप्निल एवं सिंह, निशांत (2004), *''समाज राजनीति और महिलाऐं: दशा और दिशा''* नई दिल्लीः राधा पब्लिकेशन.
- आई. ई. सी. ब्यूरो *''जेंडर समानता एवं संवेदनशीलता''* पत्रिका-सुखद भविष्य की ओर, चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण निदेशालय राजस्थान, जयपुर.

1.11 अभ्यास प्रश्न (Essay type questions)

1. लिंग एवं सेक्स में अन्तर स्पष्टकीजिऐ।
2. विभिन्न सामाजिक समूहों में महिलाओं एवं पुरुषों की स्थिति का वर्णन कीजिऐ।
3. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में महिलाओं एवं पुरुषों की स्थिति का वर्णन कीजिऐ।
4. विभिन्न समयावधियों में महिलाओं एवं पुरुषों की स्थिति का तुलनात्मक विवेचन कीजिऐ।
5. लैंगिक असमानता को पूर्ण रूप से समाप्त करने के लिये सुझाव दीजिये।

इकाई - 2

समाज की विविध संस्थाओं (जैसे परिवार, जाति, धर्म, संस्कृति) मीडिया या प्रचलित मीडिया (जैसे सिनेमा, विज्ञापन, गाने आदि) कानून और, राज्य के द्वारा जैंडर संबंधितभूमिकाएं की चुनौतियां और उन को सीखना

Learning and challenges of gendered roles in society through a variety of institutions (like family, caste, religion, culture, the media and popular culture (films, advertisements, songs etc.), law and the state, and patriarch and gender

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 कार्य भूमिका के संदर्भ में जेण्डर भेद

2.4 समाज की विविध संस्थाओं द्वारा जेण्डर भूमिकाओं की चुनौतियां

2.5 जेण्डर भेदभाव और आत्म निर्भरता

2.6 जेण्डर के प्रति कानून का प्रभाव

2.7 सारांश

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.10 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तवना

देश की आधी आबादी के संदर्भ में यह कटू सत्य है कि सामाजिक, शैक्षणिक और मनोवैज्ञानिक यर्थाथता के आधार पर स्त्री पुरूषों में सामाजिक जीवन के प्राय: प्रत्येक क्षेत्र में लैगिंक असमानता विद्यमान है। स्त्री पुरूषों में व्याप्त ये असमानताएं इनकी समाज में प्रस्थिति और भूमिकाओं के आधार पर स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। प्रस्थिति को महत्वपूर्ण सूचकों यथा काम मे सहभागिता, समाजीकरण, स्वास्थ्य सुविधायें प्राप्त करने के स्तर, साक्षरता दर, सम्पत्ति में हिस्सेदारी, राजनैतिक भागीदारी, आर्थिक उत्पादन ने भागीदारी आदि में महिलाओ की स्थिति से यह भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि महिलाएं अभी पूर्ण रूप से सशक्त नहीं हुई है। विश्व की आबादी का लगभग आधा भाग महिलाओं का है, जो परिवार, समाज एवं देश के विकास में अनिवार्य एवं अति महत्वपूर्ण योगदान करती है। फिर भी परिवार और समाज में उन्हें आज तक स्थान नहीं मिल सका जिसकी वह वास्तविक हकदार है। आज भी बराबरी के इतंजार में है। आधी आबादी वह केवल घर परिवार भी जिम्मेदारी निभाने वाली मां, बहन, की भूमिका कें हीदेखी जाती है। केवल आदश्र रूप में ही उसकी कल्पना है उसे किसी भी भूमिका में देखना बहुत बड़ी चुनौति है उसके विकास के अवसर अभी बहुत दूर है। जेण्डर भेदभाव हर क्षेत्र में दिखता है। जेण्डर का संबंधउन भूमिकाओं या कार्यों से है जो समाज में स्त्रियों और पुरूषों को अलग अलग बांटती है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- जेण्डर भूमिकाओं की चुनौतियों को समझ सकेंगें
- समाज की विविध संस्थाओं द्वारा जेण्डर भेदभाव को जान सकेंगे
- मीडिया में महिलाओं की छवि को समझ सकेंगे
- महिलाएं कैसे आत्म निर्भर बने यह समझ सकेंगे

2.3 कार्य भूमिका के संदर्भ में जेण्डर भेद

भारतीय समजा आरंभ से ही पुरूष प्रधान समाज रहा है। भारतीय पुरूष प्रधान समाज में हर काल में महिलाओं को समाज में चुनौतियों का समाना करना पड़ता है। चाहे बात लालन पालन की हो, शिक्षा या स्वास्थ्य की हो, पोषण न्याय व स्वतंत्रता प्रदान हो, हर बार यह देखा गया है कि फैंसला हमेशा पुरूष के पक्ष में किया जाता है।

बलिका को संस्कार व सामाजिक, मान्यताओं की दुहाई देकर प्यार से बहना फुसला दिया जाता है। भारतीय परिवार में बाल्यावस्था से ही लड़के व लड़की मे विभेद किया जाता है, उसकी घरेलू भूमिका में भी अन्तर पाया जाता है। लड़कियों से ये अपेक्षा की जाती है कि वे घरेलू कार्यों में सहयोग करे। खाना बनाना,, सफाई करना, पानी लाना, परिवार के अन्य व्यक्तियों की सेवा करना उनके कार्य, क्षेत्र गिनवाये जाते है। घर का मुखिया पुरूष होता है महत्वपूर्ण निर्णय लेना एवं घर के बाहरी कार्यो को सम्पन्न करने का जिम्मा उनका होता है।

जब उचित शिक्षा प्राप्त कर महिला रोजगार प्राप्त करती है तो जेण्डर विभेद यहां भी दृष्टिगोचर होता है कई कार्यालयों में महिलाओं को क्षमता को अविश्वास की दृष्टि से देखा जाता है।

कई महत्वपूर्ण पद उसे इसलिये नहीं दिये जाते है कि वह स्त्री है, उस पद से संबंधित कार्यों को वह निष्ठापूर्वक पूरा कर पायेगी या नहीं।

बदलते परिवेश मे यह आवश्यक है कि समाज महिलाओं के प्रति अपने पूर्वग्रह एवं नकारात्मक रवैय के बदलाव लाये। महिलाओं को समुचित सम्मान देकर उसकी कार्यशक्ति व प्रतिभा को पहचाने।

जेण्डर के आधार पर महिला पुरूष के कार्य क्षेत्र को निर्धारित नहीं करके बल्कि उनमें निहित क्षमताओं, योग्यताओं व रूचियों के आधार पर उन्हें कार्य सौंपे जाये।

घर परिवार में भी कार्यशील महिलाओं के प्रति उदारतावादी व सहयोग पूर्ण रवैया अपनाया जाना चाहिए ताकि कार्यस्थल की भूमिका को वह बिना किसी तनाव के निष्ठापूर्ण सम्पर्ण कर सकें। अकसर देखा जाता है कि कार्यशील महिलाओं से परिवार वालों की अपेक्षा वही होती है जो एक घरेलू महिला से होती है। कार्य भूमिका को लेकर परम्परागत मान्यताएं प्रचलित है। घरेलू सभी कार्यों की जिम्मेदारी महिला पर है चाहे कार्यस्थल पर वह कितनी ही शारीरिक व मानसिक थकान से पीडित हो।

ऐसी स्थिति में परिवार के सदस्यों से यह अपेक्षा होनी चाहिए कि वे कार्यशील महिला के साथ समायोजन करें। कार्य भूमिका का बंटावारा जेण्डर पर आधारित ना होकर आपसी समझ पर होना चाहिये।

कार्य भूमिका के संदर्भ के जेण्डर विभेद समाज की संकीर्ण मानसिकता को प्रदर्शित करता है तथा समाज में स्त्री पुरूष व अन्य परिवार के सदस्यों के मध्य व कार्यस्थल के वातावरण में तनाव, कुसमायोजन एवं कुण्ठाओं को जन्म देता है।

भारतीय समाज में घरेलू महिलाओं द्वारा किये गये कार्यों को उतना सम्मान नहीं दिया क्योंकि ये पहले ही मान्यता प्रचलित है कि घर के सभी कार्य क्षेत्र में आते है ये तो उसे करने की चाहिये । हर परिवार में महिला अपने घर के सदस्यों के लिए करती है। इस अवैतनिक कार्य की प्रशंसा व मान उसे बहुत कम परिवारों में ही मिल पाता है।

प्राय: सुबह से लेकर देर रात तक वह परिवार के विभिनन कार्यों में उलझी रहती है। कभी कभी वह स्वास्थ्य की भी अपेक्षा कर जाती है पर कितने ऐसे परिवार है जहां पर महिला की फिक्र की जाती है उसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि परिवार द्वारा महिला को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता जाये। उसकी अपनी स्वयं की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में उसकी सहायता की जाये। घरेलू कार्यों को हेय दृष्टि से ना देखा जाये। जहां तक संभव हो परिवार के सदस्यों के कार्यों का बटवारा हो ताकि महिला पर ही सारे कार्यों का बोझ ना पड़े।

सामाजिक जीवन में कई क्षेत्रों में जेण्डर भेदभाव की रचना और अभिव्यक्ति की जाती है। यह भेदभाव संस्कृति, विचारधारा और तार्किक धारणाओं तक सीमित नहीं है। बल्कि यह घर में लैगिक नाम

विभाजन से लेकर श्रम बाजार तक राज्य की व्यवस्था काम भावना, हिंसा की रचना और सामाजिक संगठन में कई पक्षों में दृष्टिगत होती है। जन्म के पश्चात जैविकीय आधार पर बच्चों की भूमिका और क्षमताओं का निर्धारण होने गलता है। और यही समाजीकरण जेण्डर भेदभाव को जन्म देता है। ओझा 2002 के अनुसार जेण्डर संबंधों की समस्यउा संपूर्ण संसार मे है और इसकी जड़े पुरूष और नारी लिंगों मेंजैविकीय अंतर से है जिसे पुरूष ने अपनी प्रभावपूर्ण स्थिति तथा अपने शक्तिशाली दबावा के कारण हासिल की है।

भारत आध्यात्मिक देश रहा है यहां की संस्कृतिक विशेषताओं की जड़ हमें यहां के धार्मिक ग्रंथों, कथाओं आदि में मिलती है। सांस्कृतिक विशेषताओं में पितृसत्तामक से जुड़ी अनेक धारणाएं जनमानस में इतनी गहरी है जो जेण्डर भेदभाव एशियई समाजों में गर्भाशय से अधिकार प्राप्त है। कुछ परम्परागत समाजों में लड़कियों शुरू से यह स्वीकृत करती चली आ रही है कि उनके पिताजो परिवार के मुखिया है पुत्र को विशेष आदर देते है जो पुत्र की प्रधानता को इंगिता करता है और यह असमानता परिवार में ही नहीं बल्कि बाजार राजनीति, स्वास्थ्य शिक्षा आदि विभागां में होता है।

आधुनिक युग जो प्रोद्योगिक युग कहा जाता है, में अनेक कारण व साधन विद्यमान है जिससे विभिनन सुविधाओं तथा सुविधाओं तथा तकनीकी विकास ने जेण्डर भेदभाव को बढावा दिया। जिससे छोटे परिवार की बड़ती चाह मध्यवर्गीय परिवरों के प्रति बढ़ती ललक जिससे भी एक पुत्र अनिवार्य होता है। ऐसे में अगर पहली संतान लड़की है तो दूसरी बार पुत्र जन्म अनिवार्य मानने की सोच भेदभाव को बढ़ावा देती है। आर्थिक कारण से निम्न आर्थिक स्थिति व नौकरी पेशे वाली महिलाएं तथा साथ ही दहेज व अन्य खर्चे के कारण सभ्यता, नगरीकरण द्वारा नारी के लिए घर के बाहर के कार्यों में बढ़ रहे अनन्त अवसरों ने एक व्यापक नारी असंतोष को जन्म दिया है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा नारी की छवि को खराब करने के परिणामस्वरूप छोटी बच्चियों से बलात्कार, छेडछाड व यौन अवराधों तथा वैश्विक अपराध में वृद्धि हुई है।

2.4 समाज की विविध संस्थाओं द्वारा जेण्डर भूमिकाओं की चुनौतियां

बच्चों में अपने माता पिता, भाई बहनों, अध्यापकों पड़ोसियों के व्यवहार को अनुकरण करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। समाजीकरण के इन माध्यमों से उन्हें जैसी शिक्षा मिलती है, उनमें वैसी ही मनोवृत्ति विकसित होती है। यही कारण है कि यदि माता पिता लड़के और लड़कियों की भूमिका के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित होते है या भेदभाव दिखाते हे तो उनके बच्चों में भी उसी तरह का पूर्वाग्रह विकसित हो जाता है। किसी जाति या धर्म के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित होते है तो बच्चे आसानी से सीख लेते है। अपने देश में भिन्न भिन्न जातियों के लोग रहते है। सबका बालकों को संस्कार व परवरिश करने का अपना तरीका है। कुछ जातियां अपने को ऊँचा व श्रेष्ठ मानती है। धर्म व नैतिकता का व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है जन्म लेते ही बच्चा मानव निर्मित वातावरण में प्रवेश करता है जहां भौतिक तथा अभौतिक संस्कृति (धर्म, प्रथा, विश्वास आदि उसे घेरे रहते है। बालक को परिवार में जन्म लेते ही उस धर्म का अनुयायी होना होता है। धर्म नैतिकता मिलकर व्यक्ति के व्यवहारों को नियंत्रित एवं संतुलित करते है। संस्कृति विभिन्न प्रकार जैसे धर्म, भाषा, नैतिकता, परम्परायें प्रथाएं आदि से व्यक्तित्व को लगातार प्रभावित कर सिखाती है।

बच्चा बचपन से ही अपने आस पास के परिवेश से सीखने लगता है। संस्कृति प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तरीके से उसके व्यक्तित्व को विकसित करती है और एक जिम्मेदारी सामाजिक नागरिक के रूप में उसे जीना सीखाती है। व्यक्ति में उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करती है। उदाहरण जैसे भारतीय संयुक्त परिवारों में बच्चों को कठोर अनुशासन में रखा जाता है। तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए तरह तरह का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसी के परिणामस्वरूप भारत में अपने माता पिता, भाई बहनों का पारिवारिक सदस्यों के संदर्भ में उत्तरदायित्व की भावना जितनी अधिक पाई जाती है। वह अन्य देशों के लोगों में देखने को मिलती है। संस्कृति अपने समूह या समाज के लोगों को दूसरों का सम्मान करना सीखाती है। संस्कृति व्यवहार को निर्धारण करती है। परिवार में, समाज में व्यक्ति की अलग अलग भूमिका हो सकती है। घर में पिता, पति, बेटा या भाई हो सकता है। कार्यालय में उसकी भूमिका ऑफिसर की हो सकती है। अलग अलग परिस्थितियों में तरह तरह का व्यवहार करना संस्कृति ही सीखाती है। कि पिता को पुत्र या पुत्री से कैसा व्यवहार करना चाहिए। पति के रूप में कैसा होना चाहिए। ये तमाम तरह की भूमिकायें व्यक्तित्व व्यवहार का निर्धारण करते हुए उसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

एक अध्ययन के अनुसार माता पिता के शब्द बच्चों की सोच व प्रदर्शन पर गहरा प्रभाव डालते है। बच्चों के दिमाग में वे क्या नहीं कर सकत डालना, वे क्या कर सकते है से ज्यादा आसान है मसलन अपने बेटे से गणित में उत्कृष्ट प्रदर्शन की उम्मीद रखना ओर बेटी को यह बताना कि वह गणित की बजाय विज्ञान में बेहतर है उसे सचमुच गणित में कमजोर बना सकता है। यदि आप बेटी से हमेशा कहेगे वह गाड़ी सीखकर क्या कर लेगी वह उसके बस का नहीं, तो वह कभी सीख नहीं पायेगी। घर में बेटे बेटी के बीच फर्क नहीं होता होगा फिर भी परवरिश में अंतर आ जाता है। कुछ इस तरह लड़कियां शांत व सभ्य होती है, अभिभावकों का रहन सहन, परिवेश, सोच समझ चाहे जैसी रही हो, वे बेटियों के बर्ताव के प्रति बेहद सजग रहते है। धीरे बोलो, कम बोलो, अच्छी तरह चलो, यह सीख लड़कियों के लिए बड़ी आम है। बचपन से टोका टोकी व हिदायतें सुन सुन कर लड़कियों के मन में कुंठ घर करने लगती है। यदि बेटी को शुरू से ही यह बताएंगे कि अधिक बोलना व आवाज उठाना गलत है तो आगे चलकर खुद के लिए आवाज उठाने में भी उसे हिंसक ही महससू होगी।

बदलनी होगी सोच। एक संतुलित समाज बनाने और इस अंतर को खत्म करने के लिए माता व पिता दोनों के साथ मिलकर कदम उठाने हागे

- न केवल बेटियों को बल्कि बेटो को भी सभ्यता से शांत रहकर बात करना सिखाये।
- बेटियों को भी अपना पक्ष रखने की पूरी आजादी दे।
- माताएं वित्त से जुड़े मामलों में रूचि दिखाए और बच्चों को यह समझाएं कि महिलायें किसी से कम नहीं है।
- प्यारी गुडिया सुन्दर राजकुमारी, जैसे शब्दों के साथ बहादुर बेटी, निर्डर बेटी, जैसे शब्दों का इस्तेमाल भी करे।
- लड़कियों की सुन्दरता, रंग रूप के साथ साथ उनकी दूसरी खुबियों की तारीफ भी करें।

- छोटे मोटे घरेलू काम बेटे व बेटी दोनों से कराये। दोनों को यह समझाये कि अपने काम उन्हें ही करने होगें।

इन प्रयासों से समाज में सपना हम देखते है वह साकार भी होगा।

2.5 जेण्डर भेदभाव और आत्म निर्भरता

प्रत्येक समाज की उन्नति के लिए आवश्यक है कि समाज में युवा पीढ़ी आर्थिक रूप से आत्म निर्भर हो, क्योंकि आर्थिक उदासीनता युवाओं में सामाजिक, मानसिक अक्षमता लाती है। पारिवारिक संबंधोंको प्रभावित करती है। वर्तमान में युवा पीढ़ी के अन्तर्गत केवल लड़के की नहीं लड़कियों का भी आत्म निर्भर होना आवश्यक है। तभी वे परिवार व समाज में अपना योगदान दे सकेंगे और जेण्डर के प्रति दृष्टिकोण प्रति परिवर्तन आयेगा। वैश्वीकरण और प्रोद्योगिक विकास द्वारा विश्व अर्थव्यवस्था में भी सामाजिक आर्थिक परिवर्तन आया है। उसमें महिलाओं की स्थिति पर सीधा प्रभाव पड़ा है। गत दस वर्षों में श्रम व्यवस्था से महिलाओं की भागीदारी अद्भुत रूप से बड़ी है और इस बढ़ोतरी ने अर्थव्यवस्था के अतिरिक्त सामाजिक नीति में भी परिवर्तन आया है। आज युवक युवतियां मानते है कि आत्मनिर्भरता में महिलाओं में जागरूकता बढ़ी है तथा आर्थिक सहायता में भी मदद मिली है।

जहां तक महिला छवि या जेण्डर चुनौतियों में मास मीडिया की भूमिका या मास मीडिया के प्रभावों का प्रश्न है तो इसे इन उन समस्याओं के समाधान के परिदृश्य में देखे जाने की जरूरत है जो महिलाओं के विकास और प्रगति के मार्ग में लिंग -भेद, शारीरिक व यौनिक हिंसा, बलात्कार, दहेज - हत्या, छेड छाड जैसे अनेकानेक असामाजिक कृत्य और मानसिकता के रूप में सुरक्षा की भांति मुह फाड़े खड़ी है, मीडिया की भूमिका महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक लक्ष्य और साधन दोनों के रूपों में है। जेण्डर से संबंधित तमाम मुद्दों को, जो किसी भी रूप महिलाओं को प्रभावित करते है, चाहे वह उनकी समस्याओं से संबंधितहो या फिर उनके समाधान से, मीडिया इन मुद्दों को विभिन्न तरीकों एवं विभिन्न स्तरों पर उठाकर समाज के अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाकर समाज को जागृत करता है। महिलाओं को प्रभावित करने या महिलाओं से प्रीभावित होने वाले तमाम विषय में, समाज में जिस किसी स्तर पर जो कुछ भी हो रहा है या किया जा रहा है, उन्हें उसी रूप में वस्तुनिष्ठता के साथ जैसी मजदूरी में भेदभाव, महिलाओं के प्रति अपराध, शिक्षा में भेदभाव, दहेज, बलात्कार, लिंग भेदी विषयों से संबंधितरिपोर्ट एवं आंकड़ों की वास्तविक सूचना, समाचार, फिल्म सीरियल डॉक्यूमेन्ट्री, एनीमेशन आदि के माध्यमों से मीडिया जनता और सरकार तक पहुंचकर इन सभी प्रकार के अपराधों एवं शोषणों के विरूद्ध उठ रहे स्तरों को मुखर आवाज देकर इनके विरूद्ध एक शक्तिशाली माहौल बनाता है।

जब शोषण की शिकार व शोषित नारियों को सरकार पुलिस एवं न्यायालय की विसंगतियों के कारण न्याय मिल पाता है तो उन मामलों में जनगत निर्माण द्वारा दबाव समूहों का निर्माण कर न्याय का मार्ग प्रशस्त करना। जोर्सका लाल केस, इशरत जहां मुठभेड़, रूचिका यौन उत्पीड़न केस, प्रियदर्शनी मटू केस, भंवरी देवी अपहरण एवं हत्या। 16 दिसम्बर सन् 2012 के दिल्ली का बहुचर्चित गेंगरेप, आसाराम बापू और उनके बेटे नारायण साई बलात्कार केस, यू.एस.ए. पुलिस द्वारा भारतीय राजनायिक देवनानी

खोबरगेड के साथ दुव्यवहार आदि कुछ मामलों में भारतीय मीडिया द्वारा निभाई गयी भूमिकायें इसके ज्वलंत उदाहरण है।

भारतीय समाज में महिलाओं की कई समस्याएं रही है , इनमें गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण, अस्वास्थ्य, सामाजिक रूढ़िवादी मान्यताओं आदि कारणों से शिक्षा का प्रसार उस रूप में महिलाओंमे नहीं हो सका है जैसा अपेक्षित है। शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ेपन की वजह से उनके बीच गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण, अस्वास्थ्य जैसी अविकास की स्थिति और भी गंभीर हुई है। इस दिशा में मीडिया अपनी भूमिका का सफल निर्वहन कर रहे है। मीडिया चैनलों में समाचार संवादाता, समाचार ऐकर और समाचार निर्माता जैसे चुनौतीपूर्ण उत्तरदायित्व द्वारा सम्पूर्ण समाज में उनके सक्षम नेतृत्व और प्रतिनिधित्व के प्रति एक सकारात्मक माहौल का निर्माण कर समाज के सामने अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर रहा है। जहां मीडिया सकारात्मक भूमिका निभा रहा है। वही कई बार नकारात्मक भूमिका में भी महिलाओं की छवि को खराब किया है। विशेष रूप से आज विभिन्न उत्पादों के प्रचार में नारी देहिक और सुन्दरता की जिस प्रकार सेक्स उन्मादकता के रूप में प्रस्तुत कर नारी मर्यादा का अपमान किया जाता है। इसका दुरूपयोग कर उन्हें यौनिक शोषण का माध्यम बनाया जाता है।

फिल्मों में भी नारी की स्थिति द्वितीयक है। पुरूष प्रधान समाज में नायक प्रधान फिल्मों को ही महत्व दिया जाता है। महिला प्रधान या महिलाओं की समस्याओं या विरोध को दर्शाने वाली पटकथा पर फिल्में बहुत कम ही बनती है। फिल्मों में स्त्री चरित्र को अश्लील ढंग से प्रस्तुत किया जा रहा है। जिससे देश के युवा वर्ग की मानसिकता पर गहरा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

यही स्थिति विभिन्न उत्पादों से संबंधित विज्ञापनों की भी है। जिनमें नारी का अनावश्यक अंग प्रदर्शन किया जाता है। बड़ी संख्या में उपभोक्ता अपने उत्पाद की ओर आकर्षित करने का इससे श्रेष्ठ माध्यम विज्ञापन कम्पनियों और उत्पादकों को दृष्टिगोचर नहीं होता , मीडिया के द्वारा नारी छवि के प्रस्तुतीकरण को सुधारने के लिए अनेक प्रयास सरकारी एवं निजी स्तर पर कुछ संस्थाओं द्वारा समय समय पर किये गये है। इस दृष्टि से एक समन्वित मीडिया योजना बनाया जाना अति आवश्यक है। 1982 में डॉ. पी.सी. जोशी के नेतृत्व के इस हेतु एक समिति का गठन भी हुआ था। इस समिति में नारी छवि के प्रस्तुतीकरण के लिए एक विशेषज्ञ समूह भी सम्मिलित था। समिति ने कई महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये । परन्तु मात्र सुझाव या अधिनियम बना देने से नारी छवि में सुधार संभव नही है। इसके लिए मीडिया व्यवसायियों और कर्मचारियों के लिए नारी संवेदनात्मक प्रशिक्षण भी नितान्त आवश्यक है।

निजी स्तर पर कुछ संस्थाओं ने इस प्रकार का उत्तरदायित्व उठाने का प्रयास किया है। अहमदाबाद का वुमन्स एक्शन ग्रुप तथा मुम्बई स्थिति वूमेन एण्ड मीडिया ग्रुप इसी के उदाहरण है। अन्य कई सुझाव दिये गये है जैसे -

विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम से मीडिया क्षेत्र में महिलाओं को प्रशिक्षित किया जाये

- महिला विषयों पर शोध कर मीडिया माध्यमों का समुचित प्रयोग कर उनका प्रसार किया जाये।

- रेडियो और टेलिविजन का प्रयोग बालिकाओं और महिलओं से जुड़ी विभिन्न समस्याओं और उनके निराकरण के उपयों के प्रचार प्रसार के लिए किया जाये।

- विज्ञापनों में नारी की छवि को सुधारने के कठोर प्रयास किये जाये।
- मीडिया में नारी की सकारात्मक एवं सृजनात्मक छवि का प्रचार तथा नकारात्मक पारम्परिक रूढ़िवादी छवि को हतोत्साहित करने के लिए युवाओं को तैयार किया जाये।

2.7 जेण्डर के प्रति कानून का प्रभाव

भारत में महिलाओं को सशक्त बनाने तथा जेण्डर समानता की दृष्टि से कई कानून बनाये गये जिसमें महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव की समाप्ति, निर्णय लेने में महिलाओं को महत्व, महिलाओं के विरूद्ध हिंसा की समाप्ति महिलाओं को आरक्षण, महिला पुरूष समान वेतन, महिला आयोग, महिलाओं के लिए राष्ट्रीय नीति इत्यादि प्रयास किये गये। जिससे समाज में जेण्डर के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो और महिला सबल हो।

भारतीय समजा पितृसत्तात्मक समाज हैं जहां महिला व पुरूषों में संस्तरण देखने को मिलता है। इस उच्चता व निम्नता की स्थिति से निजात पाने के लिए तथा महिलाओं पर होने वाले अत्याचार को रोकने एवं महिला अधिकारों के हनन को कम करने के लिए भारतीय संविधान में महिलाओं के लिए मानवाधिकारों की व्यवस्था की गई है। भारतीय संविधान में मानवाधिकार का दो भागों में बांटा गया है। प्रथम मौलिक अधिकार है जिसका उल्लेख संविधान में भाग तीन तथा धारा 12-35 तक में किया गया है। द्वितीय श्रेणी में राज्य के नीति निर्देशक तत्व आते है। जिसका उल्लेख संविधान के भाग चार में किया गया है। मूल अधिकारों को लागू करने के लिए सरकार बाध्य है। परन्तु नीति निर्देशक तत्वों को लागू करने हेतु सरकार बाध्य नहीं है।

संवैधानिक प्रावधान -

1- **अनुच्छेद 14 -** इस अनुच्छेद के अन्तर्गत स्पष्ट प्रावधान है कि काननू के समस्त सभी समान है। सभी को कानून के द्वारा समान सुरक्षा व संरक्षण प्राप्त होगा। किसी भी नागरिक को वर्ण, जाति, रंग, धर्म, लिंग, स्थान, भाषा आदि के आधार पर न तो विशेषाधिकार प्राप्त होगा और न ही उससे पूर्णता: वंचित किया जा सकता है।

2- **अनुच्छेद 15 -** राज्य किसी भी नागरिक के विरूद्ध किसी आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। कोई नागरिक केवल धर्म, वंश, जाति लिंग के आधार पर किसी भी निर्योग्यता दायित्व या शर्त के अधीन नहीं होगा व शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के विकास हेतु विशिष्ट प्रावधान कर सकता है।

3- **अनुच्छेद 16 -** राज्य के अधीन किसी रोजगार या नियुक्ति के बाबत नागरिकों लिंग, आयु, जाति, धर्म, वंश आदि के आधार पर अयोग्य घोषित नहीं किया जा सकता है।

4- **अनुच्छेद 21 -** यह अनुच्छेद प्राण, दैहिक स्वतंत्रता औश्र संरक्षण के अधिकार की व्यवस्था करता है। यह अधिकार स्त्री पुरूष को समान संरक्षण देता है।

5- **अनुच्छेद 23** - मानव व्यवहार महिलाओं का अनैतिक देह व्यापार, बेबार या अन्य प्रकार की बंधुओं मजदूरी को पूर्णतया घोषित करता है। महिलाएं भी पुरूषों की भांति स्वेच्छा से किसी भी

धर्म का प्रचार प्रसार कर सकती हैं। अल्पसंख्यक पुरूषों और महिलाओं को स्वयं की शिक्षण संस्थाएं खोलने का अधिकार प्राप्त है।

6- **अनुच्छेद 39 -** पुरूष और स्त्री, नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार है। पुरूष और स्त्रियां समान कार्य हेतु समान वेतन प्राप्त करने का अधिकार रखती है।
7- **अनुच्छेद 39 ई -** स्त्री व पुरूष कर्मचारी के स्वास्थ्य और शक्ति का दुरूपयोग न हो, की व्यवस्था करता है। स्त्रियों के लिए प्रसूतिकाल में अवकाश की व्यवस्था की गई है।
8- **अनुच्छेद 42 -** राज्य काम करने की न्याय परक एवं मानवीय परिस्थितियां पैदा करेगा और मातृत्व लाभ देना सुनिश्चित करेगा। इस प्रकार गर्भवती और दूध पिलाने वाली महिलाओं के हितों की रक्षा करने का प्रावधान है।
9- **अनुच्देद 51 -** प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के विरूद्ध है। संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में महिलाओं के अधिकार सुनिश्चित किये गये है।
10- **अनुच्छेद 325, 326** -निर्वाचक नामावली में महिला और पुरूषों की समान रूप स ेमत देने और चुने जाने का अधिकार देता है।

महिला मानवाधिकारों के संबंधमें अधिकार -

1- **चलचित्र अधिनियम 1952 -** इस अधिनियम में सेंसर बोर्ड के गठन का प्रावधान है जो ऐसी फिल्मों पर रोक लगायेगा जिससे महिलाओं की मर्यादा भंग होती है।
2- **स्त्री विशिष्ट रूपण (प्रतिबंध) 1986 -** इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी भी महिला को इस प्रकार चित्रित नहीं किया जा सकता है, जिससे उसकी सार्वजनिक नैतिकता को अधात पहुचं। समस्त विज्ञापन, प्रकाशन आदि में अश्लीलता पर प्रतिबंध लगाया गया है।
3- **प्रसवपूर्व निदान तकनीकी अधिनियम 1994 -** इस अधिनियम द्वारा गर्भावस्था में बालिका भ्रूण की पहचान कराने पर रोक लगाई गई है।

महिलाओं की स्थिति को सुधारने एवं उसके विकास हेतु उन्हें समाज व संविधान के कई अधिकार तो दे दिए है, ताकि वह अपने हक को पा सके, किन्तु क्या इन अधिकारों के बनने से ही उनकी स्थिति सुधर जायेगी, क्योंकि जो अधिकार उन्हें मिलने चाहिए थे। आज भी वे उन अधिकारों से वंचित है। उनके जीवन में तभी प्रसन्नता आयेगी तब उन्हें समाज में समानता का अधिकार प्राप्त होगा, इससे एक कुशल समाज का निर्माण होगा। स्वामी विवेकानन्द का कहला है कि ''महिलाओं की दशा में सुधान न होने तक विश्व का कल्याण उसी प्रकार असंभव है जिस प्रकार पक्षी का एक पंख से ड़ना। महिलाओं के साथ किये जा रहे असमान एवं अमानवीय व्यवस्था में बदलावा आना बहुत जरूरी है। महिलाओं की दुदर्शा का मूल है - 'अशिक्षा' अत: लड़कियों एवं महिलाओं को शिक्षित करने के प्रयास सरकारी एवं सामाजिक दोनों स्तरों पर तीव्र गति से किये जाने चाहिए। सामाजिक मानसिकता से भी परिवर्तन लाया जाये और प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं के प्रति समाज की नकारात्मक सोच में बदलाव लाना आवश्यक है। अभी कुछ दिनों पूर्व की एक घटना है कि अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की मौलना आजाद लाइब्रेरी में छात्राएं प्रवेश नहीं कर सकती छात्राएं काफी समय से पुस्तकालय में प्रवेश करने की मांग कर रही थी। ताकि वे

भी पुस्तकों एवं अन्य उपलब्ध सामग्री का उपयोग कर सके, लेकिन वहां के उपकुलपति ने यह कहकर उनकी मांग ठुकरा दी कि यदि छात्राओं को लाइब्रेरी में आने दिया तो चार गुना छात्र उनके पीछे पीछे चले जायेंगे। महिलाओं के साथ बढ़ते हुए अपराधों पर अंकुश लगाने के लिए महिलाओं को भी सर्तक एवं जागरूक होना पड़ेगा। उन्हें स्वतंत्रता, सहानूभूति, सहयोग एवं सहायता के सदुपयोग के प्रति वचनबद्ध होना होगा। उन्हें उत्तेजक रहन सहन, खान पान, भौतिकवादिता एवं विलासता के समजाल को विवेकशीलता से तोड़ना होगा।

महिलाएं खुद सपना देखना सीखे और उसे साकार करने का प्रयास करें।?

2.7 सारांश

विश्व की आधी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व महिलाएं करती है। भारत की संस्कत्रति महिला पुरूष समानता पर बल देती है। परन्तु सदियों से पितत्रसत्तात्मक सामन्तवादी सामाजिक ढांचे में स्त्रियों, धर्म, मान्यताओं, परम्पराओं और रूढ़ियों के नाम पर उत्पीड़न और शोषण का शिकार रही है। स्वतंत्रता पश्चात कानून द्वारा पुरूष तथा महिलाओं को समान अधिकार दिया गया है। इस बदलती परिस्थिति में भारतीय नारी भी प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के साथ कार्य कर रही है। समाज में जेण्डर भेदभाव कम करने में मीडिया की भूमिका को भी महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

सही/गलत बताइये

1- विश्व की आधी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व महिलाएं करती है।

2- बेटियों को अपना पक्ष परिवार में रखने की पूरी आजादी है।

3- लड़को से ये अपेक्षा की जाती है वह घरेलू कार्य करें

4- जेण्डर के प्रति लोगों के नकारात्मक सोच में बदलाव लाना आवश्यक है।

5- फिल्मों में नारी की स्थिति द्वितीयक है।

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Pandey A.K., Emerging Issues in Empowerment of women, Anmol Publication, New Delhi.
- ओकले, अत्र, सेक्स, जेण्डर और सोसायटी, द यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिंगन, एरिया, पब्लिराड, एसोशिएशन विद यू सोसायटी
- अग्रवाल उमेश, भारत में महिला समानता और सशक्तिकरण के प्रयास, योजना नई दिल्ली।
- आहूजा, राम, सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
- आर.पी. तालसेरा एवं डी.पी. शुक्ला, भारतीय नारी, वर्तमान समसयायें और भावी समाधा, ए.पी.उच. पब्लिकेशन, नई दिलली

2.10 अभ्यास प्रश्न

1 'महिलाओं की सामाजिक स्थिति से सामाजिक प्रगति को मापा जा सकता है?' विवेचना कीजिए।

2 मीडिया में महिला की छवि को आलोचनात्मक मूल्यां कन कीजिए।

इकाई – 3

भारत में बालिका शिक्षा का अवलोकन राजस्थान के विशेष संदर्भ में (ऐतिहासिक परिपेक्ष्य से वर्तमान तक)

Overview of Girl Education in India with special reference to Rajasthan (Historical Perspective to currentstatus)

इकाई की रुपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 सारांश

3.4 शब्दावाली

3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.6 अभ्यास प्रश्न

3.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में ही नहीं वरन् प्राचीनकाल में भी बालिका शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व को स्वीकार किया गया था। प्राचीन काल में अनेक विदुषी स्त्रियों के नाम पढ्ने को मिलते हैं। लेकिन धीरे—धीरे स्त्रियों की समानता व शिक्षा को अस्वीकार किया जाने लगा। वर्तमान समय में बालिका शिक्षा की आवश्यकता व महत्व को स्वीकार किया जाने लगा है। पं. जवाहर लाल नेहरू ने बालिका शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि एक लड़के की शिक्षा केवल एक व्यक्ति की शिक्षा है, किन्तु एक लड़की की शिक्षा सम्पूर्ण परिवार की शिक्षा है। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने भी बालिका शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया और लिखा शिक्षित स्त्रियों के बिना शिक्षित लोग नहीं हो सकते हैं। यदि सामान्य शिक्षा को स्त्रियों अथवा पुरूषों तक सीमित करने का प्रश्न हो तो यह अवसर स्त्रियों को देना चाहिए क्योंकि तब यह शिक्षा निश्चित रूप से भावी सन्तान तक पहुँचेगी।

राष्ट्र की उन्नति में पुरूषों के योगदान के साथ—साथ स्त्रियों का भी योगदान मिले, इस दृष्टि से भी, बालिका शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व को स्वीकार किया गया है। आज स्त्रियॉ—शिक्षा, चिकित्सा, नर्सिग, कानून, न्याय आदि क्षेत्रों में ही नहीं वरन् इंजीनियरिंग, वायुयान संचालन, सुरक्षा संबंधी कार्य आदि सभी स्रोतों में पुरूषों के समान ही सेवा कर रही हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत के विकास में स्त्री के महत्व को महसूस किया गया है। संविधान के द्वारा स्त्री व पुरूष दोनों को सभी क्षेत्रों में समान माना गया और यह कहा गया कि लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार का भेज—भाव नहीं किया जायेगा। 1962 में श्रीमती हंसा मेहता समिति ने बालिका शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए लिखा था कि यदि भारत में प्रजातांत्रिक समाजवाद और धर्मनिरपेक्ष समाज का निर्माण करना है तो स्त्रियों को प्रभावशाली ढंग से पुरूषों के समान अवसर दिये बिना यह कार्य सम्भव नहीं है।

स्वतंत्रता के पश्चात् बने सभी शिक्षा आयोगों ने बालिका शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया। 1964-66 के शिक्षा आयोग ने भी बालिका शिक्षा की आवश्यकता बताते हुए लिखा था कि पुरूषों की तुलना में बालिका शिक्षा अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि बालिका शिक्षा के बिना मानवीय संसाधनों का पूर्ण विकास संभव नहीं है और घरों का सुधार शिक्षित महिलाओं द्वारा ही संभव है। बालिका शिक्षा का शैशव काल में बालकों के चरित्र निर्माण और प्रजनन दर घटाने पर विशेष प्रभाव पड़ता है। मुगल व ब्रिटिश काल में हमारे देश में स्त्रियों को आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बना कर अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाया जा सकता है। प्रजातांत्रिक भारत में आधा मताधिकार स्त्रियों के पास है। अत: यह महसूस किया गया कि शिक्षित स्त्रियों द्वारा मताधिकार का उचित एवं अधिकाधिक प्रयोग किया जा सकेगा। इन सभी कारणों से बालिका शिक्षा की आवश्यकता महसूस की गई।

शैक्षिक अवसरो की समानता की बात करते समय हमने देखा कि अनेक सन्दर्भो में असमानता पाई जाती है । एक आवश्यक सन्दर्भ है बालिका शिक्षा का । बालिका को हम समाज मे वह दर्जा नहीं दे पाते जो बालक को देते है। प्रत्येक दम्पति की लालसा पुत्र प्राप्त करने की होती है । भ्रूण परीक्षण द्वारा कुछ लोग पहले ही आश्वस्त होना चाहते है । जन्म के बाद बालक-बालिका में कुछ लोग भेद करते है । लालन-पालन में भेद बुद्धि रखते है । उनकी शिक्षा में भी विषमता दृष्टि गोचर होती है । बालिका को समाज को एक वर्ग पढ़ाना ही नहीं चाहता है । पढ़ने भेज देता है तो बीच में ही पढ़ाई रोक देता है । इस अध्याय में हम बालिका शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर विचार-विमर्श करेगें ।

बालिका शिक्षा के उद्देश्य

वैदिक काल से ही यह सार्वभौमिक सत्य और सिद्धान्त प्रचलित है कि स्त्री जाति पृथ्वी पर नैतिकता, मानवता और सभ्यता के विकास का अपरिमित स्त्रोत रही है । वैदिक काल से ही स्त्री जाति को माता, पत्नी और स्त्री के विविध सम्बन्धों मे पूज्या माना जाता रहा है । कहा भी है- **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता**

जहाँ नारियों की पूजा होती है अर्थात् उनका आदर किया जाता है और उन्हें विकसित होने का अवसर दिया जाता है वहाँ देवताओं का वास होता है। यह सत्य भी है । माता के रूप में सुसंस्कृत जननी सुसंस्कृत बालक को जन्म देती है और उसकी शिक्षा के लिए ऐसा वातावरण सृजन करती है कि वह वास्तव में

देवतुल्य सामर्थ्य ग्रहण कर लेता है । माता चाहे तो सन्तान का निर्माण अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुरूप कर सकती है । आज हमें प्रजातन्त्र की सुरक्षा, राष्ट्रीय समृद्धि के विकास, मानवता के प्रसार, विश्व-शान्ति और चरित्रवान योग्य नागरिक की आवश्यकता है । यदि हमारी माताएँ इस दिशा में प्रयत्नशील हुई और उनके विकास के लिए समुचित बालिका शिक्षा का विकास तथा व्यवस्था हो सकी तो निश्चय ही भारत की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने वाले, राष्ट्रीय समृद्धि में योग देने वाले, शान्ति-स्थापक योग्य नागरिक मिल सकेगें । इन उपलब्धि को प्राप्त करने के लिए और स्त्री-शक्ति की सुरक्षा और विकास करने के लिए निम्नलिखित किये जा सकते है-

1. **स्त्रियोचित एवं सर्वागींण व्यक्तित्व का विकास करना**- हमें स्वतन्त्र भारत में स्त्री जाति को अबला से सबला बनाने के लिए इसका शारीरिक, बौद्धिक मानसिक, आधात्मिक, सामाजिक विकास करने के लिए उपयोगी शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए । स्त्रियोचित खेल-कूद, व्यायाम, आसनों की व्यवस्था, विविध बौद्धिक और मानसिक शक्तियों का विकास करने के विषयों का शिक्षण किया जाना आवश्यक है । यह आवश्यक है कि उपर्युक्त शिक्षा का प्रबन्ध एकमात्र महिला विद्यालयों में ही सम्भव है जिनका विकास और प्रसार करना चाहिए।

2. **स़्त्रीत्व को बनाये रखने की दीक्षा, शिक्षा और वातावरण की व्यवस्था करना**- स्त्री का स्त्रीत्व उसकी लज्जा-शीलता, कौमार्य और विनम्रता परन्तु निर्भीकता में सन्निहित होता है । यह सब तभी सम्भव है जब उन्हें स्त्रियोचित कर्तव्यों से परिचित कराया जाए । भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की स्थिति महत्वपूर्ण होती है । वह माता (जननी) है, बहिन है, पुत्री है । उनके अपने-अपने स्थान पर क्या कर्तव्य है, क्या अधिकार है, उन्हें समाज में कैसे व्यवहार करना चाहिए? आदि बातों का ज्ञान कराना आवश्यक है । दुर्भाग्य है कि भारत -सरकार ने इस परम आवश्यकताओं पर कभी ध्यान नही दिया । यह तो ठीक है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क के कारण हमारा सम्बन्ध पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता से हो गया है परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हम अपनी भारतीयता की सीमा को लौंघ जाएँ । हमारा यह तात्पर्य कदापि नहीं कि स्त्री जाति ज्ञान, विज्ञान, कला, तकनीकी एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में शिक्षा-ग्रहण करके कार्य न करें । वरन् कहने का आशय यह है कि वे ये सब कार्य स्वतन्त्रतापूर्वक भारतीय परम्पराओं और स्त्रियोचित कर्तव्यों की सीमा में करें ।

3. **स्त्री को योग्य माता, गृहिणी, पत्नी और कार्यकर्ता बनाना**- हमारी संस्कृति कहती है कि माता बालक की सबसे पहली आचार्य (गुरू) होती है । वह बालक के संस्कारों को निर्धारित करती है और समुचित वातावरण, सीख, लालन-पालन और स्नेह देकर उसका सामाजिक तथा मानवीय विकास करती है । एक गृहस्थ जीवन में स्त्री माता, गृहिणी तथा पत्नी-तीनों के रूप में कर्तव्य पालन करती है । हमें ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करनी है कि स्त्रियाँ कुशल माता, गृहिणी, पत्नी और सहयोगी बन सकें ।

4. **स्त्री को धार्मिकता, नैतिकता, चरित्र-निर्माण और शान्ति-स्थापना का स्त्रोत बनाना**- स्त्री ही ऐसी शक्ति है जो धार्मिक भावनाओं का प्रसार करके बालकों का नैतिक आचरण सुधारती है। और अशान्त वातावरण में शान्ति के बीजांकुरित करती है। वह दया की देवी होती है, क्षमा-शीलता उसका धर्म होता है, वह सहिष्णु , उदार और सहकारी होती है । यही गुण योग्य, नागरिक में होने आवश्यक है । स्त्री बालकों में इन गुणों की स्थापना करती है । संसार में नैतिकता का उत्थान और पतन स्त्री के कारण ही हुआ करता है। शिक्षा द्वारा स्त्री का धार्मिक , नैतिक और चारित्रिक मार्ग-दर्शन करना आवश्यक है।

5. **स्त्री को संस्कृति प्रसार का स्त्रोत बनाना**- विविध सांस्कृतिक परम्पराएँ समाज में स्त्रियाँ द्वारा ही संस्थापित होती है। वह उनकी रक्षक है, पौषक और प्रसारक है। वह परिवार से लेकर समाज के क्षेत्र में अपने व्यवहारों द्वारा संस्कृति का विकास करने में योग देती है। वस्त्र-विन्यास, रहन-सहन, धार्मिक प्रथाएँ, रीति-रिवाज , सामाजिक मान्यताएँ, मातृभाषा -विकास, पारिवारिक शिक्षा द्वारा समाजीकरण के आदर्श प्रस्तुत करके पुरूष वर्ग का वहीं मार्ग-दर्शन करती है। इसलिए बालिका शिक्षा में भारतीय संस्कृति का समन्वय करना चाहिए जिससे वह उस संस्कृति का प्रसार करने का उत्तरदायित्व निर्वाह कर सके।

6. **स्त्री वर्ग को व्याहारिक, जीविकोपार्जन एवं कला में दक्ष बनाना**- यदि किसी परिवार के कर्तव्यों के निर्वाह की पूर्ति करने के उपरान्त स्त्री के पास अवकाश का समय बचता है तो वह उसका सदुपयोग व्यावसायिक एवं जीविकोपार्जन के कार्यो द्वारा कर सकती है। इस प्रकार स्त्री परिवार की आर्थिक स्थिति में भारी योग दे सकती है। जब किसी परिवार का मुखिया नहीं रहता तो परिवार के लालन-पोषण का भार स्त्री पर ही आ जाता है। यदि वह इस योग्य नहीं होती तो उसके परिवार का पालन नहीं हो पाता। इस दृष्टि से स्त्री जाति को सशक्त बनाना चाहिए और शिक्षा - क्रम में उपयोगी पाठ्यक्रम सँजोना चाहिए।

7. **प्रजातन्त्र की सुरक्षा और गणतन्त्र में विश्वास रखने की भावना का प्रसार करना**- बालक के प्रशिक्षण एवं शिक्षण की सबसे पहली सीढ़ी परिवार में चढी जाती है । माता- पिता और परिवार के लोग बालक को नागरिकता की शिक्षा देते है। यदि स्त्री गणतन्त्र में विश्वास रखती है और प्रजातन्त्र की प्रणालियों से परिचित है तो वह अपने घर का वातावरण भी प्रजातन्त्रात्मक बना सकती है। ऐसे वातावरण में पलने वाले बालक प्रजातन्त्र में आस्था रखने वाले और उसमें योग देने वाले बन सकेगें । इसलिए स्त्री -शिक्षा पाठ्यक्रम में पुरुषों के समान नागरिकता की शिक्षा और प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों की जानकारी का समावेश करना चाहिए।

8. **नेतृत्व और उत्तरदायित्व की क्षमता का विकास करना**- विश्वविद्यालयी शिक्षा का सर्वप्रमुख उद्देश्य नेतृत्व की शिक्षा प्रदान करना है। स्त्री समुदाय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व कर सके और राष्ट्र की समृद्धि में योग दे सकें तो प्रजातन्त्र की सफलता में कोई भी सन्देह नहीं रह जाता। इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्राचीन काल से ही स्त्री ने विविध क्षेत्रों में मार्ग-दर्शन और नेतृत्व किया है। लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी), सरोजनी नायडू, ऐनी बेसेन्ट, कमला नेहरू, कस्तूरबा, इन्दिरा गाँधी जैसी विदुषी महिलाओं ने युद्ध- कौशल, सामाजिक-सुधार,

राजनैतिक-सुधार और आर्थिक नियोजन मे भारी योग दिया है । आज भी भारत को ऐसी नेताओं की आवश्यकता है। इसलिए आधुनिक स्त्री छात्राओं को पुरूषों के समान विकास की सुविधाएँ और अवसर देकर प्रत्येक क्षेत्र में नेतृत्व का शिक्षण देना चाहिए । वे योग्य चिकित्सक, योग्य अभियन्ता, योग्य अध्यापक और समाज सुधारक बनकर राष्ट्र की सेवा कर सकें तो राष्ट्र का बहुत बड़ा उपकार होगा ।

बालिका शिक्षा का महत्व और आवश्यकता

प्रजातन्त्र में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से बालिका शिक्षा का बहुत अधिक महत्व है । स्त्री को पुरूष के समान कर्तव्य निर्वाह तथा अधिकारों का उपयोग करने के अवसरों तथा सुविधाओं की प्राप्ति हुई है । यदि स्त्री पुरुषों के समान योग्य और शिक्षित हो तो वह अपने मतदान का सदुपयोग कर सकती है और राष्ट्र की, समाज की, परिवार की और व्यक्तिगत समस्याओं पर चिन्तन करके उनके हल प्रस्तुत कर सकती है ।

स्वतन्त्रता का उपयोग तभी उत्तम होता है जब राष्ट्र की सरकार व्यक्ति के हितों की सुरक्षा करने और व्यक्ति के विकास करने में योग्य होती है । राष्ट्रीयसरकार का निर्माण जनमत के हाथ में होता है । यदि जनमत अप्रशिक्षित होता है तो वह जातिवाद, धर्म, वर्ग, प्रदेश और सम्पर्क की संकुचित भावनाओं में बहकर मतदान में उपयुक्त निर्णय नही ले पाता और अनुपयुक्त व्यक्ति कोशासन कार्य के संचालन के लिए भेज दिया जाता है । यह बात बालिका शिक्षा के प्रसार के अभाव में स्त्री वर्ग पर बहुत घटित होती है । कुछ ही शिक्षित महिलाएँ इस सम्बन्ध में अपना स्वतन्त्र निर्णय रखती है अन्यथा अधिकांश इस उत्तरदायित्व को बड़ी उदासीनता से निभाती है । इसलिए यह आवश्यकता अनुभव होती है कि बालिका शिक्षा का समुचित प्रसार किया जाये ।

समाजिक क्षेत्र में स्त्री -जाति सामाजिक सुधार की आधारशिला होती है । वह परिवार का सृजन और निर्माण करने वाली होती है । सबसे पहले नागरिकता की शिक्षा उसी के संरक्षण में मिलती है। यदि स्त्री शिक्षित नहीं होती तो वह परिवार में रहकर नागरिकता का प्रसार करने का उत्तरदायित्व न्यायपूर्वक नहीं निभा सकती । इसलिए बालिका शिक्षा की आवश्यकता और महत्व अनुभव किया जाता है । स्त्री बालक की सबसे पहली और महत्वपूर्ण शिक्षक होती है । यदि वह अशिक्षित हुई तो बालक का शैक्षिक तथा सामाजिक विकास उपयुक्त रूप में नहीं होता । नारी समाज की शक्ति होती है । वह प्रेम, दया, त्याग, की मूर्ति होती है । उसके इन गुणों के कारण वह समाज की प्रतिष्ठित शक्ति है । वह सच्चे अर्थो में सृजन की प्रेरणा है जिसको शिक्षित करके मानवीय गुणों की अनुभूति में सहयोग पाया जा सकता है ।

स्त्री देश की संस्कृति, धर्म, साहित्य, कला एवं ज्ञान-विज्ञान का स्तम्भ होती है । उसे शिक्षित बनाकर उनकी सृजनात्मक क्रियाशीलताओ को प्रबुद्ध, शुद्ध और समुन्नत बनाया जा सकता है। यह सृजनात्मक क्रियाशीलता पुरूष का उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक, कलात्मक और अन्य क्षेत्रों में नेतृत्व और मार्गदर्शन तभी कर सकती है जब वह सुशिक्षित हो, साधन सम्पन्न हो । अतः राष्ट्र में स्त्रीत्व का विकास करने के लिए बालिका शिक्षा महत्वपूर्ण स्थान रखती है ।

एक शिक्षित माता शिक्षा का मूल्य समझती है और माँ के रूप में वह जानती है कि वह अपने बालकों की प्रवृति, रूचि, क्षमता, आवश्यकता के अनुरूप कैसे शिक्षा दे और किस प्रकार मार्ग-दर्शन करे । वह जानती है कि राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में उसका मार्ग-दर्शन कैसे करे । आज के बालक कल के नागरिक होते है जिनका निर्माण माता के हाथ में होता है । अतः बालिका शिक्षा के विकास की महती आवश्यकता प्रतीत होती है ।

शिक्षित स्त्री पुरूष से किसी भी कार्य-क्षेत्र में पीछे नहीं रही । कुछ क्षेत्रों में तो वह पुरुषों से भी अधिक कुशल सिद्ध हुई है । चिकित्सा, शिक्षण और परिचर्या के क्षेत्र में स्त्री की तुलना पुरूष कभी भी नहीं कर सकता । यदि स्त्री को समुचित मार्ग-दर्शन और शिक्षा दी जाए तो वह कुशल व्यवसायी, समाजसेवी, राजनैतिक नेता और समाज सुधारक बन सकती है । वह कुशल इंजीनियर, शिक्षक, चिकित्सक, परिचारक, अधिवक्ता, कारीगर आदि बनकर राष्ट्र में भारी योग दे सकती है । अतः बालिका शिक्षा का विकास करते हुए उसके लिए उपयोगी सुविधाएँ जुटाने का प्रयास करना उत्तम होगा। तभी राष्ट्र की सामाजिक , आर्थिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक, व्यावसायिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक उन्नति हो सकती है ।

बालिका शिक्षा की आवश्यकता पढ़ने के पश्चात यह ज़रुरी है कि बालिका शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या रही है और वर्तमान में इसकी क्या स्थिति है |

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्राचीन युग

वैदिक काल मे स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था । वैदिक काल में नारी शिक्षा अपने चरम उत्कर्ष पर थी । नारियों को पुरुषों के समान स्वतन्त्रता प्राप्त थी । ब्रह्मचर्य व्रत से सम्पन्न शिक्षित कन्या को ही गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त था । ऋग्वेद के आधार पर घोषा, गार्गी, आत्रेयी, शकुन्तला, उर्वशी , अपाला आदि उस समय की विदुषी महिलाएँ थी । वेदों का अध्ययन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी और वे पुरुषों के साथ यज्ञ में भाग लेती थी, किन्तु उनके लिए पृथक् विद्यालयों की व्यवस्था नहीं र्थी हाँ सहशिक्षा का प्रचलन अवश्य था । शकुन्तला के कण्व के आश्रम मे और आत्रेयी ने वाल्मिकी के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी । वस्तुतः उस युग में परिवार की बालिकाओं की शिक्षा का केन्द्र था। जहाँ उनको अपने पिता, पति या कुल गुरू से शिक्षा प्राप्त होती थी । बालिकाओं को धर्म और साहित्य के अतिरिक्त नृत्य, संगीत, काव्य रचना, वाद-विवाद आदि की शिक्षा दी जाती थी । वैदिक काल के अन्तिम चरण में लगभग 200 ईसा पूर्व से बालिकाओं की विवाह की आयु को कम करके उनकी शिक्षा प्राप्ति के मार्ग में अवरोध उपस्थित कर दिया गया परन्तु गौत्तम बुद्ध ने संघ में बालिकाओं को प्रवेश की आज्ञा देकर उनकी शिक्षा को नवजीवन प्रदान किया किन्तु वह आज्ञा कुलीन व व्यावसायिक वर्गो की बालिकाओं को ही दी गयी। इससे बहुसंख्यक सामान्य बालिकाएँ शिक्षा से वंचित रही ।

बौद्ध काल में नारी को पुनः कुछ गौरव मिला पर वह अपनी प्रतिष्ठा हासिल न कर सकी। मध्यकाल तक आते-आते स्त्रियों की दिशा बद से बदतर होती गयी। किसी हद तक हमारा पौराणिक साहित्य भी नारी को इस स्थिति के लिए उत्तरदायी है। कहीं नारी को शुद्र कहा गया और कहीं-कहीं नरकस्य द्वारम् कहा जाने लगा और कहीं-कहीं तो नारी जो कल तक नर की अर्धांगिनी थी वह अब अधम कहीं जाने लगी।

मध्ययुग

मुस्लिम काल में स्त्रियों की शिक्षा की कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी। मुसलमानों में पर्दा प्रथा का प्रचलन होने के कारण अधिकांश बालिकाएँ शिक्षा से वंचित रहती थी। बालिका शिक्षा की जो व्यवस्था थी वह केवल शाही घरानों और कुलीन वर्गो की कन्याओं तथा कुछ मध्यम वर्ग की मुसलमान बालिकाओं के लिए थी जनसाधारण की बालिकाएँ अपनी प्रारम्भिक अवस्था में मकतबों में बालकों के साथ केवल थोड़ा सा अक्षर ज्ञान प्राप्त कर सकती थी इसके अतिरिक्त बालिका शिक्षा की व्यवस्था केवल नगरों में ही थी। तुर्क अफगान शासन काल में शहजादियों को व्यक्तिगत रूप से शिक्षा दिये जाने का प्रबन्ध था। सुल्तान इल्तुतमिश की पुत्री रजिया सिंहासन पर आरूढ़ हुई। वह विदुषी महिला थी। उसने अश्वरोहण तथा युद्धकला को भी शिक्षा प्राप्त की थी। मालवा के शासक महमूद खिलजी के पुत्र गयासुद्दीन खिलजी ने सांरगपुर में एक मदरसा स्थापित किया था जिनमें स्त्रियों को कलाओं तथा शिल्पों की शिक्षा दी जाती थी।

मुगलों के आक्रमण के कारण स्थिति और भी बिगड़ गई। विदेशी आक्राप्ताओं की पाशविक प्रवृत्तियों के भय से स्त्रियों ने पठन-पाठन बन्द कर दिया था। बाल-विवाह, अनमेल विवाह, सती प्रथा आदि को जंजीरों से बाँधकर उसे निरीह पशु बना दिया गया। नर और नारी के कार्य क्षेत्र में विभाजन रेखा खींच दी गयी। यह माना जाने लगा कि नारी का कार्य क्षेत्र उसका घर है। नारी विलास का साधन बनकर रह गयी देश के आर्थिक ढ़ाँचे ने भी इस भावना के प्रसार में सहायता दी। पुरूष कमाता था, स्त्री को उसकी कमाई पर आश्रित रहना पड़ता था। उसकी आत्मनिर्भरता लुप्त हो गयी। अब वह पुरूष की सहयोगिनी न रहकर आश्रित हो गयी।

ब्रिटिश युग

भारतवर्श में अंग्रेजों के आगमन के साथ युग ने करवट बदली। अंग्रेज यहाँ के शासक थे। अंग्रेजों ने अनेक प्रकार के कार्य किये, जो भारतवासियों के लिए नूतन थे। लोगों के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए और रूढ़ियों को वे छोड़ने लगे। स्वामी दयानन्द, राजाराम मोहन राय आदि समाज सुधारकों ने सामाजिक कुरीतियों एवं अधंविश्वासों का खण्डन करने के उद्देश्य से ब्रह्म समाज व आर्य समाज की स्थापना की तथा समाज मे नारी को सम्मान दिलाने की दिशा में सराहनीय योगदान दिया। नारी को नर की समकक्षता का अधिकर मिला।

स्वतन्त्रता पूर्व बालिका शिक्षा के सम्बन्ध में विभिन्न आयोगों एवं समितियों में सर्वप्रथम 'वुड के घोषण पत्र'' में यह संस्तुति की गयी थी कि बालिका शिक्षा के लिए उदारतापूर्वक सहायता अनुदान देकर प्रोत्साहित किया जाए। आदेश पत्र में उन व्यक्तियों की सराहना की गई जिन्होनें बालिका शिक्षा को प्रोत्सहित करने के लिए धन दिया था। भारत में स्त्री -शिक्षा के लिए सरकार से पूर्ण सहायता प्राप्त होनी

चाहिए। फलस्वरूप नवनिर्मित शिक्षा विभागों ने अनेक स्थानों पर बालिकाओं के लिए प्राथमिक शिक्षा की ओर समुचित प्रशिक्षण की व्यवस्था की सिफारिश की। इस प्रकार कम्पनी को अपेक्षित बालिका शिक्षा में प्रगति आरम्भ हुई।

1882 में स्त्रियों के लिए सभी प्रकार के विद्यालयों की संख्या 2,697 थी जिनमें 1,27,066 छात्राएँ शिक्षा प्राप्त कर रही थी। भारत की विशाल जनसंख्या को देखते हुए छात्राओं की यह संख्या प्रायः नगण्य थी। इसके आधारभूत कारण निम्नलिखित थे-

1. हिन्दू और मुसलमान दोनों बालिका शिक्षा को अनावश्यक समझते थे। उनके मतानुसार स्त्री का उचित स्थान घर में था अतः उसके लिए शिक्षा व्यर्थ थी।
2. भारत में बालविवाह की प्रथा प्रचलित थी। कम आयु में विवाह हो जाने के कारण स्त्रियों की शिक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता था।
3. मुस्लिम शासनकाल में हिन्दुओं और मुसलमानों में पर्दा प्रथा प्रचलित हो गयी थी। अतः एक निश्चित आयु के बाद बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने के लिए घर से बाहर भेजना असम्भव था।

जहाँ तक बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा का प्रश्न है उसे कुछ सीमा तक सन्तोष जनक कहा जा सकता है। प्राथमिक स्कूलों में छात्राओं की संख्या सबसे अधिक थी। 1882 में 1,27,066 शिक्षा प्राप्त करने वाली कुल बालिकाओं मे से 1,24,491 बालिकाएँ प्राथमिक पाठशालाओं में पढ़ रही थी। इस अधिक संख्या का एकमात्र कारण यह था कि भारतीय इस समय तक स्त्रियों के लिए प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव कर चुके थे। परन्तु वे माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के पक्ष में नहीं थे।

इस काल की एक विशेषता यह थी कि स्त्रियाँ प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापिकाओ का कार्य करने के लिए शिक्षा ले रही थी। 1882 में छात्राध्यापिकाओं की संख्या 515 थी। प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की ओर सर्वप्रथम मिशनरियों ने ध्यान दिया। इनका निर्माण करने में मिशनरियों के दो उद्देश्य थे-

1. मिशन बालिका विद्यालयों के लिए अध्यापिकाओ को शिक्षित करना।
2. धर्म परिवर्तित ईसाई स्त्रियों को अध्यापिकाएँ बनाकर उनके जीविकोपार्जन की समस्या को हल करना।

मिशन प्रशिक्षण विद्यालय लोकप्रिय न बन सकें। सम्भ्रान्त व्यक्ति अपनी लड़कियों को वहाँ नहीं भेजना चाहते थे, क्योंकि वहाँ बाइबिल को पढ़ना अनिवार्य था। मिशन प्रशिक्षण विद्यालयों के अतिरिक्त देश में भारतीयों या सरकार द्वारा संचालित एक भी विद्यालय नहीं था। भारतीयों द्वारा इस दिशा में कार्य न किये जाने का कारण यह था कि भारतीय समाज में ऐसी सुशिक्षित महिलाओं का अभाव था जो प्रधान अध्यापिकाओं के रूप में कार्य कर सके। 1854 के घोषणा -पत्र में अध्यापिकाओं की दीक्षा के लिए आदेश दिये जाने पर भी सरकार ने इस ओर कोई कदम नहीं उठाया था।

‘‘ हन्टर शिक्षा आयोग (1882)’’ ने नारी शिक्षा को अधिक प्रगतिशील बनाने के लिए आवश्यक सुविधाएँ जुटाने की बात कही। लड़कियों के लिए कन्या नार्मल स्कूल खोलने , उनकी संख्या बढ़ाने, पाठ्यक्रम को सरल और उपयोगी बनाने पर बल देकर आयोग ने बालिका शिक्षा के लिए निरीक्षिकाओ की नियुक्तियाँ करने का सुझाव दिया। इस आयोग की संस्तुति के आधार पर सरकार ने बालिका शिक्षा

लयों को अनुदान देना प्रारम्भ किया । सन् 1992 तक 5628 प्राथमिक विद्यालय हो गये जिनमें 4,47,470 छात्राओं के लिए शिक्षा व्यवस्था हो चुकी थी ।

सन् 1901 में मिशनरियों के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर आर्य समाज ने शिक्षा के विकास की दृष्टि से बालिका शिक्षा के लिए शिक्षालयों की स्थापना आवश्यक समझी प्रमुख केन्द्रों एवं नगरों में अनेक कन्या पाठशालाएँ स्थापित की गयी। राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित होकर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्वाविधान में हरिद्वार और वृन्दावन में लड़कों के गुरूकुलों के साथ-साथ कन्या गुरूकुल भी खोले गये। इसी समय 1901 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शान्ति-निकेतन में बालिका शिक्षा विभाग की स्थापना की थी। सन् 1904 में श्रीमति ऐनी बेसेन्ट ने बनारस मे सेन्ट्रल हिन्दु बालिका विद्यालय की स्थापना की । सन् 1882 से 1902 तक बालिका शिक्षा की प्रगति मन्द अवश्य थी पर वह निरन्तर होती रही । अतः इस अवधि में प्राथमिक शिक्षा में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अधिक उन्नति हुई । क्योकि 1882 में अध्ययन करने वाली बालिकाओं की संख्या 1,24,491 से बढ़कर 1902 में 3,48,410 हो गयी । प्राथमिक विद्यालयों में बालकों और बालिकाओं के पाठ्यक्रम मे अन्तर कर दिया गया था छात्राओं को गणित, भूगोल और इतिहास के स्थान पर संगीत, चित्रकला और सिलाई, कढ़ाई की शिक्षा दी जाने लगी थी विशेष रूप से हिन्दू इसकी उपयोगिता समझने लगे । हिन्दू समाज में इस परिवर्तित दृष्टि कोण को उपस्थित करने का श्रेय पण्डित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर और आगरकर जैसे उत्साही समाज सुधारकों को था । इन निःस्वार्थ समाज सेवकों ने कन्या विद्यालयों के निर्माण के लिए जनता से धन एकत्र करने में अथक प्रयास किये और देश के विभिन्न भागों में बालिका विद्यालयों की स्थापना करके शिक्षा प्रसार में सराहनीय योग दिया।

गोखले विधेयक (1911)- गोपाल कृष्ण गोखले पहले नेता थे जिन्होने ब्रिटिश संसद में भारतीय नागरिकों के लिए अनिवार्य शिक्षा की मांग की । उनकी दूरदर्षिता के कारण अनिवार्य शिक्षा विधेयक प्रस्तावित हुआ । सामाजिक कुरीतियों, प्रथाओं, एवं पर्दा प्रथा के कारण अनिवार्य शिक्षा को अपनाना कठिन था, फिर भी उन्होने सरकार को सुझाया कि वह 6 से लेकर 10 वर्ष तक (चार वर्ष) के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी । पहले बालको के लिए और बाद में बालिकाओं के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाये । यह विधेयक पास नहीं हो सका और शिक्षा अनिवार्यता ग्रहण न कर सकी । सन् 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ने के कारण शिक्षा की प्रगति अवरूद्ध हो गयी। यह विधेयक गोखले के प्रस्ताव पर आधारित था और उसकी मुख्य बातें निम्नलिखित थी-

1. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अधिनियम को उन स्थानीय बोर्डो के क्षेत्रों में लागू किया जाये जहाँ के बच्चों का एक निश्चित प्रतिशत प्रारम्भिक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहा है ।
2. स्थानीय बोर्ड सरकार की पूर्व स्वीकृति प्राप्त करके इस अधिनियम को लागू कर सकते है ।
3. प्राथमिक शिक्षा के व्यय के लिए स्थानीय बोर्ड शिक्षा कर लगा सकते है ।
4. अभिभावकों के लिए 6 से 10 वर्ष तक की आयु के बालकों को प्राथमिक विद्यालयों में भेजना अनिवार्य हो यदि वे इस नियम का उल्लंघन करें तो उन्हें दण्ड दिया जायें ।
5. कालान्तर मे बालिकाओं के लिए भी प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाये ।
6. जिस अभिभावक की आय 10 रूपये मासिक के कम हो उससे शिक्षा शुल्क न लिया जायें ।

7. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का व्यय भार स्थानीय बोर्डो और सरकार द्वारा वहन किया जायें, सरकार सम्पूर्ण व्यय का 2/3 भाग दें।

उपरोक्त सुझावों को देखने से ज्ञात होता है कि गोखले विधेयक अत्यन्त साधारण था। इसको प्रस्तुत करते हुए उन्होनें अति विन्रम भाव से गवर्नर जनरल को सम्बोधित करते हुए कहा- श्रीमान जी! सारांश मे मेरा विधेयक यह है, ‘अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का श्रीगणेशाय करने का यह लघु एवं तुच्छ प्रयास है।’’

विधेयक को जनमत संग्रह के लिए स्थानीय सरकारों, विश्वविद्यालयों एवं कुछ व्यक्तिगत संस्थाओं के पास भेजा गया। 17 मार्च 1912 को सभा में विधेयक पर वाद-विवाद प्रारम्भ हुआ, दो दिन के भीषण संघर्ष के पश्चात 19 मार्च 1912 को इसे 13 वोटों के विरूद्ध 38 वोटों से गिरा दिया गया। दुख की बात यह है कि सरकारी सदस्यों ने तो इसके विपक्ष में मत प्रदान किया कि परन्तु उनके साथ-साथ जमींदार सदस्यों ने भी अपने गोरे शासकों को प्रसन्न करने के लिए ऐसा ही किया। इस प्रकार भारत के कतिमय व्यक्तियों की स्वार्थसिद्धि इस देश की जनशिक्षा में बाधक हुई।

कर्जन ने स्वीकार किया था कि भारत में बालिका शिक्षा बहुत पिछड़ी हुई दशा में है। उसके समय में सम्पूर्ण भारत में केवल 4,24,000 लड़कियाँ विभिन्न प्रकार के स्कूलों में शिक्षा ग्रहण कर रही थी। इसमें से लगभग 1/3 ऐंग्लो एण्डियन और भारतीय ईसाई थी। कर्जन ने बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने का निश्चय किया परन्तु भारतीयों को रूढ़िवादिता पर्दा प्रथा और बालविवाह प्रथा की कठिनाईयाँ उसके समक्ष आई। अतः उसने बालिकाओं के लिए कुछ आदर्श विद्यालयों की स्थापना की और उनमें सुयोग्य अध्यापिकाओं की नियुक्ति करके बालिका शिक्षा को विस्तृत करने का मार्ग अपनाया। इन कार्यो के परिणाम सन्तोष जनक नहीं निकले और बालिका शिक्षा अपनी पूर्व स्थिति में ही रही।

शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव में बालिका शिक्षा की ओर ध्यान दिया गया। इसमें स्वीकार किया गया कि भारतीयों की सामाजिक प्रथाएँ स्त्रियों की शिक्षा में अवरोध डालती है। समाज के इन बन्धनों को तिरस्कृत करके बालिका शिक्षा का प्रसार किया जाना सम्भव नहीं है। अतः प्रान्तीय सरकारों को लिखा गया कि वे स्थानीय सामाजिक परिस्थितियों को अपने दृष्टि कोण में रखकर बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए अपनी योजनाएँ भेजे। इसके साथ ही सरकारी प्रस्ताव में बालिका शिक्षा के विकास के लिए निम्नलिखित सामान्य सिद्धान्त निर्धारित किये गये-

1. बालिकाओं को जीवनोपयोगी शिक्षा दी जाए और वह ऐसी हो जिसे वे सामाजिक जीवन में अपना उचित स्थान ग्रहण कर सकें।
2. बालिकाओं को बालकों से भिन्न शिक्षा दी जायें और इनमें परीक्षाओं को कोई महत्व न दिया जाए।
3. बालिकाओं की शिक्षा में स्वास्थ्य विज्ञान को विशेष ध्यान दिया जाए और स्थानीय सामाजिक वातावरण को ध्यान में रखा जाए।
4. बालिका विद्यालयों में शिक्षण तथा निरीक्षण का कार्य करने के लिए स्त्रियाँ ही नियुक्त की जाएँ।

इस नवीन शिक्षा नीति के फलस्वरूप लड़कियों की शिक्षा को प्रेरणा मिली और उसके प्रत्येक स्तर पर प्रगति के चिह्न दिखलाई देने लगे। सन् 1921 में प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ने वाली बालिकाओं की

संख्या 11,98,550 थी जबकि 1910 में यह संख्या 3,48,510 थी। इस काल में शिक्षण विद्यालयों में दीक्षा देने वाली छात्राओं की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। 1881 में इस प्रकार की छात्राओं की संख्या 515,1901 में 1,412 और 1921 में 4,321 थी। बंगाल में स्त्री - शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए 1907 में बालिका शिक्षा समिति की स्थापना की गयी। पर्दाशीन स्त्रियों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया गया।

'' हर्टाग समिति 1927'' इस समिति ने बालिका शिक्षा सम्बन्धी विविध संस्तुतियाँ प्रस्तुत की। इस समिति के बालिका शिक्षा सम्बन्धी कुछ प्रमुख सुझाव निम्न है-

1. बालक बालिकाओं के लिए समान रूप से शिक्षा व्यवस्था की जानी चाहिए तथा समान धन व्यय किया जाना चाहिए।
2. बालिका विद्यालयों के निरीक्षणार्थ निरीक्षिकाओं की संख्या बढ़ायी जानी चाहिए।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकारिक बालिका विद्यालय स्थापित करने चाहिए।
4. बालिकाओ के लिए गृह-विज्ञान, संगीत, कला, स्वास्थ्य और परिचर्या की शिक्षा व्यवस्था की जानी चाहिए।

1921 से 1937 तक बालिका शिक्षा में व्यक्तिगत एवं सरकारी प्रयासों द्वारा उन्नति हुई। 1929 में अजमेर के ''हरविलास शारदा'' द्वारा बालविवाह प्रस्तावित विधेयक द्वारा बालविवाह पर निशेध लगाया गया और 'शारदा अधिनियम 1929' का निर्माण किया गया। इस नियम से कम आयु की बालिकाओं को शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिला। स्त्रियों को मतदान का अधिकार मिला। उपरोक्त सामाजिक एवं राजनैतिक सुधारों से स्त्री जाति में आत्मसम्मान जाग्रत हुआ। इतना ही नहीं स्त्रियों ने 1926 में अखिल भारतीय संघ का निर्माण किया और 1927 में अखिल भारतीय बालिका शिक्षा आयोजित किया जिसमें उन्होनें पुरुषों के अनुरूप विविध प्रकार की शिक्षा की अधिकारिणी होने की मांग का नारा बुलन्द किया।

अन्त में समिति ने बलपूर्वक सिफारिश करते हुए लिखा'' शिक्षा प्राप्त करना केवल पुरूष का ही विशेषाधिकार नहीं है। अपितु पुरूष और स्त्री दोनों का समान अधिकार है। सामाजिक एवं राष्ट्रीय व्यवस्था को एवं स्वयं अपने को क्षति पहुँचाए बिना स्त्रीऔर पुरूष में से कोई भी अकेला प्रगति नहीं कर सकता है। दोनों को शिक्षा में सन्तुलन करने का समय आ गया है। हमारा यह निश्चित मत है कि समग्र रूप से भारतीय शिक्षा की प्रगति के हित में शिक्षा प्रसार की प्रत्येक योजना में बालिका शिक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।''

सन् 1937 में वर्धा शिक्षा योजना के अनुसार 6 वर्ष से 14 वर्ष तक के बालक बालिकाओं के लिए बेसिक अनिवार्य शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था पर बल दिया गया। बालिकाओं के लिए बालिका उपयोगी पाठ्यक्रम का चयन करके उसका विकास करने की योजना और गृहशिल्प की व्यवस्था की गयी। गाँधी जी कहते थे ''जनसाधारण में व्याप्त अशिक्षा भारत के लिए कलंक और पाप है, उसका विनाश किया जाना चाहिए।''

1937 से 1947 तक विशेष रूप से बालिका शिक्षा में तीव्र प्रगति हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारत के विभिन्न सरकारी विभागों एवं व्यापारिक कार्यालयों में शिक्षित व्यक्तियों की मांग बढ़ी। फलस्वरूप अनेक स्त्रियाँ उनमें कार्य करने लगी। नौकरी करने से स्त्रियों ने जिस आर्थिक स्वतन्त्रता के आनन्द का उपयोग किया उससे उन्हें शिक्षा ग्रहण करने की अधिक प्रेरणा प्राप्त हुई। युद्ध काल में महँगाई अधिक हो जाने के कारण मध्यम वर्ग के व्यक्ति आर्थिक संकट में थे अतः उनमें से जो उदार विचार के थे उन्होने अपनी स्त्रियों को घर से बाहर जाकर नौकरी करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। इस परिवर्तित दृष्टिकोण ने बालिका शिक्षा के उन्नयन में अतिशय योग दिया। 1947 में स्त्रियों के लिए सामान्य तथा विशिष्ट शिक्षा केलिए 16,951 संस्थाएँ थी, जिनमें 3,55,05,503 लड़कियाँ शिक्षा का लाभ उठा रही थी।

स्वतन्त्रता के पश्चात

स्वतन्त्रता के बालक बालिका शिक्षा का जो विकास हुआ है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बालिका शिक्षा की ओर हमारा दृष्टिकोण ही बदल गया। स्त्रियों को पुरूषों के समान स्तर पर लाने के लिए आवश्यक सामाजिक, आर्थिक और कानूनी परिवर्तन किये गये और एक नये युग का शुभारम्भ हुआ। भारत का संविधान पुरूष और नारी दोनो के लिए समान अधिकार देता है। कुछ विशेष विधार्न स्त्रियों के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्तर को ऊँचा उठाने हेतु है।

अनुच्छेद 15(1), 16(1),16 (2) में उल्लेखित है कि किसी भी नागरिक से लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा। सरकार ने नारी उत्थान के लिए श्रीमति जयन्ती पटनायक की अध्यक्षता मे नेशनल कमीशन ऑफ वीमेन की स्थापना की। स्त्रियों के उत्थान के लिए यह कमीशन एक अच्छा अस्त्र साबित होगा, ऐसी आशा की गयी।

स्वतन्त्र भारत की नारी की सामाजिक स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहा है। जिन बन्धनों में वह बँधी हुई थी वे धीरे-धीरे ढीले होते जा रहे है। जिस स्वतन्त्रता से उसे वंचित कर दिया गया था। वह उसे पुनः प्राप्त हो रही थी। उसके सम्बन्ध में ''पुरूषों का दृष्टिकोण बदल रहा है। भारतीय संविधान ने भी नारी को समकक्षता प्रदान करते हुए घोषित किया-''राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।[3]

स्वतन्त्रता के पश्चात् बालिका शिक्षा के सन्दर्भ में आयोगों एवं समितियों ने निम्न कार्य किये-

राधाकृष्णन कमीशन (1948-491), जिसे विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग भी कहते है, ने बालिका शिक्षा पर बल देते हुए कहा कि '' शिक्षित स्त्रियों के बिना शिक्षित व्यक्ति नहीं हो सकते।'' इस आयोग ने बालिका शिक्षा के विकासार्थ कुछ सुझाव दिये।

1. नारी को सुमाता तथा सुगृहणी बनाने की शिक्षा दी जाए।
2. स्त्रियों के लिए शिक्षा सुविधाओं का विस्तार किया जाए।
3. स्त्रियों को गृह-प्रबन्ध अध्ययन की प्रेरणा और अवसर दिये जाएँ।
4. अध्यापिकाओं को समान कार्यो के लिए अध्यापकों के बराबर वेतन दिया जाए।

5. ऐसा पाठ्यक्रम बनाया जाए जो बालिकाओं को समाज में समान स्थान दिला सकें।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने नारी शिक्षा के प्रसार के लिए अधिक उत्साह का प्रदर्शन किया। नये संविधान का उद्देश्य भारत में एक ऐसे संविधान की संरचना करनी है जो सब नागरिकों को बिना धर्म, जाति अथवा लिंग भेद के न्याय एवं समानता पर आधारित हो। इसीलिए सरकार द्वारा बालिका शिक्षा के लिए प्रभावशाली कदम उठाये गये। वर्ष 1949-50 के प्राथमिक स्कूलों में बालिकाओं की संख्या का प्रतिशत मात्र 28 था।

योजना आयोग द्वारा प्रथम पंचवर्षीय योजना में बालिका शिक्षा के विकास हेतु जो लक्ष्य निर्धारित किये गये उसके परिणामस्वरूप स्कूल जाने वाली 6-11 वर्ष आयु वर्ग की बालिकाओं की संख्या का प्रतिशत वर्ष 1955-56 में 40 प्रतिशत तक पहुँच गया जो कि वर्ष 1951-51 मे मात्र 23.3 प्रतिशत था। योजना आयोग द्वारा अत्यन्त पिछड़ी बालिकाओं तथा महिलाओं को शिक्षा प्रदान किये जाने की शिक्षा हेतु आवश्यक लक्ष्य निर्धारित किये तथा विभिन्न सामाजिक संस्थाओं के सहयोग से उन्हें शिक्षित करने हेतु पूरे प्रयास किये |

इस अवधि में बालिका शिक्षा संस्थाओं की संख्या 61 लाख ये बढ़कर 81 लाख हो गयी। इस संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि का कारण बालिकाओं का सहशिक्षा में प्रवेश लेना था। केवल बालिकाओं की शिक्षा देने वाली संस्थाओं की संख्या इस अवधि में 16.814 से बढ़कर 18.671 तक पहुँच गयी। जबकि अध्ययनरत बालिकाओं की संख्या इस अवधि में क्रमशः 64.7 लाख से 93 लाख तक पहुँच गयी जो कि लगभग 42.6 प्रतिशत थी।

वर्ष 1951-1956 योजना काल में बालिका शिक्षा के विकास हेतु सरकार द्वारा पारित कानूनों तथा वैवाहिक जीवन में मधुरता तथा समरसता बनाये रखने के लिए 1955 में बना ‘‘ हिन्दु विवाह अधिनियम,’’ 1952 में बना विशेष विवाह अधिनियम मुख्य है जिसमें अन्तर्जातीय विवाह को वैध घोषित किया गया तथा वर व कन्या के विवाह की न्यूनतम आयु 21 व 18 वर्ष निश्चित हो गयी। 1954 में जब यू. जी. सी. बिल संसद में पेश किया गया तो मिस जयश्री तथा श्री डी. सी. शर्मा ने महिलाओं को भी पुरूषों के समान ही शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध कराने पर विशेष जोर दिया। उन्होनें कहा कि पुरूषों के समान स्त्रियों को भी विद्यालयों में प्रवेश, शिक्षकों की भर्ती आदि समस्त पहलुओं पर समान रूप से नामित किया जाना चाहिए।[1]

योजना आयोग द्वारा दूसरी पंचवर्षीय योजना में स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। इस योजना काल में महिला शिक्षकों को शिक्षक प्रशिक्षण हेतु विशेष व्यवस्था की गयी क्योकि महिला शिक्षकों के अभाव में शिक्षा का विकास ठीक प्रकार से नहीं हो पा था। इस योजना में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली स्त्रियों के लिए मकान आदि की सुविधाएँ दिये जाने पर विशेष ध्यान दिया गया। बालिकाओं को शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियाँ एवं विभिन्न राज्यों में स्त्रियों को निम्नलिखित अनुदान प्रदान किये जाने की व्यवस्था की गयी-

1. ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षकों के लिए निःशुल्क आवासीय व्यवस्था।
2. स्कूलों में आया की नियुक्ति हेतु।

3. शिक्षण प्रशिक्षण हेतु महिला शिक्षकों को छात्रवृत्ति प्रदान करना।

4. रिशर कोर्स की व्यवस्था।

इस योजना काल में सरकार द्वारा पारित कानून हिन्दु माइनारिटी एन्ड गार्जियनशिप एक्ट (हिन्दु अल्पवयस्कता तथा अभिभावकता अधिनियम) 1956 में बना। इस नियम ने बालिका शिक्षा के विकास मे सहयोग किया।

राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति (1958) को दुर्गाबाई देशमुख समिति के नाम से भी जानते है। महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान देने के उद्देश्य से दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी। इसका मुख्य उद्देश्य बालिका शिक्षा की विभिन्न समस्याओं का समाधान करने के लिए सुझाव देना था। समिति ने 1959 में निम्नलिखित सुझान प्रस्तुत किये-

1. कुछ वर्षो तक बालिका शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता तथा स्त्रियों के लिए अलग से प्रशासनिक व्यवस्था भी की जानी चाहिए।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में बालिका शिक्षा के विकास हेतु सरलीकृत अनुदान किये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए।
3. उपलब्ध धनराशि का उपयोग बालिकाओं के मिडिल तथा माध्यमिक स्तर के विद्यालयों, शिक्षक प्रशिक्षण स्कूलों, छात्रावास तथा महिला अध्यापिकाओं हेतु छात्रावास बनाये जाने के लिए अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए।
4. राज्यों में बालिकाओं एवं बालिका शिक्षा की राज्य परिषदों का निर्माण किया जाए।
5. बालक तथा बालिका शिक्षा के लिए विषमता को शीघ्र समाप्त किया जाए।

सन् 1983 में बना अपराधिक दण्ड संहिता अधिनियम तथा महिला का अश्लील प्रस्तुतीकरण विरोध कानून 1986 का प्रचार प्रसार तेज करना चाहिए। यहाँ पर यह स्मरणीय है कि जितना विशाल यह कार्य है उसके लिए यहाँ पर्याप्त नहीं है कि इस क्षेत्र मे केवल सरकारी मशीनें ही कार्य करें, इसके लिए यह भी आवश्यक है कि स्वयंसेवी संस्थाएँ आगे आयें और स्त्रियों को उन कानूनों के प्रावधानों से अवगत करायें जिनके लाभ उन्हें मिल सकते है।

बालिकाओं की शिक्षा हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 मे निम्नलिखित उपाय सुझाये गये-

1. बालिकाओं की शिक्षा के लिए परिवेश का निर्माण करना।
2. औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनो प्रकार की शिक्षा के लिए सुविधाएँ बढाना।
3. वर्तमान कार्यक्रम का विस्तार एवं अनेक सहायता कार्यक्रम को प्रारम्भ किया जायें जिससे बालिकाओं का स्तर बढ़ाया जा सकें।
4. आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुपूरक पाठ्यक्रम तैयार करना।
5. निरक्षर स्त्रियों के लिए युद्ध स्तर पर कार्य करके निरक्षरता दूर करने के उपाय किये जायें। जिससे स्वयंसेवी संगठन् सम्पूर्ण मानव शक्ति का सहयोग लिया जाये।

प्रोफेसर राममूर्ति समिति (1991) के बालिका शिक्षा पर निम्नलिखित सुझाव थे-

1. अध्यापिकाओं की अधिक से अधिक नियुक्ति की जाए।
2. विद्यालयों में पोषण, स्वास्थ्य एवं बाल विकास का समावेश किया जाए।
3. विभिन्न स्तरों पर महिला अनुसंधान केन्द्रो की स्थापना की जाए।
4. महिला शिक्षा के लिए अलग से धन का प्रावधान किया जाए।
5. छात्रवृतियाँ, मुफ्त पाठ्य-पुस्तकों का वितरण एवं अन्य प्रोत्साहन अधिक से अधिक दिये जाएँ।

आधुनिक प्रयास

नामांकन में वृद्धि

बालिकाओं के नामांकन में वृद्धि करने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार की योजनाएँ सरकार द्वारा लागू की गयी परन्तु उनकी पूर्ण जानकारी आम जनता को न होने के कारण वह पूर्णतः इसे गति देने मे असफल सिद्ध हुई। प्राप्त आंकड़े दर्शाते है कि वर्ष 1978-79 में 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों में नामांकन न कराने वाली लड़कियों की संख्या 66 प्रतिशत थी।

राष्ट्रीय समिति का गठन

शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार द्वारा महिलाओं की शिक्षा हेतु गठित राष्ट्रीय समिति ने 1974 मे अपनी 13 वीं बैठक मे निम्नलिखित मुख्य सिफारिशें की।

1. केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों तथा स्वायत्त सेवा संस्थाओं को अनुदान के रूप मे बालिका शिक्षा के विकास हेतु विशेष धनराशि प्रदान की जाए।
2. लड़कियों के नामांकन में वृद्धि हेतु विशेष सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाएँ।
3. महिलाओं को शिक्षण प्रशिक्षण कण्डेन्स कोर्स के द्वारा प्रदान किया जाए।
4. स्थानीय महिलाओं को शिक्षक के रूप में कार्य करने हेतु प्रेरित करने का प्रयास किया जाए।
5. ऐसी बालिकाओं के लिए जो बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़ देती है ऐसा पाठ्यक्रम तैयार करना चाहिए जिसे वे अनौपचारिक शिक्षा के रूप में ग्रहण कर सकें।
6. महिला शिक्षकों के लिए शहरों और नगरों में स्टाप क्वाटर्स बनाये जाने चाहिए तथा उन्हें पूरी सुरक्षा प्रदान किये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

यह उत्साहजनक है कि केन्द्र सरकार ने महिलाओं की समस्याओं का अनुभव किया और पाया कि अधिकांश महिलाएँ अभी भी सामाजिक और आर्थिक असमानताओं से प्रभावित है लेकिन यह दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि बालिका शिक्षा के लिए बनायी गयी योजनाएँ ठीक प्रकार से लागू न हो पायी और महिलाओं के जीवन और शिक्षा मे कोई सकारात्मक प्रगति न हो सकी।

भारतीय महिलाओं के शैक्षिक स्तर सम्बन्धी समिति की रिपोर्ट 18 मई 1975 को राज्य सभा के पटल पर रखी गयी। इस पर बोलते हुए तत्कालीन शिक्षा मंत्री नुरूल हसन ने कहा '' पिछले 28 वर्षो में स्त्रियों

की दशा में व्यापक सुधार आया है। उन्हें संविधान ने पूरी सुरक्षा के साथ-साथ कई शैक्षिक योजनाओं में भी सहभागी बनाया है तथा कानूनी मापदण्ड भी उनकी प्रगति में सहायक हुए है।

बहस में भाग लेते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमति इन्दिरा गाँधी ने कहा कि '' किसी भी समाज का स्तर वहाँ की महिलाओं के स्तर से आँका जाता है। महिलाएँ आज भी पुरूष प्रधान समाज में रह रही है। उन्हें जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त हर क्षेत्र में इस मानसिकता से गजरना पड़ता है। चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो अथवा समाज में रहने की बात। महिलाओं का निम्न स्तर अथवा उन्हें विकास की कम सुविधाएँ उपलब्ध कराना समाज को विकलांग बना देता है। संसद में स्त्रियों की दशा की सही तस्वीर प्रस्तुत करते हुए राजा देश पाण्डे ने कहा कि यह वर्ष महिला वर्ष है । मैं जानना चाहूँगी कि सरकार महिलाओं के बारे में क्या सोच रही है। यदि आपका उत्तर यह है कि आप उन्हें पुरूषों के समान ही स्तर प्रदान कर रहे है तो मैं आपके प्रति आभारी हूँ। मैने देखा है कि बहुत से स्थानों पर ऐसे स्कूल तथा होस्टल है। जहाँ बालिकाएँ स्वयं रहकर पढ़-लिख सकती है। परन्तु यदि गाँवों में जाकर हम बालिकाओं की शिक्षा के बारे में देखे तो स्थिति पूर्णतः विपरीत है। वहाँ बालिकाओं को विद्यालय भेजना किसी पर उपकार समझते है। हमें यह स्थिति बदलनी होगी। ऐसे में हम विद्यालय तथा छात्रावासों की संख्या को बढ़ाना चाहिए जहाँ बालिकाओं को ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध हों। विशेष रूप से इस महिला वर्ष में हमें बालिकाओं की शिक्षा पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय महिला आयोग

सन् 1990 में राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम पारित किया गया। इसमें एक अध्यक्ष, एक सचिव एवं पाँच पूर्णकालिक सदस्य थे। यह आयोग 31 जनवरी 1992 से प्रभावी हुआ।

इस आयोग को निम्न कार्य सौंपे गये-

1. महिलाओं को कानूनी सुरक्षा प्रदान की गयी है। उन्हें कारगर ढंग से लागू करने के उपाय सुझाना।
2. महिलाओं को प्रभावित करने वाले कानूनी में कमी, अपर्याप्त या त्रुटि पर संशोधन के भी सुझाव देना।
3. महिलाओं की शिकायतों पर ध्यान देना एवं जहाँ कानूनों का उल्लंघन होता है। समस्याओं को सम्बन्धित अधिकारों तक पहुँचाना।
4. महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक-विकास के लिए योजनाएँ बनाने के लिए प्रक्रिया में भाग लेना।
5. सुधार, गृहो, जेलखानों व अन्य स्थानों पर उनके पुर्नवास तथा दशा सुधारने के बारे में सिफारिशें करना।

गोष्ठी का आयोजन

आयोग द्वारा समय समय पर संगोष्ठी आयोजित की गयी जाती है जिसमे घृणित अपराध की धटनाओं की रोक-थाम के उपायों पर विचार किया गया था। गोष्ठी के माध्यम से जागरूकता पैदा करना है। समाचार पत्रों व मुद्रित सामग्री के द्वारा बालिका शिक्षा और महिला सशक्तिकरण बारे में बताना उद्देश्य है|

बालिका शिक्षा का संगठन

भारतवर्ष में बालिका शिक्षा की व्यवस्था प्राचीन काल से ही दो प्रमुख रूपों में मिलती है। एक तो एक मात्र स्त्री-शिक्षालयों में दी जाती है तथा दूसरी व्यवस्था के अन्तर्गत बालिका शिक्षा अन्य पुरूष छात्रों के साथ सह-शिक्षा विद्यालयों में दी जाती है।

वैदिक काल में बालिका शिक्षा व्यवस्था 'तपोवनों' में संचालित होती थी। इन तपोवनों में महिलाओं तथा पुरूषों के लिए शिक्षा-व्यवस्था न होकर कुमारियों और कुमारों जिन्हें ब्रह्मचारिणी और ब्रह्मचारी कह कर पुकारा जाता था, के लिए होती थी। कुमार आश्रम बहुत दूरी पर पृथक्-पृथक् हुआ करते थे जिनकी व्यवस्थाएँ पुरूष व्यवस्थापिकों (ऋषियो) तथा स्त्री व्यवस्थापिकाओं (विदुषियों) के हाथों में होती थी। परन्तु गुरू-आश्रमों मे यदि गुरू कोई कन्या रखता था तो वह कुमार-विद्यार्थियों के साथ अध्ययन कर लेती थी। गुरू के आश्रम में कुमार और कुमारी छात्राएँ भाई-बहिन के सम्बन्ध स्थापित करके अध्ययनशील रहते थे। पुराने काल में कुमार और कुमारी को जीवन के लिए तैयार किया जाता था। अतः इनका ब्रह्मचर्य-काल शक्ति-संचय का काल होता था। इस शक्ति को संचित करके वे कठोर जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्मचर्याश्रम पूर्ण करते थे और बाद में गृहस्थाश्रम का उपभोग करके योग्य सन्तान उत्पन्न करते थे। इसलिए आधुनिक गुरूकुल प्रणाली जिसे युग प्रवत्र्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्थापित किया था, इसी धारणा से चलायी थी कि कुमार और कुमारी पृथक्-पृथक् रहकर शिक्षार्जन काल में ब्रह्मचर्यपूर्वक रह सकें और शक्ति संचित करके अपने भावी जीवन में आने वाले प्रत्येक जीवन संघर्ष को झेलकर सफलता प्राप्त कर सकें।

परन्तु आज की शिक्षा-व्यवस्था में पुरातन सांस्कृतिक परम्पराओं को कोई स्थान नहीं दिया जाता। न तो अभिभावक ही न शिक्षा-व्यवस्थापक एवं प्रशासक ही कुमार और कुमारियों के लिए उनके उज्जवल भविष्य की कामना करते है। उनका शिक्षा से तात्पर्य केवल साक्षरता ग्रहण करके विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेना है, और प्रमाण पत्र प्राप्त कर लेना है जो उन्हें नौकरी दिला सके। समझदार व्यक्ति अब भी बह्मचर्य को जीवन के विकास तथा जीवन की तैयारी का प्रमुख साधन मानते है तथा अपने बालक-बालिकाओं को पृथक्-पृथक् विद्यालयों में प्रवेश दिलाकर पढ़ाते है।

आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव और आर्थिक समस्या ने कुमार और कुमारियों को साथ-साथ पढ़ने के लिए बाध्य कर दिया। सरकार तथा समाज पुरूष छात्रों के समान महिला-छात्राओं के लिए शिक्षालय स्थापित नहीं कर सकता। अतः कुमार और कुमारियों के सम्मिलित रूप में पढ़ाने की प्रथा को स्वीकार हुए सह-शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना करनी पड़ी।

बालिका शिक्षा का प्रशासन और नियंत्रण

शिक्षा राज्यों के उत्तरदायित्व का विषय है जिसका विकास राज्यों को ही करना होता है परन्तु केन्द्रीय सरकार राज्यों को विकासात्मक अनुदान प्रतिवर्ष दिया करती है। इस प्रकार बालिका शिक्षा के सभी विद्यालय प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा स्तर तक चार प्रशासकों के नियन्त्रण में है-

1. केन्द्रीय सरकार के प्रशासन मे,
2. राज्य सरकार के प्रशासन में,
3. स्थानीय परिषदों के प्रशासन में,तथा
4. व्यक्तिगत अथवा सामाजिक प्रशासन में।

केन्द्रीय सरकार बालिका शिक्षा की कोई पृथक् व्यवस्था नहीं करती, वह इस शिक्षा को भी शिक्षा मन्त्रालय के माध्यम से सामान्य शिक्षा की भांति व्यवस्थित करती है। परन्तु 'राष्ट्रीय महिला शिक्षा -परिषद' की संस्तुति पर यह विशिष्ट आयोग या समिति नियुक्ति करके उसकी स्थिति का सर्वेक्षण करा लेती है और बालिका शिक्षा के विकास की संस्तुतियाँ स्वीकार करके एक राष्ट्रव्यापी नीति बना लेती है जिसकी सूचना राज्य सरकारों को दे दी जाती है। राज्य सरकारें उस नीति का पालन करके बालिका शिक्षा व्यवस्था करती है।

राज्य सरकारें और प्रदेश में शिक्षा-विभाग की सहायता से सभी स्तरों की शिक्षा की व्यवस्था, प्रशासन और नियन्त्रण करती है। प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा का संचालन शिक्षा-विभाग (प्रान्तीय) करता है। बालिका शिक्षा की व्यवस्था के लिए प्रदेश के शिक्षा विभाग में महिला शिक्षा निदेशक ही उत्तरदायी होती है। निर्धारित महिलाएँ शिक्षा निदेशक अपनी सहायतार्थ 'मण्डलों' की सीमा निर्धारित करके 'विद्यालयों की मण्डलीय निरीक्षिका' की नियुक्ति कराती है। एक मण्डल के सभी कन्या विद्यालयों की शिक्षा-व्यवस्था का प्रशासनिक तथा आर्थिक उत्तरदायित्व उपरोक्त निरीक्षक के माध्यम से सम्पन्न होता है। इस प्रकार बालिका शिक्षा माध्यमिक स्तर तक दोहरे शासन मे रहती है। स्त्री-शिक्षा-संस्थाओं को अन्य पुरूष छात्र विद्यालयों के समान प्रशासनिक तथा नियन्त्रण की दृष्टि से जिला विद्यालय निरीक्षक के आदेशों का पालन करना होता है तथा दूसरी ओर आर्थिक और व्यवस्थापक नियन्त्रण की दृष्टि से उन्हें जिले की सह-निरीक्षिका[3] के आदेशों का भी पालन करना पड़ता है। इस प्रकार बालिका शिक्षा के विकास में दोहरी बाधा उत्पन्न होती है।

स्त्रियों की शिक्षा का प्रशासन शिक्षा विभाग के शिक्षा निदेशकों और महिला उपशिक्षा निदेशक के हाथों मे होने से उचित व्यवस्था नहीं हो पाती। 1958 ई0 में केन्द्रीय सरकार ने 'राष्ट्रीय नारी समिति की नियुक्ति की थी और उसके सुझावानुसार 1959ई0 राष्ट्रीय बालिका शिक्षा परिषद का गठन तथा नियुक्ति की गयी। इस परिषद ने सुझाव दिया था कि केन्द्रीय-शिक्षा मन्त्रालय में एक पृथक् बालिका शिक्षा विभाग खुले जो बालिका शिक्षा के विकास की योजना और कार्यक्रम और नीति निर्धारित करें। इसी प्रकार राज्यों में भी शिक्षा-विभागों के अन्तर्गत बालिका शिक्षा उप-विभाग स्थापित किया जाए और संयुक्त शिक्षा निदेशकों[6] की नियुक्ति की जाए। एक बालिका शिक्षा परामर्शदात्री समिति बनाकर राज्य भर के लिए एक बालिका शिक्षा की नीति संचालित होनी चाहिए। यह योजना केन्द्रीय सरकार के विचाराधीन है।

वर्तमान में बालिकओं की शैक्षिक प्रस्थिति

वर्तमान समय में बालिकओं की शैक्षिक प्रस्थिति मध्यकाल की महिलाओं की तुलना में बेहतर कही जा सकती है। शिक्षा का स्वरूप गतिशील है। समाज में होने वाले सामाजिक-आर्थिक व राजनैतिक परिवर्तन शिक्षा को निरन्तर प्रभावित करते रहते है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के याद भारत ने विभिन्न क्षेत्रो में काफी प्रगति व उन्नति की है परन्तु जहाँ तक महिलाओं की शिक्षा का सवाल है। यह उन्नति इस दिशा मे सराहनीय नहीं कही जा सकती है। निरक्षरता के कारण महिला सर्व गुण सम्पन्न होते हुए भी स्वयंसिद्ध बनने से वंचित रही। समाज का एक बड़ा हिस्सा बालिका शिक्षा को बढ़ाया देने से हिचकिचा रहा था। पुरूष-प्रधान भारतीय समाज में पुरूषो की मानसिकता से यह साफ जाहिर हो रहा है कि प्रकट रूप मे जो बालिका शिक्षा के हिमायती बनते हैं उनमें से अधिकांश व्यक्ति यह नहीं चाहते कि समाज में स्त्रियों का वर्चस्व बढ़ जाये।

विकास और शिक्षा का गहरा रिश्ता है। किसी भी देश की संस्कृति, उसका विकास व प्रगति वहाँ रहने हाले व्यक्तियों की सांस्कृतिक उन्नति, उनके विकास व प्रगति पर निर्भर करता है। महिलाएँ कुल जनसंख्या का लगभग आधा भाग होती है अत: जिस समाज मे आधी जनसंख्या निरक्षर हो वह समाज प्रगति कैसे कर क्षमता है।

भारत मे अनेक ऐसे विद्वान, चिन्तनशील व समाज सुधारक हुये है जिन्होंने नारी की महत्ता को जाना, पहचाना व माना है। इन लोगों के आगे आने से तथा नेतृत्व से भारत मे बालिका शिक्षा पर बल दिया गया। प्राचीनकाल से अब तक के इतिहास को देखे तो वर्तमान समय में नारी शिक्षा में बढ़ोत्तरी हुई है।

जहां पहले समाज मे लड़कियों को पढ़ने नहीं भेजा जाता था तथा यह माना जाता था कि लड़की है, पढ़ कर क्या करेगी? इसे तो घर गृहस्थी के कार्य सिखने चाहिये। पढ़ाई सिर्फ लड़को के लिये हैं उन्हे आगे चलकर नौकरी करनी है। लेकिन इतिहास साक्षी है कि जब-जब समाज या राष्ट्र ने नारी को अवसर व अधिकार दिये हैं, तब-तब नारी ने विश्व के समक्ष अपनी श्रेष्ठतम रूप को प्रस्तुत किया है। शिक्षा के क्षेत्र में गार्गी, मैत्रेयी, केशा और विश्वपारा जैसी विदुषियॅा आज भी शिक्षा में अपनी अमूल्य योगदान के लिये पूजनीय है।

वर्ष 1956 मे महिला शिक्षा राष्ट्रीय समिति की स्थापना की गई, जिसने स्त्रियों की शिक्षा से सम्बन्धित विविध समस्याओं और बाधाओं की ओर ध्यान आकृष्ट क्रिया। समिति का सुझाव था कि लड़कों के समान ही लड़कियों को शिक्षा दी जानी चाहिये। समिति के अनेक सुझावों सरकार ने स्वीकार किया। समिति के मुख्य सुझाव निम्नलिखित थे:-

1. लड़कियों की प्राथमिक स्तर की शिक्षा को बढ़ावा दिया जाये।
2. उनकी शिक्षा में बाधक पारम्परिक नियमों को समाप्त किया जाये।
3. महिला अध्यापिकाओं की नियुक्ति अधिक से अधिक की जाये।
4. माध्यमिक स्तर तक लड़कियों के लिये अलग शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था की जाये।

5. जब तक विद्यालयों में 6-11 वर्ष की 80% छात्राओं का नामांकन न हो जाये, तब तक केन्द्र द्वारा राज्यों को सहायता दी जाये।

6. लड़के व लड़कियों के शिक्षा के अन्तराल को शीघ्र समाप्त किया जायें।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा लड़कियों की शिक्षा के लिये विशेष आर्थिक सहायता हेतु राष्ट्रीय परिषद की स्थापना करना भी उल्लेखनीय है।

स्त्री-पुरूष के शिक्षा के बीच अन्तर के कारणों तथा उसके निराकरण के लिये 1963 में बालक और बालिकाओं के पाठ्यक्रम विभेदीकरण समिति की स्थापना की गयी । समिति का सुझाव था कि प्रारम्भिक स्तर तक लड़के एवं लड़कियों के लिये एक ही विषय वस्तु की व्यवस्था होनी चाहिये । जूनियर हाई स्कूल तक लड़के और लड़कियों दोनों के लिये गृह-विज्ञान जैसी विषय वस्तु का समावेश किया जाना चाहिये जो एक से हो। माध्यमिक स्तर तक भी दस्तकारी और हथकरघा जैसे विषय दोनों के लिये समान रूप से चलाये जाने चाहिये।

भारतीय शिक्षा आयोग 1964-66 ने स्त्रियों की शिक्षा तथा उससे सम्बन्धित समस्याओं पर विस्तृत रूप से विचार किया और उन सभी उद्देश्यों पर पुन: ध्यान दिया जो पहले के शिक्षा के आयोगों के समक्ष थे। आयोग ने सुझाव दिया कि -

"स्त्रियों की शिक्षा को प्रमुख कार्यक्रम के अन्तर्गत रखना चाहिये और उन सभी समस्याओं को समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये, जो स्त्रियों की शिक्षा में बाधक हो । पुरूषों एवं स्त्रियों के बीच की असमानता को समाप्त कर देना चाहिये!"

शिक्षा के महत्व को ध्यान में रखकर शिक्षा आयोग द्वारा 1986 में नीति का निर्धारण किया गया। जिसका मुख्य उद्देश्य था, देश के राष्ट्रीय एकीकरण स्त्रीपुरूष सबको शिक्षा का अवसर प्रदान करने की बात दुहराई गयी। विज्ञान व तकनीकी जैसे विषयों पर विशेष ध्यान दिया गया। साथ ही नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों की बात भी उठाई गयी। इस शिक्षा नीति के अनुसार "लड़कियों की शिक्षा न केवल सामाजिक न्याय के लिये दी जानी चाहिय, अपितु इसलिए भी दी जानी चाहिए कि इससे परिवर्तन और विकास की गति भी तीव्र होती है।"

इन आयोगों और समितियों का एक उल्लेखनीय लाभ यह रहा कि बालिका शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में कम से कम सैद्धांतिक स्तर पर परिवर्तन आया। बालिका शिक्षा को विकास से जोड़ने की बात सोची जाने लगी। यह अनुभव किया जाने लगा कि विकास और अभिवांछित सामाजिक परिवर्तन तब तक सम्भव नहीं हो सकेगा, जब तक बालिका शिक्षा को उससे नहीं जोड़ा जायेगा। यही कारण है कि मानव अधिकार के सार्वभौमिक घोषणा पत्र में उल्लेख किया गया है कि शिक्षा हर मानव का मौलिक अधिकार है, जिसका अवसर बिना किसी भेदभाव के सभी को समान रूप से सुलभ होना चाहिये !

भारतीय संविधान ने 14 वर्ष तक के बच्चो के लिये निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की, जिसे एक दशक में पूरा करने का संकल्प लिया गया। इसका आगामी पंचवर्षीय योजनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ा। प्रथम पंचवर्षीय योजना में देश के समुचित विकास के लिये शिक्षा को प्रमुख आधार

स्वीकार किया गया । फलत: संविधान के निर्देशानुसार तथा विश्वविद्यालय आयोग की संस्तुति के आधार पर प्रथम पंचवर्षीय योजना में बालिका शिक्षा पर विशेष बल दिया गया ।

स्त्रियों की शिक्षा के पिछड़ेपन का आभास वास्तव में तब होता है जब हम शिक्षा के विविध स्तरों पर ध्यान देते हैं । शिक्षा के प्रमुख तीन स्तर होते हैं - प्राथमिक, माध्यमिक, तथा विश्वविद्यालयी । सम्पूर्ण भारतीय स्तर पर प्राथमिक एवं मिडिल स्कूलों में नामांकन दो दशकों तक लगभग अपरिवर्तित रहा और माध्यमिक स्तर पर स्थिति में ह्रास हुआ । हालांकि बालिका शिक्षा के आकड़ों का ग्राफ पिछले वर्षो के मुकाबले मे बढा है फिर भी आशातीत सफलता अभी तक नहीं मिल पाई है ।

भारत में शिक्षा के विकास के परिप्रेक्ष्य में बालिका शिक्षा की स्थिति का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि बालिका शिक्षा में काफी प्रगति हुई है फिर भी स्त्रियों और पुरूषों की शिक्षा का अन्तराल बना हुआ है ।

बालिका शिक्षा का बदलता परिदृश्य

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक प्रस्थिति पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी और इसके फलस्वरूप विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में बालिका शिक्षा पर बल दिया गया ।

संविधान के अनुच्छेद 14 में यह व्यवस्था की गई कि 6-14 वर्श तक के सभी बालक-बालिकाओं को बिना भेदभाव के अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा दी जायेगी । यह माना गया कि महिलाओं के विकास व उत्थान के लिये उनका पढ़ना लिखना व शिक्षित होना अति आवश्यक है । विभिन्न सर्वेक्षणों के ऑकड़े यह बताते हैं कि शिक्षित महिलाओं की तुलना में अशिक्षित महिलाएँ शोषण का शिकार अधिक होती है।

वर्तमान समय में लड़कियाँ, लड़कों की भाँति पढने हेतु विद्यालय जाती है । अभिभावकों की तथा समाज की सोच में बदलाव आने आरम्भ हो गये हैं । जहाँ पहले लड़कियाँ घर की चार-दीवारी में बंद रहकर घरेलू कार्य तक ही सीमित रहती थी अब व पढलिख कर अपने व्यक्तित्व का विकास करती है । अपने भले-बुरे की समझ उनके विकसित हो गई है यही वजह है कि समाज में पर्दा-प्रथा व बाल-विवाह जैसी कुरीतियाँ बन्द होती नजर आ रही है ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद गठित विभिन्न शिक्षा आयोगों व समितियों ने भी भारत में स्त्रियों की शिक्षा पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता पर बल दिया है ।

कोठारी आयोग (1964-66) ने स्त्रियों की शिक्षा तथा उससे सम्बन्धित समस्याओं पर विस्तृत रूप से विचार । आयोग के अनुसार - "स्त्रियों की शिक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिये तथा प्रमुख कार्यक्रम के अन्तर्गत रखा जाना चाहिये और उन सभी समस्याओं को समाप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिये, जो स्त्रियों की शिक्षा में बाधक हो । पुरूषों एवं स्त्रियों के बीच असमानता को समाप्त कर देना चाहिये ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने भी स्त्री-पुरूष सबको समान शिक्षा के अवसर प्रदान करने की बात दुहराई है तथा यह माना है कि "लड़कियों को शिक्षा न केवल सामाजिक न्याय के लिये दी जानी चाहिये, अपितु इसलिए भी कि इससे परिवर्तन और विकास की गति भी तीव्र होती है।"

मानव अधिकार के सार्वभौमिक घोषणा पत्र में उल्लेख किया गया है कि शिक्षा पर हर मानव का मौलिक अधिकार है, जिसका अवसर बिना किसी भेदभाव के सभी को समान रूप से सुलभ होना चाहिये।

स्त्रियों की शिक्षा के विकास हेतु कई नवीन कार्यक्रम चलाये गये जिनमें प्रौढ़ शिक्षा,आँगन बाड़ी, सहशिक्षा आदि मुख्य है।

बालिका शिक्षा की प्रगति

सभ्यता के आदिमयुग मनुवादी व्यवस्था प्रागैतिहासिक काल में नारी की स्थिति पुरूष से बेहतर थी। आर्यों की सभ्यता संस्कृति के प्रचार-प्रसार में स्त्रियों का विशेष योगदान था। उस समय स्त्रियाँ शिक्षा अर्थात ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ थी।

प्राचीन काल के विकासक्रम पर दृष्टिपात करे तो यह तत्व सामने आता है कि यदि महिलाओं के योगदान को हटा दे तो इतिहास का स्वरूप ही बदल जाता है। इतिहास महत्वहीन, सारहीन हो जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि रामायण से सीता को, महाभारत से द्रौपदी, कुन्ती, गन्धारी को, भागवत से देवकी, यशोदा, राधा, रूक्मिणी व गोपियों के चरित्र को हटा दें तो राम कृष्ण एक साधारण पुरूष ही रह जाते है।

नारी शिक्षा का जीता जागता उदाहरण पण्डित मण्डन मिश्र के आने पर उनकी पत्नी का शंकराचार्य से तत्वज्ञान से सम्बन्ध में शास्त्रार्थ है।

शैक्षिक सुविधाओं के विकास हेतु सर्वप्रथम भारत सरकार द्वारा 4 नवम्बर 1948 को राधाकृष्णन आयोग 'विश्वविद्यालयी शिक्षा आयोग की स्थापना की गई। आयोग ने "पढ़ी-लिखी माता घर की भाग्य-विधाता" के आदर्शेपुरूष वाक्य को स्वीकार करते हुये बालिका शिक्षा के विकास कार्य को सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य बताया। आयोग के अनुसार स्त्रियों को कुशल मातृत्व सफल, गृहिणी व परिवार के सफल वित्तमंत्री बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उन्हें गृह अर्थशास्त्र, गृहविज्ञान, गृह प्रबन्धन व मातृ शिशु कल्याण विषयों की शिक्षा उच्च प्राथमिकता के आधार पर दी जाये।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) के प्रारम्भिक वर्षो में देश की साक्षरता दर मात्र 18.33%थी। जिसमें 1961 में तृतीय पंचवर्षीय योजना 1961-66 में साक्षरता का दर 28.30% था जिसमें पुरूष व स्त्री साक्षरता क्रमश: 40.4% व 15.3% रही। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74) में महिला साक्षरता का प्रतिशत 21.97% रहा। उस समय प्रति हजार पुरूषों पर मात्र 440 महिलाएँ ही साक्षर थी। छटी पंचवर्षीय योजना (1980-85) के आरम्भ में 1981 में साक्षरता का प्रतिशत बढ़कर 43.57% हो गया। व 29.67% हो गया। इस काल में बालिका शिक्षा में विशेष सफलता प्राप्त हुई जिसमें पुरूष-स्त्री साक्षरता प्रतिशत क्रमश: 56.38% व 29.67% हो गया। परिणामस्वरूप पुरूष व महिला साक्षरता के मध्य अन्तर घटकर दो गुने से भी कम हो गया। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बालिका शिक्षा पर विशेष बल दिया गया साथ ही तकनीकी व व्यावसायिक क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता बढ़ाने पर विशेष

बल दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप 1991 में साक्षरता का प्रतिशत बढ़कर 52.2 प्रतिशत हो गया। पुरूष व स्त्री साक्षरता प्रतिशत भी बढ़कर क्रमश: 64.13% व 39.29% हो गया।

महिला सशक्तिकरण हेतु सरकार द्वारा अनेक विकास कार्यक्रमों एवं कल्याणकारी योजनाओं का संचालन किया जा रहा है जैसे द्वारका योजना (1982), महिला समाख्या योजना (1989), किशोरी बालिका योजना (1992), ग्रामीण महिला विकास परियोजना (1996), बालिका समृद्धि योजना (1997) एवं स्वंय सिद्ध योजना (2001) आदि । इन परियोजनाओं व कार्यक्रमों के फलस्वरूप महिलाओं की साक्षरता दर मे वृद्धि हुई है !

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार वर्तमान मे महिला साक्षरता पिछले 10 वर्षो में 39.29% से बढ़कर 54.16% हो गई है। इस प्रकार पिछले एक दशक में 14.87% की वृद्धि संभव हो सकी है।

बदलते परिवेश में महिलाओं की प्रस्थिति (बालिका शिक्षा का योगदान)

"महिलाओं की स्थिति ही देश के स्वरूप को निश्चित करती है। " पंडित जवाहरलाल नेहरू

किसी भी देश की खुशहाली के लिये वहाँ की महिलाओं का उल्लेखनीय योगदान होता है। राजाराम मोहन राय के स्त्री सुधारक आन्दोलनों से लेकर वर्तमान काल तक भारतीय महिलाओं की स्थिति में काफी परिवर्तन आया है। अपने ही बल पर महिलाओं ने अपनी स्थिति को सुधारा है और समाज में अपनी एक पहचान बनाई है इसमें बालिका शिक्षा का अभूतपूर्व योगदान रहा है। पुरूष-प्रधान समाज में अपनी जगह बनाने का प्रयास सराहनीय है जिसके लिये उसे कई बाधाओं व अग्नि-परिक्षाओं से गुजरना पड़ा है।

यह सच है कि महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में स्वत्रंता के साठ दशक बीत जाने के पश्चात् भी उतना फर्क नहीं आया जितना आना चाहिये। इसका एक प्रमुख कारण बालिका शिक्षा की कमी रहा है। महिलाओं के बारे में पुरूष प्रधान समाज में अभी तक स्पष्ट व ठोस धारणा नहीं बन पायी है। अधिकांश पुरूष, स्त्री की उन्नती एवं विकास को अपने प्रतिद्वन्दी के रूप में लेते हैं। स्त्रियों की प्रगति को लेकर वे कुण्ठाग्रस्त है। प्रकटरूप में कई पुरूष महिला उत्थान व शिक्षा की बड़ी-बड़ी बाते करते हैं उसके हिमायती बनते हैं परन्तु सच्चाई आने पर यह साफ जाहिर होता है कि उनके मन के किसी कोने में चोर बैठा है उन्हें डर है कि स्त्रियाँ शिक्षित होकर उनसे आगे निकल गई तो उन मान्यताओं, नियमों व प्रतिमानों का क्या होगा जो पुरूष समाज द्वारा स्त्रियों के लिये निर्मित की गई है। इन मान्यताओं ने महिला की स्वतन्त्रता एवं समानता को बाधित किया है। सामाजिक-आर्थिक स्तर पर महिला-पुरूष के लिये नियम व सीमायें अलग-अलग है। पुरूष जीवन और समाज में सब कुछ करने के लिये स्वतन्त्र है और उसे सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है लेकिन महिला समाज में वही कर सकती है, जो पुरूष उसके लिए तय करता है। बदलते सामाजिक परिवेश में स्त्रियों की प्रस्थिति में अन्तर साफ दृष्टिगोचर होता है। जहाँ पहले बालिकायें शिक्षा से वंचित थी आज कोई ऐसा परिवार नहीं जहाँ बालिका-शिक्षा को प्राथमिकता ना दी जा रही हो। ग्रामीण क्षेत्रों में भी अभिभावकों में बालिका की शिक्षा के प्रति जागरूकता आई है।

अभिभावक बालिका की शिक्षा से होने वाले लाभों को समझने लगे हैं उनका जीवन स्तर सुधरने लगा है। सकारात्मक सोच विकसित होने लगी है।

बालिका शिक्षा हेतु केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा भी समय-समय पर विभिन्न योजनायें चलाई जा रही है। शिक्षा के सार्वजनिकरण के फलस्वरूप सबके लिए शिक्षा के अन्तर्गत 6-14, वर्ष के बालक-बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जा रही है।

शिक्षा प्राप्त करने को संविधान द्वारा मौलिक अधिकार करार दिये जाने से, बालिका शिक्षा में अपेक्षाकृत बहुत बदलाव आया है। विद्यालयों, महाविद्यालयों में महिला-नामांकन में बढ़ोत्तरी हुई है। लड़कियॉ विभिन्न व्यावसायिक पाठ्क्रमों का अध्ययन कर रही हैं। आज के समय में कोई ऐसा व्यवसाय नहीं जहाँ स्त्रियों ने अपनी बौद्धिक क्षमता व सूझबूझ का परचम नहीं फहराया हो।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि बदलते सामाजिक-आर्थिक परिवेश में बालिका शिक्षा के प्रति सभी का रूझान बढ़ा है। बालिका शिक्षा की साक्षरता का प्रतिशतांक बढ़ा है। आने वाले समय में ये प्रतिशत मात्रा बढ़ती ही जायेगी, ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है।

बालिका शिक्षा की मुख्य चुनौतियाँ

प्रारम्मिक शिक्षा में बालिकाओं की भागीदारी के मार्ग में अनेक अवरोध है। डी.पी.ई.पी. योजनान्तर्गत विशेष शोध अध्ययनों के माध्यम से प्रारम्मिक शिक्षा में बालिकाओं की भागीदारी में बाधा उत्पन्न करने वाले मुख्य कारणों की पहचान करने हेतु एक सुनियोजित कार्य योजना बनाई गई। इन कारकों में सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक कारक मुख्य रूप से चिहनांकित किये गए यह कारक विद्यालयी वातावरण में भी जड़ जमाए हुए थे। शोध अध्ययन के अनुसार बालिका शिक्षा को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक इस प्रकार है।

बालिका शिक्षा की समस्याएँ

बालिका शिक्षा की स्थिति देखने और विभिन्न समितियों व आयोगों के सुझावों को देखने के पश्चात यह स्पष्ट हो जाता है कि बालिका शिक्षा की अपनी बहुत समस्याएँ हैं यद्यपि सरकार इस दिशा में जागरूक है और प्रत्येक दिशा में प्रयत्नशील है। लेकिन कुछ समस्याएं ऐसी हैं, जिनके कारण बालिका शिक्षा का अपेक्षित विकास नहीं हो पा रहा है।

1. **पक्षपातपूर्ण धारणा** — बालिका शिक्षा के प्रति समाज की उचित धारणा नहीं है। समाज के निम्न व गरीब तबके और विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र में बालिका शिक्षा को अनावश्यक व विलासिता के रूप में देखते हैं इसके साथ ही बाल विवाह, दहेज प्रथा व पर्दा प्रथा आदि कुप्रथाओं ने भी बालिका शिक्षा में बाधा डाली है।
2. **निर्धनता** — परिवार की आर्थिक कठिनाइयाँ भी बालिका शिक्षा में बाधक हैं। लड़कियों की पढ़ाई पर खर्च करने के बदले उस पैसे को उनके दहेज में देना लोग अधिक अच्छा मानते हैं।
3. **प्रशासन** — बालिका शिक्षा का विकास कुशल प्रशासन के अभाव के कारण नहीं हो पा रहा है। बालिका विद्यालयों के निरीक्षण व प्रशासन हेतु ठीक प्रकार की व्यवस्था नहीं की गई। इसके

लिए पृथक व्यवस्था का अभाव है। योग्य प्रधानाध्यापिकाओ का अभाव है। बालिका शिक्षा के विकास की गलत योजनाओं के कारण भी इसका विकास नहीं हो पाया है|

4. **अध्यापिकाओं की कमी** — अध्यापिकाओं की कमी भी बालिका शिक्षा में एक बहुत बड़ी बाधा है। विशेषकर ग्रामीण व पिछड़े क्षेत्रों में अध्यापिकाओं का अभाव है। इसका कारण वहाँ आवास, यातायात, विद्युत आदि सुविधाओं का अभाव होना है।
5. **अपव्यय की समस्या** — बालिका शिक्षा में फिजूलखर्ची की समस्या भी है। कुछ स्त्रियाँ अध्ययन करने के बाद घर बैठी रहती है। हमारे यहां स्त्री अध्यापिकाओं की कमी है लेकिन कुछ स्त्रियाँ काम नहीं कर रहीं। इसका कारण उनके माता—पिता या पति की अनिच्छा अथवा सुविधाओं के अभाव के कारण काम नहीं कर पाना है। इसके साथ ही विभिन्न कारणों से लड़कियों का अपने अध्ययन के बीच में ही पढ़ाई छोड़ देना भी अपव्यय ही है।
6. **पृथक बालिका विद्यालयों का अभाव** — ग्रामीण क्षेत्रों में बालिका विद्यालयों का बहुत अभाव है। शहरों में भी आवश्यकतानुसार पृथक बालिका विद्यालयों का अभाव है। ग्रामीण व पुराने विचारों के अभिभावक अपनी बालिकाओं को सहशिक्षा दिलवाने के पक्ष में नहीं होते। इसलिए प्राय: प्राथमिक शिक्षा के बाद अभिभावक अपनी बालिकाओं को अध्ययन करने से रोक लेते हैं।
7. **पाठ्यक्रम सम्बन्धी दोष** — विभिन्न शिक्षा आयोगों व समितियों के अनुसार पाठ्यक्रम में सुधार हेतु सुझाव दिये गये। छात्र—छात्राओं के लिए समान पाठ्यक्रम की व्यवस्था है। उसमें छात्रों का तुलनात्मक रूप से अधिक ध्यान रखा गया है। छात्राओं से संबंधितविषय अनिवार्य के स्थान पर वैकल्पिक विषय के रूप में रखे गए हैं। जैसे संगीत गृह विज्ञान आदि। प्रचलित पाठ्यक्रम में, सैद्धान्तिकता अधिक है, व्यावहारिकता कम। इसलिए यह पारिवारिक व सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है।
8. **शोध का अभाव** — बालिका शिक्षा से संबंधितविभिन्न पहलुओं पर पर्याप्त शोध कार्य नहीं हुआ। लड़के व लड़कियों की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक व व्यावहारिक आवश्यकताओं पर बहुत कम ध्यान दिया गया है।

बालिका शिक्षा के विकास हेतु किये जा रहे प्रयास

बालिकाओं एवं महिलाओं के शैक्षिक उन्नयन हेतु राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर अनेक कार्यकमों के माध्यम से प्रयास किए गए, जो बालिका एवं महिला शिक्षा के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हुए। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

अनौपचारिक शिक्षा

केन्द्र प्रायोजित योजनान्तर्गत 6—14 आयु वर्ग के विद्यालय न जाने वाले बच्चों के लिए वर्ष 1979—80 से मार्च 31,2001 तक अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम चलाया गया। शिक्षा के दायरे से छूट रहे कामकाजी बच्चों एवं एक बड़ी संख्या में बालिकाओं को चिहनाकित करते हुए अनौपचारिक शिक्षा

योजना के अन्तर्गत विकेन्द्रित प्रबंधन व्यवस्था द्वारा आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम की संबद्धता एवं अधिगम क्रियाओ में विविधता को अपनाकर सभी तक शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करने हेतु छूट प्रदान की गई है। इस योजनान्तर्गत आवासीय क्षेत्रों तक शिक्षा सुविधा की पहुच सुनिश्चित करने हेतु लचीली कार्य योजनाओं हेतु आवासीय शिविर विद्यालय वापिस चलो शिविर सेतु पाठ्यक्रम इत्यादि का प्रावधान है। इस योजना का यह नवीन रूप इन केन्द्रों को सामुदायिक प्रबंधन व्यवस्था हेतु आदेशित करता है।

महिला समाख्या (महिला समानता हेतु शिक्षा)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के उद्देश्यों को मूल रूप में क्रियान्वयन स्तर पर लाने हेतु महिला समाख्या योजना के अन्तर्गत शैक्षिक वातावरण सृजन कर ग्रामीण महिलाओं को शिक्षा हेतु प्रेरित कर संगठित किया गया। वर्ष 1989 में इस योजना का विस्तार कुछ राज्यों में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यकम की सहायता से किया गया। वर्तमान में देश के इस राज्यों में लगभग 9000 से ऊपर गांवों में इस योजना का क्रियान्वयन चल रहा है।

महिला संघ

महिला समाख्या योजनान्तर्गत प्रत्येक गाँव मे महिलाओं की बैठक हेतु जगह देने का प्रावधान है जहॉ पर महिलाएं मिलकर सामूहिक रूप से समस्याओं पर प्रकाश डाल सकें, प्रश्न कर सकें, भयमुक्त होकर अपनी—अपनी बात कह सकें, विचार कर सकें, समीक्षा कर सकें, एवं सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आत्मविश्वास से अपनी आवश्यकताओं के बारे में विचार—विमर्श कर अपनी बात कह सकें। महिलाओं द्वारा उजागर की गई आवश्यकताओं एवं प्राथमिकताओं के आधार पर शैक्षिक अनुसमर्थन प्रदान करने हेतु प्रौढ़ शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, व्यवसायिक प्रशिक्षण, अनुसमर्थन सेवाएं, महिला शिक्षण केन्द्र और पूर्व बाल्यकाल एवं परिचर्या केन्द्रों क चरणबद्ध तरीके से स्थापना की गई।

ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड

वर्ष 1987—88 में प्राथमिक विद्यालयों को बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराना सुनिश्चित करने हेतु ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड की योजना प्रारम्भ की गई। वर्तमान में इसे सर्व शिक्षा अभियान में सम्मिलित कर लिया गया है। ऐसे विकास खण्ड जहाँ महिला साक्षरता दर कम है वही पर इस योजना के अन्तर्गत प्राथमिक विद्यालयों के क्षमता संवर्द्धन में अतिरिक्त महिला शिक्षक एवं शिक्षण अधिगम सामग्री की व्यवस्था करने का प्रावधान है। इस योजनान्तर्गत मुख्य रूप से महिला शिक्षकों की नियुक्ति पर जोर दिया गया इसके लिए वर्ष 1993—94 में योजना को पुन: संशोधित कर यह प्रावधान किया गया कि कम से कम 50 प्रतिशत शिक्षक महिलाऐ होनी चाहिए।

जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (DPEP)

कार्यक्रम योजना के समस्त पहलू लैंगिक और समानता पर मुख्य रूप से केन्द्रित हैं। यह कार्यक्रम कम—महिला—साक्षरता दर वाले जिलों में लागू किया गया| यद्यपि, डी.पी.ई.पी. के अन्तर्गत क्रमबद्ध परिवर्तन हेतु प्रयास किए गए इसके अन्तर्गत लैंगिक असमानता को दूर करने हेतु समेकित प्रयास किए गए,

जैसे— योजना का नियोजन एवं प्रबंधन, बाल—शिक्षण विद्या में सुधार, बालिका शिक्षा हेतु विशेष प्रयास एवं सामुदायिक जागरूकता एवं भागीदारी हेतु कार्य योजना का निर्माण एवं प्रबंधन इत्यादि।

परियोजना निर्माण, क्रियान्वयन और अनुश्रवण की सम्पूर्ण प्रक्रिया लैगिक समानता के परिप्रेक्ष्य में की गई। वार्षिक कार्य योजनाओं में लैंगिक—आधारित—कार्यक्रम स्पष्ट रूप से उल्लिखित किए गए। कार्यक्रम के अन्तर्गत लैगिक असमानता के पहलू को आधार बनाकर प्रस्तुत किया गया, राज्य एवं जिला स्तर पर लैंगिक—समन्वयक की नियुक्ति की गई। कुछ राज्यों में ग्रामीण स्तर पर, ग्राम शिक्षा समिति में महिला प्रतिनिधि का होना अनिवार्य रूप से प्राविधानित किया गया। सभी कार्यकर्ताओं का लैंगिक संवेदीकरण कार्यक्रम एम मुख्य एवं लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। शैक्षिक सुविधा उन्नयन के अन्तर्गत, बस्ती के निकट नवीन विद्यालय की स्थापना, पेयजल एवं शौचालय सुविधा की व्यवस्था करना इत्यादि से बालिका नामांकन एवं ठहराव पर दूरगामी प्रभाव पड़ेगा।

सर्व शिक्षा अभियान

प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु देशव्यापी कार्यक्रम के रूप में सर्व शिक्षा अभियान के राष्ट्रीय कार्यक्रम के द्वारा प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रमों को सफलता प्राप्त हुई है।वर्ष 2007 तक सभी बच्चे पाँच वर्ष की प्राथमिक शिक्षा पूर्ण कर सकें एवं लैंगिक असमानता दूर हो जाए। वर्ष 2010 तक सभी बच्चों को आठ वर्ष की प्रारम्मिक शिक्षा, उच्च प्राथमिक स्तर तक पूरी करने का लक्ष्य है।

शैक्षिक रूप से पिछड़े विकास खण्डों (देश के लगभग एक तिहाई ब्लाँक) में से विशेष रूप से महिला शिक्षा के क्षेत्र के रूप में चिहनांकित किए गए विकास खण्डों के लिए एक विशेष पैकेज का निर्माण किया गया जिसमें बालिका शिक्षा पर विशेष बल देते हुए विशेष सामुदायिक जागरूकता एवं स्थानीय आवश्यकतानुसार प्रयास किए गए इसके अन्तर्गत विद्यालय वातावरण, अनुसमर्थन सेवाएं जैसे—पूर्व बाल्यकाल परिचर्या केन्द्र एवं सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत प्रारम्भिक स्तर पर बालिका शिक्षा हेतु राष्ट्रीय कार्यकम के रूप में विशेष प्रयास किए गए।

भविष्य के लिए योजनाएँ

राष्ट्रीय कार्य योजना में दो तरफा रणनीति तैयार की गई है जिसके अन्तर्गत लैंगिक आधार को मुख्यधारा में लाना एवं विशेष योजनान्तर्गत बालिका और महिला शिक्षा को प्रोत्साहित करना। प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु सर्व शिक्षा अभियान एवं इसके अन्य भाग, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यकम, लोक जुम्बिश कार्यकम, मध्यान्तर भोजन योजना के अन्तर्गत बालिकाओं को शिक्षा की मुख्यधारा में सम्मिलित करने का प्रावधान किया गया है। इन कार्यक्रमों के मुख्य क्षेत्र इस प्रकार है:

- बालिका शिक्षा को समर्थन प्रदान करने में समुदाय की सक्रियता सुनिश्चित करना, विशेष रूप से गाँव एवं विद्यालय में प्रगति का नियमित अनुश्रवण कर, शैक्षिक वातावरण तैयार करना।
- योजना तैयार करने वालों, शिक्षकों और शैक्षिक प्रबन्धकों का प्रशिक्षण एवं लैंगिक संवेदीकरण कार्यक्रम का आयोजन। इस कार्यक्रम में बालिका शिक्षा के क्षेत्र पर विशेष बल दिया जाएगा।

- कक्षा—कक्षों, पाठ्य—पुस्तकों एवं शिक्षण—अधिगम सामग्री को बालिका हेतु मित्रवत् बनाना।

- विशेष प्रयासों की व्यवस्था करना।

महिला एवं बालिका शिक्षा हेतु निर्धारित किये गए उपर्युक्त प्रस्तावित उद्देश्यों को पूरा करने हेतु तीन कार्यक्रम चलाये जा रहें है, महिला समाख्या कार्यक्रम, सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत प्रारम्भिक स्तर पर बालिका शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम और कस्तुरबा गॉधी स्वतंत्र विद्यालय योजना। इन तीन योजनाओं के अतिरिक्त, माध्यमिक स्तर पर नवीन मुक्त बालिका शिक्षा योजना प्रस्तावित की गई। इस योजनान्तर्गत, निम्नांकित प्रावधान किये गए है :—

- शैक्षिक रूप से पिछड़े 500विकास खण्डों को चिहनांकित कर माध्यमिक एवं उच्चर माध्यमिक विद्यालयों का निर्माण करना। इसके लिए दसवीं पंचवर्षीय योजना अवधि हेतु इस कार्य हेतु 5000 मिलियन रूपये की धनराशि का प्रावधान, 100 मिलियन रूपये प्रति विद्यालय की दर से किया गया है।

- शैक्षिक रूप से पिछड़े विकास खण्डों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों की कक्षा IX एव X की बालिकाओं हेतु, दसवीं पंचवर्षीय योजनान्तर्गत 6577.76 मिलियन रूपये लागत की निःशुल्क पाठ्य—पुस्तकें वितरित करने का प्रावधान है।

इन दो कार्य योजनाओं के समन्वय से लैंगिक असमानता को कम करने में किये गए प्रयासों से न केवल नामांकन, ठहराव एवं सम्प्राप्ति में ही अन्तर आएगा, बल्कि विद्यालय का वातावरण भी लैंगिक समानता एवं संवेदनशीलता से युक्त होगा।

महिला शिक्षा को प्रोत्साहित करने हेतु किए गए प्रयास

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत में बालिकाओं की स्थिति सन्तोषप्रद नहीं थी। अत: वार्षिक एवं पंचवर्षीय योजनाओं, शिक्षा की सुव्यवस्था हेतु गठित आयोगों एवं समितियों की सिफारिशों और विशेष योजनाओं द्वारा बालिका शिक्षा को उन्नत करने का प्रयास किया गया है।

1. राधाकृष्णन आयोग (1948-49)

राधाकृष्णन आयोग का गठन विश्वविद्यालयी स्तर पर शिक्षा के स्तर को सुधारने हेतु किया गया था। परन्तु इस आयोग ने शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति पर विचार-विमर्श कर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत की। आयोग द्वारा स्त्रियों की पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों पर भी विचार किया गया तथा निम्नलिखित सिफारिशें की गई -

(1) निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाये।

(2) बालिकाओं को विशेष साधन-सुविधाऐं प्रदान की जाये।

(3) महिला अध्यापिकाओं की नियुक्ति अधिक से अधिक की जाये।

(4) बालिकाओं के अध्ययन हेतु अलग बालिका-विद्यालयों की स्थापना की जाये।

(5) बालिकाओं को गृह-विज्ञान गृह-व्यवस्था, संगीत व नृत्य सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करने हेतु पाठ्यक्रम बनाये जाये।

2. माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53)

माध्यमिक शिक्षा आयोग या मुदालिय आयोग द्वारा अपने प्रतिवेदन में बालिका शिक्षा पर जोर दिया गया तथा बालिकाओं के लिये गृहविज्ञान विषय पढाये जाने की अनुशंसा की गई।

3. दुर्गाबाई देशमुख समिति (1958-59)

इस समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित रही -

(i) केन्द्र व राज्य स्तर पर बालिका शिक्षा परिषदों की स्थापना की जाये।

(ii) प्रत्येक राज्य द्वारा स्त्री निदेशालय की पृथक व्यवस्था की जाये।

(iii) केन्द्र व राज्य सरकारें बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु अतिरिक्त धनराशि की व्यवस्था करें।

(iv) अध्यापिकाओं की कमी को दूर करने के लिए विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये तथा इस हेतु, निवास आदि का प्रबन्ध किया जाये।

(v) मानव संसाधन मंत्रालय में बालिका शिक्षा विभाग की स्थापना की जाये।

4. हंसा मेहता समिति (1962)

बडौदा के गायकवाड विश्वविद्यालय की वाइस चांसलर की अध्यक्षता में, केन्द्र सरकार द्वारा एक और समिति का गठन बालिका शिक्षा के लिये किया गया। इस समिति की अध्यक्षा हंसा मेहता थी तथा इस समिति की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित थी -

(i) लड़के व लड़कियों के पाठ्क्रम में अंतर करना सही नहीं है।

(ii) गृह विज्ञान विषय को स्वैच्छिक विषय के रूप में लागू किया जाये।

(iii) संगीत व कला विषयों को भी पढ़ाया जाये।

(iv) तार्किक विषयों जैसे गणित, विज्ञान हेतु बालिकाओं को प्रोत्साहित किया जाये।

5. भक्तावत्सलम् समिति (1963)

राष्ट्रीय स्त्री परिषद द्वारा इस समिति का गठन किया गया। इस द्वारा सह-शिक्षा पर बल दिया गया तथा यह माना गया कि जनता व सरकार के सामूहिक प्रयास ही बालिका शिक्षा का विकास संभव है। बालिका शिक्षा के प्रसार हेतु उसे समाज से जोड़े जाने की आवश्यकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में बालिका शिक्षा के पिछड़ेपन को दूर करने हेतु पाठ्यक्रम व प्रशिक्षण के स्वरूप में बदलाव की अनुशंसा की गई।

6. राष्ट्रीय बालिका शिक्षा परिषद (1964)

केन्द्र सरकार द्वारा 1959 में गठित समिति को पुन: संगठित किया ग्रामीण क्षेत्रों में बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने का प्रयास किया गया। इसकी प्रमुख सिफारिशें निम्न है:-

(i) बालिका शिक्षा के लिए जन-सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करना।

(ii) ग्रामीण क्षेत्रों में छात्राओं एवं अध्यापिकाओं के रहने की व्यवस्था करना।

(iii) छात्राओं के लिए पाठ्यसामग्री, वस्त्रादि की व्यवस्था।

(iv) निजी सहयोग से बालिका शिक्षा हेतु विद्यालय भवनों की स्थापना, निर्माण व रख-रखाव करना।

(v) जिला बालिका शिक्षा समितियों एवं महिला मंडलों की स्थापना हेतु जनमत तैयार करना।

7. कोठारी कमीशन आयोग (1964-66)

डॉ. दौलतसिंह कोठारी की अध्यक्षता में गठित शिक्षा आयोग की बालिका शिक्षा के लिये भी महत्वपूर्ण अनुशंसाएं हैं जो निम्नलिखित है -

(i) महिला अध्यापिकाओं की नियुक्ति अधिक संख्या में की जाये।

(ii) पाठ्यक्रम को बालिकाओं की रूचि के अनुकूल बनाया जाये।

(iii) लड़कों के समान लड़कियों को भी विभिन्न व्यवसायों में आगे बढ़ने हेतु प्रोत्साहित किया जाये।

(iv)बालिकाओं के लिए निःशुल्क छात्रावास, वस्त्र तथा पाठयक्रम सामग्री की व्यवस्था की जाये।

(v) विद्यालयों में बालिकाओं के नामांकन को बढ़ाने हेतु तथा अपव्यय व अवरोधन को रोकने हेतु प्रभावी कदम उठाये जाये।

(vi)बालिका शिक्षा से सम्बन्धित षोध कार्य किये जाये।

8. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बालिकाओं की शिक्षा से सम्बन्धित प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित है-

(i) बालिकाओं के नामांकन को अनिवार्य बनाया जाये।

(ii) बालकों के समान ही बालिकाओं को भी शैक्षिक अवसर प्रदान किये जाने चाहिये।

(iii) बालिकाओं की शिक्षा को निःशुल्क किया जाना चाहिये तथा उन्हें अतिरिक्त सुविधाऐं एवं छात्रवृत्ति प्रदान की जानी चाहिये।

(iv) बालिकाओं की शिक्षा हेतु पृथक विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिये।

(v) बालिकाओं को व्यवसायिक कौशलों की जानकारी प्रदान की जानी चाहिये तथा उनके लिए तकनीकी शिक्षा संस्थानों की स्थापना की जाये।

महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु समय-समय पर अन्य प्रयास भी किये गये। इनमें प्रमुख है –

(1) **राष्ट्रीय महिला आयोग (1992)-** सुश्री जयंती पटनायक की अध्यक्षता में 31 जनवरी 1992 में इस आयोग की स्थापना की गई। इस आयोग की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य महिलाओं को न्याय दिलाना तथा अमानवीय व्यवहार से संरक्षण प्रदान करना।

(2) इस आयोग का कार्यक्षेत्र महिला सम्बन्धी कानूनों की समीक्षा करना तथा महिलाओं में कानून सम्बन्धी जागरूकता पैदा करना।

(3) **महिला कल्याण एवं विकास कार्यक्रम -** महिला एवं बाल-विकास विभाग द्वारा महिला कल्याण एवं विकास कार्यक्रम संचालित होते हैं। महिलाओं को रोजगार हेतु प्रशिक्षित करना इसका प्रमुख लक्ष्य है। विभिन्न व्यवसायिक कौशलों को सीखने के उपरान्त महिलाएँ रोजगार प्राप्त कर अपने स्तर में सुधार करती है।

(4) **महिलाओं के लिये राष्ट्रीय ऋणकोष -** महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त व आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने हेतु इसकी स्थापना की गई। 15 जुलाई 1993 से 8 करोड़ राशि के साथ यह कार्यक्रम शुरू किया गया। इस कार्यक्रम को 1999 में पुन: नवीनीकृत किया गया।

(5) **बालिका शिक्षा -** केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार द्वारा समाज में बालिकाओं / महिलाओं की स्थिति में अपेक्षित सुधार हेतु योजनाएँ संचालित है। जिले में बालिका शिक्षा में अपेक्षित उपलब्धि प्राप्त करने हेतु सर्वशिक्षा अभियान के अन्तर्गत निम्न दो योजनाऐं संचालित हैं-

1. कस्तूरबा गाँधी बालिका आवासीय विद्यालय : ड्रापआउट बालिकाओं हेतु।
2. एन.पी.ई.जी.ई.एलः योजना : विद्यालय में अध्ययनरत बालिकाओं हेतु।

बालिका शिक्षा में वांछित प्रगति प्राप्त करने हेतु एवं समाज में महिला की स्थिति में अपेक्षित सुधार हेतु केन्द्र एव राज्य सरकार द्वारा सर्वशिक्षा अभियान के तहत "कस्तूरबा गांधी बालिका आवासीय विद्यालय" योजना आरम्भ की गई है।

इस योजना के अन्तर्गत आरंभिक स्तर पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछडा अल्पसंख्यक तथा बी.पी.एल. परिवारों की वे छात्रायें नामांकित की जाती है जिन्होंने किसी कारणवश विद्यालय छोड़ दिया हो अर्थात ड्रापआउट बालिकायें या फिर ऐसे गाँव की बालिकायें जहाँ उच्च प्राथमिक विद्यालय संचालित नहीं है।

इन विद्यालयों में बालिकाओं को कक्षा VI से VIII तक की निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती है विद्यालय से यूनिफॉर्म एवं शिक्षण सामग्री जैसे- स्कूल बैग, कॉपी, पैन, पैन्सिल, आदि भी निःशुल्क वितरित किये जाते हैं !

एन.पी.ई.जी.ई.एल. (National Programme for Education of girls at Elementry Level) अर्थात प्रारम्भिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम सर्वशिक्षा अभियान के अन्तर्गत शैक्षिक रूप से पिछड़े बालकों में संचालित किया जा रहा है। राजस्थान में यह 186 शैक्षिक रूप से पिछड़े जिलों में चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम की क्रियान्वित के लिये क्षेत्रों / ब्लॉकों का निर्धारण ग्रामीण महिला साक्षरता एवं जैण्डर गैप के आधार पर किया गया है।

इस योजना के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है-

(i) प्रारम्भिक शिक्षा स्तर पर बालिकाओं की पहुँच सुनिश्चित नामांकन में जैण्डर असमानता को कम करना।

(ii) नामांकित बालिकाओं को विद्यालय में ठहराव सुनिश्चित हेतु आधारभूत सुविधाओं को विकसित एवं प्रौन्नत करना।

(iii) शिक्षा क्षेत्र में महिलाओं तथा बालिकाओं की अधिकाधिक सहभागिता सुनिश्चित करना।

(iv) सार्क देशों ने 1990 को बालिका वर्ष घोषित कर विशेष कार्यक्रम चलाए।

इन सभी प्रयासों का ही परिणाम है कि 1950-51 में पूरे देश की कुला बालिका नामांकन स्थिति जहॉ 60 लाख थी, जो 1999 में 7.81 करोड़ हो गई है।

इसी भाँति बालिकाओं द्वारा विद्यालय छोड़ने की स्थिति में भी सुधार हुआ है। 1980-81 में 62.5 प्रतिशत की स्थिति थी जो 1998-99 में 37.6 प्रतिशत रह गई है। बालिका' की शिक्षा में आए रचनात्मक परिवर्तन ने महिला की अध्यापक के रूप में नियुक्ति को प्रभावित किया है। ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड योजना में 57.6% महिलाओं को अध्यापक पद पर नियुक्तियाँ दी गई।

राजस्थान राज्य में बालिका फाउण्डेशन, सरस्वती योजना, जानकी योजना, महिला शिक्षाकर्मी, लोक जुम्बीश, गुरू मित्र योजनाओं ने भी सार्थक परिणाम प्रस्तुत किए है।

राजस्थान मे बालिका शिक्षा की स्थिति

राजस्थान में आधुनिक शिक्षा प्रणाली प्रारम्भ होने से पूर्व परम्परागत शिक्षा का काफी प्रसार था। परम्परागत शिक्षा का ध्येय ज्ञान उपार्जन, व्यतिगत कल्याण और जीविका निर्वाह के साधन उपलब्ध कराना था। शिक्षा सामान्यत: डब्ल्यू ब्राह्मणों द्वारा संचालित होती थी। हिन्दू चटशालायें पौशालायें, जैन उपासरें, वानिका, मुस्लिम मकतब एवं मदरसे-शिक्षा संस्थायें थीं जिन्हें स्थानीय जनता का सहयोग प्राप्त था। शासकों, सामन्तों, सेठों एवं सम्पन्न वर्ग द्वारा समय-समय पर भूमि, अनुदान, भत्ते, दान पुण्य के रूप में शिक्षकों और शिक्षण संस्थाओं को आर्थिक सहायता दी जाती थी। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्राथमिक शिक्षण संस्थाओं में व्यावहारिक और व्यावसायिक शिक्षा, प्रारम्भिक धार्मिक शिक्षा अत्यन्त उच्च कोटि की थी। संस्कृत, हिन्दी, फारसी, और उर्दू भाषा के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था थी। विभिन्न अंग्रेज अधिकारियों ने शिक्षा के उच्च स्तर एवं संस्थाओं की अच्छी स्थिति के सम्बन्ध में लिखा है। इस क्रम में 1864 में कैप्सन (डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्सट्रक्शन, एम. डब्ल्यू. पी.) ने अजमेर क्षेत्र की ओसवाल जाति में बालिका शिक्षा के प्रचलन एवं महत्व की चर्चा की। पीसांगन पोखर एवं

गोविन्दगढ आदि स्थानों पर स्कूलों में जैन ओसवाल और ब्राह्मण जाति एवं सौ पन्तों की लड़कियाँ पढ़ती थी । शिक्षा सम्बन्धी उपरोक्त विवरण से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि औपचारिक शिक्षा के प्रसार के पूर्व राजस्थान में परम्परागत बालिका शिक्षा का प्रसार लेकिन यह कुछ वर्गो तक ही सीमित था।

राजस्थान में बालिका शिक्षा विभिन्न सामाजिक वर्ग में भिन्न-भिन्न प्रकार की थी ! अत: परम्परागत शिक्षा व्यवस्था, मौखिक एवं व्यावहारिक ज्ञान, चरित्र निर्माण आदि लक्ष्यों को ध्यान में रखकर स्थापित थी। उच्च तथा साधन सम्पन्न वर्ग में बालिका शिक्षा का सामान्यत: अधिक प्रचलन था। इस वर्ग की लड़कियों की शिक्षा का प्रबन्ध घरों में ही किया जाता था।

सामान्यतया राजघरानों एवं ठिकानों में रानियों तथा ठकुरानियों को मौखिक शिक्षा के माध्यम से कुलीय परम्परा के प्रचलित रीति रिवाजों एवं परिवार के तौर तरीकों तथा सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों से अवगत कराया जाता था। उन्हें चरित्र निर्माण, वीरता, सच्चाई वफादारी एवं निष्ठा से सम्बन्धित धार्मिक एवं ऐतिहासिक साहित्य सम्बंधी पुस्तकें पढ़ाई जाती थी । उदाहरणार्थ, जयपुर की बाई रूपकंवरी ने रघुराम कवि रचित सभासागर नाटक, बाई फूलकंवर और फतेहकंवर ने नागरीदास और बिहारीदास की कृतियां-उषास्वप्न विलास एवं बिहारी सतसई भाषा ग्रन्थों का अध्ययन किया । महारानी भटियाणी गुमानकंवर ने 'गीत गोविन्द' और चन्द्रावत ने एकादशी माहात्म्य कथा संग्रह पढ़े। महारानी नरुवकी ने कविता भवानीस्तुती खरीदी। जयपुर महाराजा के म्यूजियम पुस्तकालय के हस्तलिखित दस्तावेजों से उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि होती है। इस प्रकार शिक्षा का प्रचलन उस समय के सोपान में बहुत नीचे तक था। अजमेर से रूपा बडारण (सेविका) और वृन्दावन से केसर बडारण के माजी चन्द्रावत को लिखे गये पत्र पातर महताब राय, सुकंठराय अलापरा, सुजानराय, नीरतरंग आदि के जयपुर महाराजा को लिखे गये पत्रों से उनके साहित्यिक स्तर का अन्दाजा लगाया जा सकता है। शिक्षा व्यवस्था के लिए अनुभवी ब्राह्मण अध्यापिका, पुरोहितानी एवं ब्राह्मण अध्यापक तथा पुरोहित नियुक्त किय जाते थे। ड्योढी की पातरौ की नृत्य संगीत की शिक्षा के लिए गुणीजनखाना के उस्ताद रखे जाते थे। इन्हें जनानी ड्योढी से वेतन एवं सुविधायें उपलब्ध कराई जाती थी। मेजर निक्सन को यह जानकर बेहद आश्चर्य हुआ था कि जोधपुर महाराजा ने जनानी ड्योढी की सभी स्त्रियों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध किया था तथा चार स्त्री सचिव इस उद्देश्यों के लिए नियुक्त थीं।

स्वर्ण महिला शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत जीविकोपार्जन के साधन उपलब्ध करवाने का लक्ष्य गौण था। उनकी शिक्षा का लक्ष्य उन्हें अधिक कुशल गृहणी, माता, बनाना होता था। अत: घरेलू शिक्षा-सिलाई कढ़ाई, पाक कला और धार्मिक शिक्षा तथा परिवार के तौर-तरीकों, कुल के मान मूल्यों की जानकारी आदि घरों में ही दी जाती थी, नृत्य संगीत की शिक्षा वर्ग विशेष तक ही सीमित थी, क्योंकि अभिजात्य वर्ग की स्त्रियों के लिए नाचना-गाना हेय समझा जाता था । अत: परम्परागत परिवेश के संदर्भ में ही महिला शिक्षा की यथार्थता स्पष्ट हो सकती है।

मिशन स्कूलों में मुख्यतया ईसाई, गरीब, अनाथ और निम्न वर्ग की छात्रायें थी । जनता में ये स्कूल लोकप्रिय नहीं हुए। मिशन स्कूलों का मुख्य ध्येय धार्मिक शिक्षा प्रदान करना और ईसाई धर्म का प्रचार

करना रहा। निम्न शैक्षणिक स्तर और छात्राओं की नगण्य उपस्थिति के परिणामस्वरूप 1893 में अधिकांश स्कूल बन्द कर दिये गये।

इससे मिशन स्कूलों के प्रति जन सामान्य की अरुचि और अलोकप्रियता का अन्दाजा लगाया जा सकता हे। महिला शिक्षा के संदर्भ में मिशन स्कूलों के प्रति संदेह और अधिक था। 1866 में जयपुर में प्रथम सरकारी महिला स्कूल खोला गया। औपचारिक स्कूली शिक्षा के द्वारा महिलाओं को शिक्षित करने में राजस्थान में गैर सरकारी संस्थाओं का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। इसका प्रारम्भ राजस्थान में बीसवीं सदी के प्रारम्भ से शुरु हुआ।

राजस्थान में ऐतिहासिक गैर सरकारी स्कूल

स्थापना वर्ष संस्था

1898	दयानन्द अनाथालय	जीविकोपार्जन की शिक्षा का प्रबन्ध था।
1898	गुलाब देवी कन्या पाठशाला	1912 में आर्य समाज को सौंप दिया।
1913-14	सावित्री गर्ल्स स्कूल	1940 में हाई स्कूल का दर्जा दिया।
1915	आर्यकन्या पाठशाला	
1926-27	पीसांगन स्कूल	महाजन छात्राएँ थी।
1926-27	दो मुस्लिम स्कूल, अजमेर	
1927	हटूण्डी	राष्ट्रीय विचारधारा का स्कूल

गैर सरकारी स्कूल जनता में लोकप्रिय रहे तथा इनका शिक्षा स्तर भी अपेक्षाकृत अच्छा रहा। 1912 में दयानन्द अनाथालय में 41 और 1914 में गुलाबदेवी पाठशाला में 61 छात्राएँ थीं। 1932 में गुलाबदेवी स्कूल को मिडिल स्तर का दर्जा दिया। इसमें 210 छात्राएँ पढ़ रही थीं।

राजस्थान का निर्माण 1949 मार्च में हुआ था। उस समय इस राज्य में 429 बालिका संस्थान थे जिनमें से 4 महिला कॉलेज थे जो सामान्य शिक्षा प्रदान करते थे, 7 उच्च विद्यालय थे, 66 माध्यमिक विद्यालय थे, 331 प्राथमिक विद्यालय थे, व्यावसायिक शिक्षा के विद्यालय थे और 18 विद्यालय विशिष्ट शिक्षा के थे।

स्वतंत्रता के बाद क्षेत्रफल की दृष्टि से भारतवर्ष में सबसे बडा राज्य राजस्थान 3,42,239.वर्ग किलोमीटर भूमि पर फैला हुआ है जो मैदान जीवकोपार्जन एवं ग्रामीण क्षेत्रो में बिखरी हुई बस्तियों के प्रकारों के अर्थ में विविधताओं से परिपूर्ण है। वर्ष 2001 की भारत की जनगणना के अनुसार, राजस्थान की जनसंख्या 5,64,73,122 है जिसमें पुरूष एवं महिलाएँ क्रमश: 2,93,81,657 एवं 2,70,91,465 है। प्रशासनिक रूप से राज्य 6 संभागों एवं 33 जिलों मे विभक्त है।

साक्षरता की स्थिति- सन् 1991 की जनगणनानुसार राजस्थान में साक्षरता दर 38.55 प्रतिशत थी जो देश में सबसे नीचे से द्वितीय स्थान पर थी। महिला साक्षरता दर 20.44 प्रतिशत होने के कारण देश में सबसे

कम थी। परन्तु गत दशक में राज्य में सन् 1991 के 38.55 समग्र साक्षरता प्रतिशत को सन् 2001 में 61.03 प्रतिशत की महत्वपूर्ण वृद्धि करके तथा विशेष रूप से सन् 1991 के 20.44 महिला साक्षरता प्रतिशत को सन् 2001 में 44.34 प्रतिशत की वृद्धि करके साक्षरता परिदृश्यने साक्षरता की स्थिति में उत्साहवर्द्धक विकास अंकित किया हैं। यह वृद्धि भारत सरकार राजस्थान सरकार क्या सभी लोगों के सतत् प्रयासों से प्राप्त की गई है। विभिन्न संचालित परियोजनाओं / कार्यक्रमों जैसे-लोक जुम्बिश परियोजना शिक्षाकर्मी बोर्ड साक्षरता एवं सतत शिक्षा निदेशालय जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) जनशालाएँ इत्यादि ने भी राज्य के पुरुष एवं महिला साक्षरता प्रतिशत मे ही नहीं अपितु नामांकन, ठहराव एवं शिक्षा की गुणवत्ता में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। विभिन्न स्तरों पर महिला शिक्षा की राज्य में प्रगति इस प्रकार हुई-

रियासत काल में बालिकाओं की शिक्षा की बड़ी दयनीय दशा थी इसके कई कारण थे। जनता में जागरूकता की कमी, गरीबी, पर्दा प्रथा आदि इसके अलावा इनकी शिक्षा के लिए अलग से कोई व्यवस्था नहीं थी और न ही अध्यापिकाओं की सुविधा थी। 1951 की जगणना में लडकियों की साक्षरता का प्रतिशत मात्र 3 प्रतिशत था। इस समय स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करने वाली छात्राओं की संख्या भी नगण्य थी। इस स्थिति में राज्य सरकार ने छात्राओं की शिक्षा के लिए नामांकन अभियान चलाये, ताकि संख्यात्मक दृष्टि से इसमें वृद्धि हो सके। स्कूलों, अध्यापिकाओं की संख्या में वृद्धि, लड़कियों की स्कूलें अलग से खोलने, के साथ-साथ स्कूल आने वाली छात्राओं को कुछ विशेष सुविधाएँ भी दी गई तालिका में 1950-51, 1984-85 तथा 1987-88 की स्थिति दर्शायी गई है-

बालिका शिक्षा के गुणात्मक विकास हेतु राज्य सरकार ने राष्ट्र शिक्षा कमेटी सन् 1958-59 तथा भक्तवत्सलम् कमेटी (1963-64) द्वारा की गई अभिशंसाओं को ध्यान में रखते हुए कई परियोजनाएँ चलाई जैसे छात्रवृतियाँ एवं वजीफे, छात्रा भर्ती अभियान, सह-शिक्षा विद्यालयों में विशिष्ट सुविधाएँ, विद्यालय माताओं की नियुक्तियाँ, लड़कियों की शालाएँ छात्रावास की सुविधाएँ, विशिष्ट पाठ्यक्रम की व्यवस्था आदि।

ऐसा भी महसूस किया गया है कि अगर अध्यापिकाओं को प्रोत्साहन नहीं दिया गया तो बालिका शिक्षा के लक्ष्य प्राप्त करने में वांछित सफलता का संदेह रहेगा क्योंकि बालिका शिक्षा परोक्ष रूप से अध्यापिकाओं की सुविधाओं से जुड़ी हुई है। इस सन्दर्भ में राज्य सरकार ने कुछ विशेष निर्णय लिए- ग्रामीण क्षेत्रों में आवास व्यवस्था, अन्य विशिष्ट सुविधाएँ पृथक् प्रशासनिक ढाँचा, पृथक शिक्षक प्रशिक्षक विद्यालय आदि।

विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरों पर नामांकन की इस अवधि में निरन्तर वृद्धि होती रही। लेकिन यह वृद्धि तत्कालीन वर्षो की इन स्तरों पर विद्यालय प्रवेश योग्य बालिकाओं की संख्या के अनुपात में अत्यल्प थी। वर्ष 1995-96 तथा अगामी वर्षो में भी बालिका शिक्षा के तीनों स्तरों के नये विद्यालय अधिक संख्या में खोले गए तथा उनका क्रमोन्नयन अगले स्तर के विद्यालय में किया गया।

अनेक योजनाएँ राज्य में आरम्भ की गई स्कूल छोड़ने वाली तथा स्कूल से बाहर की बालिकाओं के नामांकन बढाने हेतु अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों द्वारा प्रयास किया गया जिससे 56 प्रतिशत बालिकाओं

नामांकन हुआ। ठहराव को सुनिश्चित करने हेतु कक्षा 1 से 8 तक निःशुल्क पाठ्य पुस्तकें वितरित करने की योजना प्रारम्भ हुई । 1994 में बालिका फाउण्डेशन की स्थापना की गई। सभी 6 सम्भागीय मुख्यालयों पर बालिका छात्रावासों का निर्माण हुआ। वर्ष 1987 में प्रवर्तित शिक्षा कर्मी योजना द्वारा संचालित विद्यालयों में 40 प्रतिशत बालिकाएँ हो गई तथा सरस्वती योजना वर्ष 1994-95 में 8 जिलों में प्रारम्भ की गई जो वर्ष 95-96 में अन्य जिलों में प्रारम्भ की गई।

विद्यालयी स्तर पर बालिका शिक्षा की वर्तमान स्थिति – " राजस्थान में महिला शिक्षा की स्थिति गम्भीर चिन्ता का विषय है । आजादी से पूर्व बालिका शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया था। फलस्वरूप समृद्ध परिवारों की बालिकाएँ ही शिक्षा ग्रहण करती थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से सामान्य शिक्षा के साथ-साथ बालिका शिक्षा के विकास के भी निरन्तर प्रयास किये जा रहे है जिसके फलस्वरूप बालिका शिक्षा की राज्य में अपेक्षाकृत वृद्धि हुई है। सन् 1951 में राज्य का महिला साक्षरता प्रतिशत 3 था जो 1991 की जनगणनानुसार बढ़कर 20.44 प्रतिशत तथा 2001 की जनणनानुसार 44.34 प्रतिशत हो गया है। ग्रामीण क्षेत्रो का महिला साक्षरता 37.74 प्रतिशत है जबकि शहरी क्षेत्र की महिला साक्षरता 65 .42 प्रतिशत है।

राजस्थान मे सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों का महिला शिक्षा पर प्रभाव

ग्रामीण क्षेत्र में - राजस्थान में मध्य युग से ही सामाजिक सांस्कृतिक तानाबाना पुरुष केन्द्रित रहा है। खासकर ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक एवं सांस्कृतिक रीति-रिवाज को महिलाओं की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं । राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में समाज एवं परिवार में महिलाओं की भूमिका घर को सम्भालने, बच्चों के लालन-पालन तथा धार्मिक क्रिया-कलापों तक ही सीमित रही हैं। कुछ समुदायों जैसे कृषक परिवारों में महिलाएँ भी पुरुषों की मदद करती है लेकिन अधिकतर भूमिका पुरुषों की ही महत्वपूर्ण होती है। व्यापार लेन-देन, भूमि के अधिकार आदि के क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका न के बराबर थी। ग्रामीण इलाकों में पर्दा प्रथा एवं बाल विवाह जैसी परम्परायें वर्षो ढ़े चली आ रही हैं। इसी प्रकार दहेज प्रथा जैसी कुरीति लगभग सभी समाजों में व्याप्त हैं। राजस्थान में जाति प्रथा की जड़े अत्यधिक मजबूत है । जाति विशेष के अपने सामाजिक मूल्य एवं परम्परायें पाई जाती हैं । कुछ समाजों जैसे राजपूत, वैश्य आदि में महिलाओं के विवाह, रिश्तेदारी आदि को अपनी पारिवारिक इज्जत से जोड़ कर देखा जाता है। अपने से नीची जाति वाले व्यक्ति से विवाह सम्बन्ध इत्यादि निषेध माने जाते हैं। इन्हीं कुरीतियों के कारण पश्चिमी राजस्थान के कुछ भाग में बालिकाओं के जन्म लेते ही मार देने की वीभत्स परम्पराएँ आज भी विद्यमान है। ऐसे बहुत से गांव है जहां पर कुछ विशेष समाजों में वर्षो से कोई बारात नहीं आई है। इस प्रकार राजस्थान के ग्रामीण इलाकों में सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य तथा परम्परायें बालिकाओं व महिलाओं के लिए अनुकूल नहीं है। यही कारण है कि राजस्थान ग्रामीण क्षेत्र वर्षो तक महिला शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ा हुआ रहा है। यहाँ पर बालिका का शिक्षा पर व्यय करने की बजाय माता-पिता उसके दहेज पर व्यय करने को अधिक प्राथमिकता देते हैं । महिलाओं का अनेक धार्मिक एवं परम्परागत रीति-रिवाजों में गौण स्थान होने का खामियाजा भुगतना पड़ता रहा है। माता-पिता की अन्तिम क्रिया के लिए पुत्र का होना आवश्यक हैं। पुत्र को ही परिवार को आगे चलाने वाला वाहक माना जाता है। राजस्थान में कुछ समाजों में नाता-प्रथा भी विद्यमान है जिसे विवाहित महिलाओं

की समाज में माना अप्रत्यक्ष रूप से खरीद फरोख्त की जाती है। महिलाओं के अशिक्षित होने के कारण ऐसी परम्पराओं को बढ़ावा मिलता है। महिलाओं द्वारा किए जाने वाले घर के कार्य, बच्चों के लालन-पालन को अनार्थिक कार्य के रूप में कम महत्व दिया जाता है। इसके लिए आवश्यक कौशलों को परम्परागत रूप से घर में ही सीखने पर बल दिया जाता है। इससे महिलाओं को औपचारिक आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रखा जाता है। खासकर माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में राजस्थान में ग्रामीण इलाकों में महिलाओं का पिछड़ापन इन्हीं सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित हुआ है। यहाँ यह कहना प्रासंगिक होगा कि पिछले एक दशक में सरकार की नीतियों, महिलाओं के उपलब्ध रोजगार के अवसरों एवं महिलाओं के आरक्षण के फलस्वरूप ग्रामीण इलाकों के उच्च सामाजिक आर्थिक वर्गों में महिलाओं को शिक्षित करने में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया है। लेकिन इसके लिए अधिक प्रयास की आवश्यकता है।

शहरी क्षेत्र में - शहरी क्षेत्रों में भी परम्परागत कुरीतियाँ, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, कुछ कम-कुछ अधिक अलग-अलग समुदायों में व्याप्त हैं। शहरों में घर है आधुनिकीकरण का महिलाओं पर अच्छा प्रभाव भी हुआ है तो साथ-साथ अनेक दुष्प्रभाव भी नजर आये है। शहरों में महिलाओं के साथ बलात्कार, हत्याएँ वैश्यावृत्ति के लिए मजबूर करना जैसे जुर्म अधिक पाये जाते हैं। आधुनिक तकनीकी के सहारे गर्भ में पल रही लड़कियों को मार देना कुछ समय पहले तक आम था। भ्रूण लिंग परीक्षण पर रोक के परिणामस्वरूप अब इससे कुछ कमी आयी है। शहरों में तलाक लेने की घटनाएँ बढ़ रही है। एकल परिवार के दायित्वों से महिलाओं को ही जूझना पड़ रहा है। घर एवं नौकरी के दोहरे दायित्वों को निभाना पड़ रहा है।

इस सबके बावजूद शहरों में अधिक सुविधाएँ, रोजगार की उपलब्धता, दूसरे समुदायों के साथ मेल-मिलाप पश्चिमी संस्कृति के अनुकरण, कार्य संस्कृति के फलस्वरूप वर्षो के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में बदलाव दिखाई दे रहे हैं। जिसका प्रभाव महिला शिक्षा पर सकारात्मक रहा है। आज शहरों में गांवों की अपेक्षा अधिक बालिकाएं औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर रही है। महिलाओं के लिए अधिक खुलापन तथा सुविधाएँ हैं। पर्दा प्रथा में कमी आई हैं। महिलाओं तथा बालिकाओं को घर से बाहर निकलने में अधिक स्वतंत्रता है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी महिलाएँ शहरी क्षेत्रों में प्रगति कर रही हैं। विवाह की आयु में बढ़ोत्तरी से उन्हें अधिक अवसर मिलने लगे हैं। शहरी युवा दहेज के बजाय नौकरी करने वाली पढ़ी लिखी लड़की से शादी करना अधिक पसन्द करता है। इस प्रकार सामाजिक एवं सांस्कृतिक बदलाव के कारण शहरी क्षेत्रों में महिलाओं की शिक्षा में प्रगति आई है, साथ ही महिलाओं के शिक्षित होने के कारण भी रूढ़िवादी परम्परागत मूल्यों में कमी आई है।

पिछड़े वर्ग में - राजस्थान के मुख्य पिछड़े वर्गों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य अल्पसंख्यक समुदाय प्रमुख हैं। राजस्थान में अनुसूचित जातियों में, चमार, आदि जातियाँ प्रमुख हैं। इसी प्रकार अनुसूचित जनजाति के वर्गों में सिरोही, उदयपुर, झालावाड़, पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले भील, मीणा आदि समुदाय मौजूद हैं। इसी प्रकार से अल्पसंख्यक समुदायों में ईसाई, मुस्लिम, जैन आदि समुदाय है। जिनकी जनसंख्या लगभग 10 प्रतिशत से भी कम है। में हिन्दू समुदाय की बहुलता राजस्थान के अनुसूचित जातियों में कठोर जाति प्रथा के परिणामस्वरुप अन्य जातियों, समुदायों में अलगाव सर्वव्याप्त हैं। परम्परागत रूप से चले आ रहे अपने कार्यों (जिन्हें निम्न कोटि का माना जाता

है।) में इन समुदायों में पुरुषों के साथ-साथ महिलायें भी हिस्सा लेती है। पर्दा प्रथा, दहेज-प्रथा, बाल विवाह जैसी प्रथायें, अनुसूचित जातियों में भी मौजूद है। लेकिन घर से बाहर कार्यो में पुरुषों के समान भागीदारी के कारण इनको अपने परिवार में महत्वपूर्ण माना जाता है। एवं परम्परागत कार्यो में संलग्नता का प्रभाव इनके शैक्षिक स्थिति को अधिक प्रभावित करता है। छुआछूत जैसी प्रथाओं के कारण बालिकाएं शिक्षा से वंचित है।

अनुसूचित जनजातियों में से अधिकतर जातियां या तो खानाबदोश या पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करने वाली आदिवासी जातियाँ है। इन जातियों का अन्य समुदायों से बहुत अधिक मेल-मिलाप नहीं रहा है। अपने जीवन यापन के लिए प्रकृति एवं परम्परागत कार्यो पर अधिक निर्भर हैं। अलग-अलग आदिवासी समुदायों से अलग-अलग परम्परागत तथा रीति-रिवाज पाये जाते हैं।

अनेक अध्ययनों से ज्ञात होता है कि कुछ आदिवासी समुदायों में महिलाओं को अपेक्षाकृत अधिक अधिकार प्राप्त है। तलाक लेने, विधवा विवाह, अपना पति स्वयं चुनने आदि के रिवाज पाये जाते हैं। मीणा जैसे समुदायों जो की सुदूर पहाड़ी क्षेत्रों में न रहकर गांवों तथा शहरों में निवास कर रहे है, उनकी महिलाओं की शैक्षिक स्थिति में अपेक्षाकृत अधिक सुधार देखा गया है। लेकिन सुदूर पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाली आदिवासी जातियों को शैक्षिक संसाधनों की उपलब्धता तथा भाषा जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। सर्व शिक्षा अभियान तथा महिला समाख्या जैसे कार्यक्रमों के फलस्वरूप इनको शिक्षित करने के प्रयासों में भी तेजी आयी है। कुछ खानाबदोश अनुसूचित जनजातियों जैसे गाड़िया लुहारों आदि के लिए भी अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहने की परम्परा भी महिलाओं की शिक्षा को प्रभावित कर रही है। राजस्थान की अल्पसंख्यक जातियों में मुस्लिम समुदाय की बहुलता है। राजस्थान के कुछ प्रदेशों जैसे अजमेर, टोंक, आदि में इनकी शासकीय भूमिका होने के बावजूद सामाजिक एवं सांस्कृतिक रुढ़ियों एवं परम्पराओं के चलते इस समुदाय की महिलायें शिक्षा की दृष्टि से पिछड़ी हुई है। मुस्लिम समुदाय में बुरका प्रथा एवं महिलाओं को गैर-पुरुषों के साथ काम करने में पाबन्दी के कारण मुस्लिम महिलाएं औपरिचारिक शिक्षा में भाग नहीं ले पाती है। मुस्लिम समुदाय में महिलाओं को घर की चारदीवारी के अन्तर्गत होने वाले कार्यो एवं बच्चों के लालन-पालन के कार्यो की ही इजाजत दी जाती है। अधिकतर मुस्लिम परिवारों में बच्चों की संख्या अधिक होने के कारण महिलायें इनके लालन-पालन में ही व्यस्त रहती है। मुस्लिम समुदाय में परिवार नियोजन के साधनों के उपयोगी की परम्परा नहीं हैं। अधिकतर मुस्लिम बालिकाओं को घर पर ही धार्मिक कार्यो एवं घरेलु कौशलों की शिक्षा प्रदान की जाती है। अधिकतर मुस्लिम महिलाओं को सामाजिक रूढ़िवादिता के चलते प्राथमिक अथवा उच्च्च प्राथमिक स्तर के बाद विद्यालय छुड़वा दी जाती हैं। इस प्रकार सामाजिक परम्पराओं एवं सांस्कृतिक रुढ़िवादिता के चलते अल्पसंख्यक वर्ग की महिलाओं की शिक्षा बुरी तरह प्रभावित हुई।

समाज तथा परिवार का महिला शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

अभी तक के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि राजस्थान में महिला शिक्षा की स्थिति प्रारम्भ से ही अत्यन्त शोचनीय रही है। इसका मुख्य कारण यहां का सामाजिक तथा पारिवारिक परिवेश रहा है। समाज में महिलाओं की जिम्मेदारी घर परिवार, बच्चों एवं पशुओं की देखभाल तक ही सीमित थी। पर्दा एवं दहेज

प्रथा जैसी कुरीतियों का बोलबाला था। जिससे बालिकाओं की शिक्षा पर व्यय करना एक प्रकार से व्यर्थ माना जाता था। यहां तक की उच्च आय वर्ग के परिवारों में भी महिलाओं को शिक्षा केवल इसलिए दी जाती थी, ताकि वे धार्मिक क्रियाकलापों के दायित्वों को पूराकर सकें धार्मिक पुस्तकों को पढ़ सकें।

स्वतंत्रता के पश्चात् अनेक प्रयासों एवं परिस्थितियों में बदलाव के फलस्वरूप धीरे-धीरे महिला शिक्षा के प्रति समाज एवं परिवार के दृष्टिकोण में बदलाव महसूस किया जा रहा है।

उच्च एवं सामान्य वर्ग की स्त्री का घर से बाहर निकल कर गैर मर्दो के बीच किन्हीं शैक्षिक, आर्थिक या व्यावसायिक गतिविधियों में सहभागिता करना सुरक्षित नहीं माना जाता था। निम्न आय वर्ग यथा किसान एवं मजदूरों की स्त्रियाँ अपने पुश्तैनी कार्यो में परिवार के बीच हाथ बंटाती थी। खेती, पशुपालन आदि में महिलाएं अपने परिवार के पुरुष सदस्यों का पुरा सहयोग करती थी। लेकिन इस हेतु उनकी शिक्षा की आवश्यकता महसूस नहीं की जाती थी। परिवार की किशोर बालिकाएँ, माताओं को सहयोग करने हेतु छोटे बच्चों की देखभाल करती थी, ताकि माताएं खेती एवं पशुपालन के कार्यो को देख सकें। इस कारण इनको पढने के लिए विद्यालय भेजना अनार्थिक माना जाता था। इसके विपरीत चूंकि लड़कों को बड़े होकर घर के बाहर के कार्यो तथा आर्थिक - व्यावसायिक हितों को पूरा करना होता था, अत: उनको विद्यालय शिक्षा प्राप्त करने हेतु भेजना अधिक ठीक माना जाता था। इसके साथ ग्रामीण एवं दूरस्थ इलाकों मे बालिका विद्यालयों का अभाव एवं महिला शिक्षिकाओं की अनुपलब्धता महिला शिक्षा में बाधक थी। यदि शहरी क्षेत्रों को छोड़ दें, तो आज भी राजस्थान की सामाजिक मान्यताएँ इस प्रकार की हैं कि लड़कियों को, लड़कों के विद्यालय में भेजना एवं पुरुष शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करवाना मान्य नहीं है। लड़कियों को घर से दूर दराज विद्यालय भेजने में भी परिवार संकोच करते हैं। विभिन्न शैक्षिक परियोजनाओं एवं कार्यक्रमों के चलते विद्यालयों की संख्या बढ़ी है ग्रामीण इलाकों में लगभग 1 किमी दूरी के अन्दर प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध करवाने के प्रयास किये जा रहे हैं। वैज्ञानिक प्रगति, भूमण्डलीकरण एवं संचार के साधनों के परिणामस्वरूप सामाजिक सोच में भी बदलाव महसूस किया जा रहा है। आज अभिभावक, खासकर मध्यमवर्गीय एवं निम्न मध्यमवर्गीय भी अपनी बालिकाओं को पढ़ना चाहते हैं लेकिन वर्तमान समय में भी महिला शिक्षा के प्रति सामाजिक एवं पारिवारिक दृष्टिकोण को प्रभावित करने वाले अनेक कारक जैसे गरीबी, रुढ़ीवादी मान्यताएँ, परिवार में महिलाओं की परम्परागत भूमिका, महिलाओं की आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रमों की उपलब्धता, रोजगार की अनुपलब्धता आदि है।

गरीबी एक प्रमुख कारण जिससे परिवार का महिला शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण प्रभावित होता है। गरीब परिवारों की प्राथमिकता अपनी रोजी-रोटी कमाने की रहती है। अत: बालिकाओं की शिक्षा में निवेश के प्रति उनका दृष्टिकोण नकारात्मक रहता है। हालांकि गरीबी उन्मूलन के अनेक प्रयास किये गये हैं, परन्तु तीव्र जनसंख्या वृद्धि के परिणाम स्वरूप गरीब परिवारों की संख्या में अधिक कमी नहीं हो पाई। दोपहर का भोजन, निःशुल्क बालिका शिक्षा, निशुल्क पाठ्यपुस्तकें आदि अनेक योजनाएं हैं, जिनकी सहायता से परिवार एवं अभिभावकों के दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास किया जा रहा है। यहां तक की किशोर

लड़कियों के जिम्मे डाले जाने वाला शिशुओं के लालन-पालन का कार्य भी आगनबाड़ी केन्द्रों को दिया जा रहा है ताकि बालिकाएं पढ़ सकें।

सामाजिक रुढ़िवादी मान्यताओं में प्रमुख है बाल-विवाह राजस्थान में ग्रामीण इलाकों में बाल विवाह बहुतायात से प्रचलित है, छोटी आयु में शादी कर दिये जाने की मान्यता के कारण अभिभावक बालिका की शिक्षा पर ध्यान नहीं देते हैं, उनके अनुसार लड़की पराया धन है। उनकी शादी कर देना ही उनकी प्रमुख जिम्मेदारी है। इस प्रकार की सोच महिला शिक्षा हेतु घातक साबित हो रही है। परिवार में यह दृष्टिकोण पाया जाता है कि लड़कियों को प्राथमिक या मिडल स्कूल तक ही शिक्षा देना पर्याप्त है जिससे की वे अपने घरेलू हिसाब-किताब आदि आसानी से कर सकें। चाहे कोई आर्थिक सामाजिक स्थिति वाला वर्ग हो, राजस्थान में वर्षो तक सामाजिक मान्यता रही है कि महिलाओं का कार्यक्षेत्र घर-परिवार तक ही सीमित है। इसी सोच के कारण ही महिलाओं को माध्यमिक एवं उच्च स्तर की शिक्षा से वंचित रखा जाता रहा है। यदि कोई महिला अधिक शिक्षित होती तो भी यही मान्यता रहती है की कोई पारिवारिक आपात् परिस्थिति में नौकरी करने में सक्षम होंगी। समाज की महिला शिक्षा के प्रति नकारात्मक सोच के पीछे एक प्रमुख कारण यह भी है कि औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में महिलाओं की पाठ्यक्रम उपलब्ध नहीं थे। परिवार का मानना था कि यदि बालिकाओं को विद्यालयों में पढने भेजा जायेगा तो वे न अपने परम्परागत पुश्तैनी कार्य करने के लायक नहीं रहेगी या नहीं सीख पायेंगी। पिछले दो दशक में नगरीय एवं बाजारवादी संस्कृति के फलस्वरूप महिला शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव महसूस किया जा रहा है। आज अपने बच्चों को पढ़ाने के पीछे आर्थिक समृद्धि को पाने तथा आधुनिक सुविधाओं का उपयोग करने की मंशा हावी है। यह सोच निश्चित् ही महिलाओं की शिक्षा के प्रति परिवार तथा समाज के दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव लाने की ओर अग्रसर होगी।

राजस्थान मे महिला शिक्षा का विकास

मात्रात्मक विकास एवं शैक्षिक स्तरों में सहभागिता - राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा जारी प्रारम्भिक शिक्षा के विकास की रिपोर्ट के अनुसार प्राथमिक स्तर पर (कक्षा 1 से 5) अखिल भारतीय स्तर नामांकन में लिंग समानता सूचकांक 0.93 हैं जबकि राजस्थान में लिंग समानता सूचकांक (Gender Parity Index) 0.88 पाया गया है। यह सूचकांक लड़कों के मुकाबले लड़कियों के नामांकन को दर्शाता है। स्पष्ट है कि प्राथमिक स्तर पर राजस्थान में लिंग भेद अखिल भारतीय स्तर से अधिक है। इसी प्रकार उच्च प्राथमिक स्तर पर राजस्थान में लिंग समानता सूचकांक मात्र 0.66 है। ग्रामीण क्षेत्र में और भी कम मात्र 0.64 पाया जाता है। जबकि अखिल भारतीय स्तर पर इसका मान 0.87 है। इस प्रकार राजस्थान में उच्च प्राथमिक स्तर पर लड़कों के लड़कियों का नामांकन बहुत कम पाया जाता है। अखिल भारतीय स्तर के मुकाबले राजस्थान में उच्च प्राथमिक स्तर पर ग्रामीण इलाकों में नामांकन अत्यधिक कम पाया जाता है। राजस्थान में वर्ष 1981 केवल 14 प्रतिशत महिलायें साक्षर थी, जिनकी संख्या वर्ष 1991 में बढ़कर 20.44 प्रतिशत हो गई। वर्ष 2001 में यह 44.34 प्रतिशत हो गई। ग्रामीण इलाकों में वर्ष 1991 में महिला साक्षरता दर 11.59 प्रतिशत तथा शहरी इलाकों में 50.24 प्रतिशत थी, जो वर्ष 2001 में बढ़कर ग्रामीण इलाकों में 37.74 प्रतिशत तथा शहरी इलाकों में 65.42 प्रतिशत हो गई है।

स्पष्ट है कि 20वी सदी के अन्तिम दशक में राजस्थान की ग्रामीण महिलाओं की साक्षरता दर में तेजी से वृद्धि हुई है। लेकिन राह अभी भी बहुत कम है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता दर में अभी बहुत अधिक अन्तर है। पुरुष साक्षरता दर (कुल 74.46 प्रतिशत) के मुकाबले महिलाओं की साक्षरता दर में अभी भी बहुत अन्तर है।

साक्षरता की दृष्टि से सर्वाधिक अच्छी स्थिति शहरी पुरुषों की है। जबकि सबसे कम साक्षरता दर ग्रामीण महिलाओं की है, जो दषकों से निरन्तर बरकरार है। वर्ष 2001 की जनगणना जालौर एवं बांसवाड़ा जैसे जिले भी है जहां पर महिला साक्षरता दर मात्र 27 एवं 28 प्रतिशत ही है।

राजस्थान में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की महिला साक्षरता दर वर्ष 1991 की जनगणनानुसार क्रमश: 8.31 तथा 4.42 प्रतिशत थी। जो कि अन्य सभी राज्यों से कम है। सामान्य महिला साक्षरता दर 20.44 प्रतिशत से भी यह बहुत कम है। इस प्रकार जाति वर्गो के मध्य राजस्थान में शैक्षिक भेद बहुत अधिक रहा है।

जनगणना 2001 के अनुसार राजस्थान में महिला साक्षरता दर के क्षेत्रीय असंतुलन भी देखने में आता है। जहां झुंझनू एवं सीकर जिलों में महिला साक्षरता दर 62 से 68 प्रतिशत तक पाई जाती है, वहीं उदयपुर जिले के कोटड़ा तहसील में यह मात्र 11.14 प्रतिशत पाई गई थी। इसी प्रकार उदयपुर, बांसवाड़ा के कुछ अन्य ग्रामीण इलाकों में महिला साक्षरता दर मात्र 18 व 19 प्रतिशत पाई गयी थी। जबकि उदयपुर शहर में महिला साक्षरता दर 81.02 प्रतिशत पायी गयी थी।

प्राय: यह देखा गया है कि प्राथमिक स्तर पर लिंग भेद निरन्तरं कम हो रहा है लेकिन उच्च प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर अभी भी लड़कियों के नामांकन हेतु अधिक प्रयास की आवश्यकता है।

यह स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर पर वर्ष 2005-06। में 100 लड़कों पर मात्र 46 लड़कियाँ ही शिक्षा ले रही थी। वर्ष 2001-02 से तुलना करने पर यह स्पष्ट है कि राजस्थान में बालिका शिक्षा के प्रयासों के फलस्वरूप बालिका शिक्षा में भेद निरन्तर कम हो रहा है।

माध्यमिक स्तर पर राजस्थान में बालिकाओं का नामांकन बालकों के मुकाबले आधे से भी कम रहा है। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में नामांकन की स्थिति बहुत पिछड़ी थी। अप्रकाशित शोध ज्योत्सना गौड़ (2008) के अनुसार राजस्थान 2020 तक माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण हेतु बालिकाओं के नामांकन की गति तीन गुना करने की है।

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि राजस्थान में प्राथमिक स्तर पर छात्र-छात्रा के नामांकन में भेद निरन्तर कम हो रहा, लेकिन उच्च प्राथमिक स्तर पर अभी और प्रयास करने की आवश्यकता है।

7वें अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण (2002) के अनुसार पहली कक्षा में प्रत्येक 100 नामांकित बालिकाओं में से राजस्थान में मात्र बालिकायें 3.8 उच्च प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश लेती थी। मात्र 12 बालिकायें 9वीं कक्षा में प्रवेश लेती थी।

इस प्रकार हम देखते है कि छात्रों के मुकाबले बहुत कम छात्राऐं प्रवेश ले पाती हैं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में राजस्थान में छात्राओं के नामांकन में सत्र 2005-06 में 11.08 प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है जो 2006--07 में बढ़कर 15.60 प्रतिशत हो गयी है।

राजस्थान में पिछले 3-4 वर्षो में विश्वविद्यालयों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। राजस्थान में अनुसूचित जाति तथा जनजाति की छात्राओं को जिनके माता-पिता आयकर नहीं देते हैं उनको पुस्तक बैंक योजना के अन्तर्गत वर्ष 2004-05 से 2006-07 तक 22.00 लाख रुपये की राशि राजकीय महाविद्यालयों को आवंटित की गई है। 25 राजकीय महिला महाविद्यालयों में निजी सहभागिता से छात्रावास प्रारम्भ करने हेतु भूमि व भवन निर्माण की सहमति दी है। राजकीय महिला महाविद्यालय सहायता प्राप्त करने में सबसे आगे रहे हैं। राजस्थान में कॉलेजों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है।

2000 के पश्चात् राजस्थान में उच्च शिक्षा के कॉलेजों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। कुल 751 कॉलेजों में से 273 कॉलेज केवल छात्राओं के लिए तथा बाकी अन्य सहशिक्षा वाले हैं। इनमें से केवल 33 महिला महाविद्यालय राजकीय है बाकी अन्य निजी संस्थाओं द्वारा संचालित हैं। वर्ष 2005-06 में 201085 लड़कों के मुकाबले 126199 लड़कियां महाविद्यालयों में अध्ययनरत थी।

राजस्थान में लड़कियाँ उच्च शिक्षा के अन्तर्गत कला संकाय में अधिक रुचि लेती हैं। विज्ञान तथा वाणिज्य संकायों में प्रवेश लेने वाली लड़कियों की संख्या, लड़कों के मुकाबले लगभग आधी हैं। सत्र 2005-06 में 201 लड़कियों ने एम.फिल./पीएच.डी. उपाधि में नामांकन करवाया, जो लड़कों की संख्या (231) के लगभग समान है। इसी प्रकार स्नात्तकोत्तर अंतिम वर्ष में 5100 लड़को के मुकाबले 5384 लड़कियों का नामांकन एक अच्छा संकेत है। महाविद्यालयों में बालिका नामांकन दर में वृद्धि निरन्तर तेज हो रही है।

अजमेर, जयपुर, झुझनु, श्री गंगानगर आदि जिलों में बालिकाओं का नामांकन (8000 से अधिक) महाविद्यालयों में उच्च है जबकि जैसलमेर, जालौर, बाड़मेर, सिरोही आदि पश्चिमी राजस्थान के जिले इस दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। जहाँ बालिकाओं का महाविद्यालय- में नामांकन 1000 से भी कम है। शिक्षा के निम्न स्तरों में बालिकाओं की भागीदारी में वृद्धि के पश्चात् उच्च शिक्षा में भी अधिक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।

गुणात्मक विकास

बालिकाओं की शिक्षा हेतु राज्य सरकार ने विभिन्न आयोगों तथा समितियों द्वारा की गई अभिशंसाओं को ध्यान में रखते हुए कई परियोजनाएं चलाई हैं -

(क) छात्र वृत्तियाँ एवं वजीफे - (1) कक्षा में अधिकतम उपस्थित रहने वाली लड़कियों को छात्रवृत्तियां (2) पाठ्यपुस्तकें क्रय करने हेतु छात्रवृत्तियां,, (3) शिक्षक प्रशिक्षण हेतु छात्रवृत्तियां हेतु विशिष्ट भर्ती अभियान चलाये गये।

(ख) छात्रा भर्ती अभियान -ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में बालिकाओं के नामांकन हेतु विशिष्ट भर्ती अभियान चलाये गये।

(ग) सह शिक्षा विद्यालयों में विशिष्ट सुविधाएं -सह शिक्षा विद्यालय में पढने वाली छात्राओं के लिए पृथक् शौचालय एवं मूत्रालय की व्यवस्था की गई तथा उनके लिये विशिष्ट खेल और अन्य कार्यक्रमों का प्रावधान किया।

(घ) विद्यालय माताओं की नियुक्तियां -शिशु विद्यालयों में छोटी-छोटी बालिकाओं की सुविधा हेतु विद्यालय माताओं की नियुक्ति की गई। (1) निःशुल्क शिक्षा - राज्य में प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर तक बालिकाओं एवं स्त्रियों हेतु निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती है।

(2) बालिकाओं के लिए बस की व्यवस्था - राज्य के लगभग सभी जिला मुख्यालयों में लड़कियों को राजकीय बसों से रियायती दरों पर स्कूल से लाने ले जाने की व्यवस्था है।

(ड) लड़कियों की शालाएं - उच्च प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर शालाएं खोलते समय लड़कियों की शालाओं को उच्च प्राथमिकता दी जाती है।

(च) छात्रावास की सुविधाएं - राजस्थान के 5 क्षेत्रीय मुख्यालयों बीकानेर, कोटा, जयपुर और उदयपुर में छात्राओं के लिए पृथक् छात्रावास की सुविधाएँ विद्यमान है। इन छात्रावासों में ऐसी अध्यापिकाओं के रहने की भी व्यवस्था है, जिनके पास आवास सुविधा न हो।

(छ) विशिष्ट पाठ्यक्रम की व्यवस्था - राज्य के माध्यमिक और उच्च कन्या विद्यालयों में अलग से कुछ पाठ्यक्रम निर्धारित किये गये हैं। छात्राएं अपनी रुचि के अनुसार उनमें से चयन कर सकती हैं।

महिला अध्यापिकाओं को प्रोत्साहन योजना - ऐसा भी महसूस किया है कि अगर अध्यापिकाओं को प्रोत्साहन देने के लिये नहीं किया गया तो बालिका शिक्षा के लक्ष्य प्राप्त करने में वांछित सफलता मिलने में संदेह रहेगा, क्योंकि इनकी शिक्षा परोक्ष रूप से अध्यापिकाओं की सुविधाओं से जुडी हुई है। इस संदर्भ में राज्य सरकार ने कुछ विशेष निर्णय लिये हैं।

(क) ग्रामीण क्षेत्रों में आवास व्यवस्था -ग्रामीण क्षेत्रों में अध्यापिकाओं के लिए व्यवस्था की नितान्त आवश्यकता होती है, अन्यथा वे वहां रहने में संकोच करती हैं। इस कमी को दूर करने के लिए पंचायत समितियों के लिए विशेष वित्त व्यवस्था की गई, ताकि वे अध्यापिकाओं के मकान बना सकें।

(ख) अन्य विशिष्ट सुविधाएं - (1) सेवारत पति-पत्नी को एक स्थान पर रखने का प्रयत्न किया जाता है। (2) पब्लिक परीक्षाओं में बैठने की अनुमति प्रदान की जाती है। (3) महिला अध्यापिकाओं के लिए नियुक्ति की आयु 35 वर्ष कर दी गई है।

(ग) पृथक प्रशासनिक ढांचा -मंडल एवं जिला स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के द्रुत विकास हेतु निदेशालय प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के अन्तर्गत अलग ही प्रशासनिक ढांचे का निर्माण किया गया है।

(घ) पृथक शिक्षण प्रशिक्षण विद्यालय - महिला अध्यापिकाओं के सेवा पूर्व प्रशिक्षण हेतु पृथक् शिक्षण प्रशिक्षण विद्यालय एवं महाविद्यालय को संचालन भी राज्य में किया जा रहा है।

मातृ अध्यापकों-संगठनों (एम.टी.ए.) का गठन- बालिका नामांकन, ठहराव एवं प्रोत्साहन के लिए मात अध्यापक-संगठन सबसे अधिक सफल व्यूह रचनाओं में से एक है। सभी प्राथमिक, उच्च प्राथमिक विद्यालयों, मदरसों, ईजीएस केन्द्रों तथा वैकल्पिक विद्यालयों में इनका गठन किया जा चुका है। इन सभी औपचारिक एवं वैकल्पिक विद्यालयों में मात-अध्यापक-संगठनों की बैठकें प्रतिमाह होती हैं तथा नामांकन, ठहराव एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सम्बन्धी स्थिति की समीक्षा की जाती है तथा वर्तमान स्थिति में आवश्यक सुधार हेतु अग्रिम योजना बनाई जाती है। यही नहीं, विद्यालय में उपलब्ध भौतिक सुविधाओं जैसे शौचालय, बालिकाओं के लिए अलग शौचालय, हैण्डपम्प / पीएचईडी कनेक्शन, कक्षाकक्ष, इत्यादि की उपलब्ध एवं उनके उपयोग की भी समीक्षा की जाती है तथा यदि कोई आवश्यकता होती है तो स्थिति को सुधारने हेतु प्रयत्न किए जाते हैं। परन्तु इन मातृ अध्यापक संगठनों का मुख्य बल बालिकाओं के नामांकन एवं ठहराव पर होता है। यदि कभी भी नामांकित नहीं होने वाली बालिकाओं के मामले होते हैं। अथवा ड्रॉप आउट के मामले होते हैं तो इन मात अध्यापक संगठनों के सदस्यों द्वारा इन बालिकाओं के माता-पिता से सम्पर्क किया जाता है तथा उत्पेरित करने एवं समझाइए के द्वारा इन बालिका विद्यालयों / वैकल्पिक विद्यालयों में नामांकित / पुन: प्रविष्ट कराया जाता है। इस तरह सार्वजनीन शिक्षा विशेषकर बालिकाओं के लिए शिक्षा प्रदान करने में मात अध्यापक-संगठन बहुत योगदान देते हैं।

बालिका शिक्षा के लिए विद्यालय / संकुल स्तर पर महिला बैठकें प्रति माह आयोजित की जाती है। उनके परिणामस्वरूप नामांकन एवं ठहराव की समस्याओं का सुलझाने में महिला समूह सक्रिय हो गये। इन बैठकों का मुख्य बल बच्चों के, विशेषकर बालिकाओं एवं अनुसूचित, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग एवं अल्पसंख्यकों के बच्चों के नामांकन एवं ठहराव पर था। इन महिला बैठकों की विद्यालयों, मदरसा, ईजीसी केन्द्रों तथा वैकल्पिक विद्यालयों में बच्चों की, विशेषकर उन बच्चों की जो घर पर छोटे बच्चों की देखभाल करने, पशु चराने तथा की सहायता के लिए प्रयास किये जा रहे हैं।

बालिका मंच - बालिका मंच बालिकाओं के नामांकन एवं ठहराव में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करते हैं वे वास्तव में विद्यालय एवं बालिकाओं के माता-पिता के मध्य समन्वय की कड़ी है। उनकी भूमिका के महत्व को दृष्टि में रखकर उनकी सदस्याओं को क्षमता निर्माण कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षण प्रदान किए गए हे। बालिका शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए जिसमें विशेष चिन्ता वंचित वर्गो के अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अल्पसंख्यकों की बालिकाओं की है इस उद्देश्य से राजकीय प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा 1 से 5 तक पढने वाली अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अल्पसंख्यकों की प्रत्येक बालिका का 70 रुपये के मूल्य का अध्यापन-अधिगम-सामग्री (टीएलएम) एसडीएमसी के द्वारा वितरित किया गया था। एसडीएमसी इन बालिकाओं को टी.एल.एम. बैग, अभ्यास पुस्तिका, पेन्सिल, ज्यॉमैट्री बॉक्स देती है। यह व्यूह रचना नगरीय एवं ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में बहुत सफल सिद्ध हुई हैं।

राजस्थान में शिक्षा के विकास के क्षेत्र में किए गए प्रयासों के उपरान्त भी, राज्य अभी इस क्षेत्र में विशेषकर महिलाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में बहुत पिछड़ा हुआ है। राजस्थान की महिला साक्षरता दर देश में 29वे स्थान पर हैं। यहाँ की जिलेवार साक्षरता दर यह प्रदर्शित करती है कि जालौर एवं बांसवाड़ा जिलों में महिला साक्षरता दर राज्य में सबसे कम (मात्र 27 से 28%) है। सन् 1991 एवं 2001 के मध्य राजस्थान में पुरुष एवं महिला साक्षरता दर का अन्तर लगभग 20 प्रतिशत बिन्दु हो गया है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति जन जाति की महिला साक्षरता दर से सम्बन्धित स्थिति भी बहुत अच्छी नहीं है। राजस्थान में आदिवासी महिलाओं के शैक्षिक विकास हेतु सरकार ने वर्ष 2008 में अनेक घोषणाएं की है -

1. आदिवासी क्षेत्रों में बालकों की शिक्षा के लिए 12 हजार सरकारी स्कूल खोले गए हैं।
2. आदिवासी बालिकाओं को शिक्षा के साथ सरकार की ओर से कई सुविधाएं जैसे निःशुल्क पुस्तकें, भोजन की व्यवस्था की गई।
3. जनजाति क्षेत्र में शिक्षा को प्रोत्साहन के लिए निजी क्षेत्र में स्कूल खोलने पर डिपोजिट में पचास फीसदी छूट देने का निर्णय किया है।
4. 4. राज्य के 52 उपखण्डों जहां कॉलेज नहीं वहां भी कॉलेज खोलने पर निजी क्षेत्र को विशेष रियायतें देने का निर्णय किया है। इन उपखण्डों में कॉलेज खोलने पर एफ.डी.आर. दस लाख की जगह दो लाख रुपये की देनी होगी। महिला कॉलेज के लिए केवल पचास हजार की सीमा ही रखी गई हे। यह छूट दी गई है कि कॉलेज के लिए भवन नहीं है तो सरकारी स्कूल में तीन साल तक दूसरी पारी में कॉलेज चला सके और तब तक अपना भवन तैयार कर ले। ऐसे निर्णय के पीछे उद्देश्य यही है कि लोगों को उच्च शिक्षा गांवों में ही आसानी से प्राप्त हो सकें, जिससे उनका विकास हो सकें।

इससे स्थिति में गम्भीरता प्रतिबिम्बित होती है, जिससे इस क्षेत्र में और अधिक से अधिक प्रयास करने की आवश्यकता हो गई है। राजस्थान में ग्रामीण बालिकाएँ प्राय: प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा में आगे नहीं जाती है, चाहे उनके घर के समीप ही उच्च प्राथमिक विद्यालय स्थित हों। तारुण्य अवस्था पर पहुँचने के पश्चात् एक लड़की को उसके पति के घर भेज दिया जाता है और इस तरह पढने की किसी भी सम्भावना को समाप्त कर दिया जाता है। बालिकाओं को विद्यालय जाने से रोकने वाला एक बड़ा कारण यह है कि विद्यालयों में महिला अध्यापिकाओं की कमी है। बालिकाओं के माता-पिता अपने बेटियों को लड़कियों के स्कूलों में पढने भेजना चाहते हैं। बालिका शिक्षा के लिए राज्य में रुढ़िवादी एवं दकियानूसी वातावरण के फैलने के उपरान्त भी गत वर्षो में बहुत प्रगति की गई है। सन् 2001 की 44.34 प्रतिशत महिला साक्षरता की तुलना में सन् 1951 में महिला साक्षरता दर मात्र 3 प्रतिशत ही थी। इस तरह यह स्पष्ट है कि राजस्थान राज्य अपने कठोर सांस्कृतिक मानकों को तोड़ने के लिए एवं बालिकाओं - लिए बुनियादी शिक्षा प्रदान करने में दीप्त भविष्य सुनिश्चित करने हेतु घोर संघर्ष कर रहा है।

3.4 सारांश

आधुनिक काल में ही नहीं वरन् प्राचीनकाल में भी बालिका शिक्षा की आवश्यकता व महत्व को स्वीकार किया गया था। प्राचीनकाल में अनेक विदुषी स्त्रियों के नाम पढ़ने को मिलते हैं। लेकिन धीरे—धीरे स्त्रियों की समानता व शिक्षा को अस्वीकार किया जाने लगा था। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति बहुत खराब हो गई। उत्तर वैदिक युग के बाद बौद्ध काल में स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ। मुस्लिम काल को बालिका शिक्षा की दृष्टि से अन्धकार युग के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ब्रिटिश काल में भी सरकार बालिका शिक्षा के प्रति उदासीन ही रही। स्वतंत्रता के बाद स्त्रियों के सामाजिक एवं शैक्षिक स्तर में काफी प्रगति हुई। स्वतंत्रता के बाद बने सभी शिक्षा आयोगों ने अपनी अनुशंसाओं में बालिका शिक्षा पर बल दिया और उन्होंने बालिका शिक्षा के प्रसार के लिए अपने—अपने सुझाव दिये।

बालिका शिक्षा के लिए 1958 में श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में, 1962 में श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में और 1963 में भक्तवत्सलम् की अध्यक्षता में समितियाँ गठित की गई। इन्होंने बालिका शिक्षा के प्रसार के लिए गम्भीर चिन्तन करके अपने सुझाव दिये। बालिका शिक्षा की साक्षरता को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगरीय क्षेत्रों की साक्षरता के प्रतिशत में वृद्धि अधिक हुई है। स्वतंत्र भारत में बालिका शिक्षा की अनेक समस्याएँ हैं—जैसे बालिका शिक्षा के प्रति पक्षपातपूर्ण धारणा, निर्धनता, अध्यापिकाओं की कमी, प्रशासन, अपव्यय, पाठ्यक्रम सम्बन्धी दोष, पृथक् बालिका विद्यालयों का अभाव, शोध का अभाव आदि। इन समस्याओं के समाधान के लिए भी सुझाव दिये गये हैं। इसके अन्तर्गत पृथक बालिका विद्यालयों की स्थापना, पर्याप्त धन की व्यवस्था, अध्यापिकाओं की नियुक्ति, अलग निदेशालय, व प्रशासन की व्यवस्था करने, स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास, पाठ्यक्रम एवं प्रशासन में सुधार करना आदि मुख्य हैं। बालिका शिक्षा की धीमी प्रगति के बावजूद भी इसमें और प्रगति की सम्मावनाएं काफी बढ़ती जा रही है। सरकार इसके लिये विशेष प्रयास कर रही है। नई शिक्षा नीति में भी बालिका शिक्षा व साक्षरता पर अधिक बल दिया गया है।

राजस्थान में महिला शिक्षा की स्थिति गम्भीर चिन्ता का विषय है । आजादी से पूर्व बालिका शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया था । माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में राजस्थान में ग्रामीण इलाकों में महिलाओं का पिछड़ापन सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों से प्रभावित हुआ है । सरकार की नीतियों, महिलाओं के उपलब्ध रोजगार के अवसरों एवं महिलाओं के आरक्षण के फलस्वरूप ग्रामीण इलाकों के उच्च सामाजिक आर्थिक वर्गो में महिलाओं को शिक्षित करने में रुचि लेना प्रारम्भ कर दिया है । सामाजिक एवं सांस्कृतिक बदलाव के कारण शहरी क्षेत्रों में महिला की शिक्षा में प्रगति आई है, साथ ही महिलाओं के शिक्षित होने के कारण भी रूढ़िवादी परम्परागत मूल्यों में कमी आई है ।राजस्थान के अनुसूचित जातियों में गरीबी एवं परम्परागत कार्यो में संलग्नता का प्रभाव इनके शैक्षिक स्थिति को अधिक प्रभावित करता है । छुआछूत जैसी प्रथाओं के कारण बालिकाएं शिक्षा से वंचित है । सामाजिक परम्पराओं एवं सांस्कृतिक रुढ़िवादिता के चलते हुए अल्पसंख्यक वर्ग की महिलाओं की शिक्षा बुरी तरह प्रभावित हुई ।राजस्थान में वर्षो तक सामाजिक मान्यता रही है कि महिलाओं का कार्यक्षेत्र घर-परिवार तक ही सीमित है । इसी सोच के कारण ही महिलाओं को माध्यमिक एवं उच्च की शिक्षा से

वंचित रखा जाता रहा है ।बालिका शिक्षा के लिए राज्य में रुढ़िवादी एवं दकियानूसी के फैलने के उपरान्त भी गत वर्षों में बहुत प्रगति हुई है ।

राजस्थान में महिला शिक्षा की स्थिति प्रारम्भ से ही शोचनीय रही है । इसका मुख्य कारण यहां का सामाजिक तथा पारिवारिक परिवेश रहा है। समाज में महिलाओं की जिम्मेदारी घर परिवार, बच्चों एवं पशुओं की देखभाल तक ही सीमित थी । पर्दा एवं दहेज प्रर्था जैसी कुरीतियों का बोलबाला था । जिससे बालिकाओं की शिक्षा पर व्यय करना एक प्रकार से व्यर्थ माना जाता था । यहां तक की उच्च आय वर्ग के परिवारों में भी महिलाओं को शिक्षा केवल इसलिए दी जाती थी, ताकि वे धार्मिक क्रियाकलापों के दायित्वों को पूराकर सकें धार्मिक पुस्तकों को पढ़ सकें । स्वतंत्रता के पश्चात्, सरकार के विभिन्न प्रयासों के माध्यम एवं परिस्थितियों में बदलाव के फलस्वरूप धीरे-धीरे बालिका शिक्षा के प्रति समाज एवं परिवार के दृष्टिकोण में बदलाव महसूस किया जा रहा है ।

3.5 अभ्यास प्रश्न

1. वैदिक काल में महिलाओं की प्रस्थिति की विवेचना करिये ?
2. उन प्रमुख सामाजिक व सांस्कृतिक कारकों का उल्लेख उदाहरण देकर करिये जिन्होंने महिला-शिक्षा को प्रभावित किया ?
3. महिला-शिक्षा के बदलते परिदृश्य को अपने शब्दों में व्यक्त करिये ।
4. महिला शिक्षा को बढ़ाने हेतु किये जा रहे प्रयासों का उल्लेख करिये ।
5. "क्या वास्तव में बालिका शिक्षा समाज का आईना है", तर्क सहित विवेचना करिये ।
7. राजस्थान में आजादी से पूर्व महिलाओं हेतु किस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था थी । वर्णन कीजिए।
8. राजस्थान में सामाजिक तथा सांस्कृतिक परम्परा में एवं मूल्य किस प्रकार महिलाओं की औपचारिक शिक्षा को प्रभावित कर रहे है ? व्याख्या कीजिए ।
9. “राजस्थान में समाज एवं परिवार का दृष्टिकोण महिला शिक्षा के प्रति सकारात्मक नहीं है । "क्या आप इससे सहमत है ? अपने मत का औचित्य स्पष्ट कीजिए ।
10. “राजस्थान शैक्षिक विकास की दृष्टि से निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर है ।" महिलाओं की शिक्षा के संदर्भ में विवेचना कीजिए ।
11. किस युग को बालिका शिक्षा की दृष्टि से अन्धकार का युग कहा जाता है?
12. बालिकाओं के लिए सबसे पहले किसने पाठशाला स्थापित की?
13. भारत में प्रथम महिला शिक्षक—प्रशिक्षण की स्थापना किसने की?
14. बालिका शिक्षा के लिए पहली बार राष्ट्रीय समिति की स्थापना किसकी अध्यक्षता में हुई?
15. बालिका शिक्षा के महत्व के पाँच कारण लिखिए।
16. बालिका शिक्षा की क्या समस्याएँ हैं? इनके निवारण के लिए क्या कदम उठाये गये हैं?

17. स्वतन्त्रता के पश्चात् बालिका शिक्षा की प्रगति का विवरण लिखिए।

3.6 संदर्भ ग्रंथ

- Digumati Bhaskara Row, Education for Women, Discovery Publishing House, New Delhi – 110002
- Rao, R.K.,Women and Eduacation, Kalpaz Publication, New Delhi – 110052
- कटारिया कमलेश, नारी जीवन : वैदिक काल से आज तक, यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर
- Pantjali, PC., Development of Woment Education in India, Shree Publishers, Ansari Road, New Delhi – 110002
- http://www.educationforallinindia.com
- http://www.collegeeducation.rajasthan.gov.in
- M.H.R.D. (2008)"Elementary Education in India –Analytical Report 2006-07," NUEPA and Department of School education and Literacy, Ministry of Human Resource Development, Government of India, New Delhi.
- Satya, B.R. (2003): "Trends in Education", Anmol Publication, New Delhi.
- Sharma, Usha B.M. Sharma (1995): "Girl's Education", Women and Educational Development Series-6", Common Wealth Publishers, New Delhi.
- Verma, G.C. (1984): "Modern Education, Growth and Development in Rajasthan", Publication Scheme, Jaipur.
- www.education.nic.in
- अग्निहोत्री रवीन्द्र — भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ, 1987 रिसर्च, नई दिल्ली।
- अग्निहोत्री रवीन्द्र— भारतीय शिक्षा : दशा और दिशा, मेरठ, 1975
- अग्रवाल, जे.सी. — स्वतंत्र भारत में शिक्षा का विकास, दिल्ली, 1968
- अदावल, सुबोध तथा माधवेन्द्र उनियाल — भारतीय शिक्षा की समस्याएँ तथां प्रवृतियॉ उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ, 1975

- सिंघल, महेशचन्द्र — भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1971
- रिपोर्ट ऑफ दी सैकण्डरी एजूकेशन कमीशन, 1952—53
- रिपोर्ट ऑफ दी एजूकेशन कमीशन, 1964—66
- योजना मई 16—31,1988, योजना भवन, पार्लियामेण्ट स्ट्रीट, नई दिल्ली।

इकाई – 4

लिंग सम शिक्षा का संप्रत्यय,शिक्षा तक पहुँच और प्रभावित करने वाले कारक, बलिका शिक्षा को असमान करने वाले कारक

Concept of gender just education, access to education and factors affecting it, factors affecting unequal access of education to girls

इकाई की रुपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 भारत में लड़कियों की संख्या
4.4 मादा भ्रूण एवं कन्या हत्या
4.5 बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति
4.6 महानगरों में लड़कियों की शिक्षा
4.7 लिंग विषमताएं तथा रूढ़िबद्ध धारणाएं
4.8 सामाजिक-सांस्कृतिक कारक तथा उनका बालिका शिक्षा पर प्रभाव
4.9 शैक्षिक विकास में लैंगिक अनुपात का असन्तुलन
4.10 सारांश
4.11 अभ्यास प्रश्न
4.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.1 प्रस्तावना

आज के युग में लड़के और लड़कियाँ विशाल संख्या में विद्यालय जा रहे हैं, लेकिन फिर भी हम देखते हैं कि लड़के और लड़कियों की शिक्षा में अंतर है | भारत में हर दस वर्ष में जनगणना होती है | इसमे भारत में रहने वालो के जीवन के बारे में भी विस्तृत जानकारी एकत्रित की जाती है, जैसे- उनकी आयु, उनकी पढ़ाई, उनके द्वारा किए जाने वाले काम आदि | इस बात की जानकारी का इस्तेमाल हम अनेक बातों के आंकलन के लिए करते हैं, जैसे- शिक्षित लोगो की संख्या तथा स्त्री और पुरुषों का अनुपात | १९६१ की जनगणना के अनुसार सब लडको को और पुरुषों (७ वर्ष एवं उससे आधिक आयु) का ४० प्रतिशत

शिक्षित था (अर्थात अपना नाम लिख सकते थे)| इसकी तुलना में लड़कियों एवं स्त्रियों का केवल १५ प्रतिशत भाग शिक्षित था | २०११ की जनगणना के अनुसार लडको एवं पुरुषों की यह संख्या बढ़कर ७६ प्रतिशत हो गई है और शिक्षित लड़कियों और स्त्रियों की संख्या ५४ प्रतिशत | इससे यह प्रतीत होता है कि पुरुषों और स्त्रियों, दोनों के बीच ऐसे लोगो का अनुपात बढ़ गया है , जो पढ़-लिख सकते हैं और जिन्हे कुछ हद तक शिक्षा मिल चुकी है| लेकिन अब भी स्त्रियों की तुलना में पुरोशो का प्रतिशत आधिक है| अनके बीच का अंतर अभी समाप्त नहीं हुआ है | इसके अतिरिक्त हम यह भी पाते हैं कि दलित, आदिवासी और मुस्लिम वर्ग के बछो के स्कूल छोड़ दानी के अनेक कारण हैं| देश के अनेक भागो में विशेषकर ग्रामीण और गरीब क्षेत्रों में नियमित रूप से पढ़ने के लिए ना उचित स्कूल है और ना ही शिक्षक |यदि विद्यालय घर के पास ना हो और लाने –ले- जाने के लिए पर्याप्त साधन की व्यवस्था ना हो तों अभिभावक लड़कियों को स्कूल नहीं भेजना चाहते | ऐसी स्थिति में लडको को प्राथमिकता मिल सकती हैं | इसके अलावा भी बहुत से अन्य कारण भी होते हैं, जिसके वजह से वह स्कूल छोड़ देते हैं | इस इकाई के माध्यम से एहनि सब बिन्दुओ की विस्तार से चर्चा करेंगे | हम बालिका शिक्षा तक पहुँच और इसे प्रभावित करने वाले कारक और साथ ही बलिका शिक्षा को असमान करने वाले कारक के बारे में अध्ययन करेगें |

4.2 उद्देश्य

जब हम बलिक शिक्षा की बात करते हैं और ऐसा मानते है हैं कि लिंग सामान शिक्षा होनी चाहिये अर्थात बलाक और बालिका में कोई अंतर मानते हुए, दोनों को शिक्षा के समान अवसर मिलने चाहिये | ऐसे में हमे एक दृष्टि जनसंख्या अनुपात पर भी देना चाहिये | जिससे बालिकओं के प्रति सामान्य दृष्टिकोण को समझना सरल होगा | हाल ही में सम्पन्न जनगणना में अनेक चौंका देने वाले तथ्य सामने आये हैं 0-6 वर्ष की आयु वर्ग में पुरूषों पर स्त्रियों का अनुपात तेजी से नीचे की ओर गिरा है। सन 1991 में यह अनुपात 1000 पुरूषों पर 945 स्त्री था जो कि सन् 2001 में घटकर 927 ही रह गया। अत्यन्त समृद्ध माने जाने वाले राज्यों जैसे हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली में भी यह अनुपात घटा है। पंजाब में सन् 1991 में 1000 पुरूषों पर स्त्रियों का अनुपात 882 था जो सन् 2001 में गिर कर 874 हो गया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि बिहार एवं राजस्थान के कुछ समुदाय में जहां 103 पुरूषों पर 100 महिलाएं होने की आशा की जाती है, वहां बड़े ही नाटकीय ढंग से इस संख्या में कमी आई है। हाल के अध्ययनों के अनुसार यहां के कुछ इलाकों में 100 पुरूषों पर महिलाओं की संख्या 60 से भी कम है। इस घटते हुए अनुपात का प्रमुख कारण है समाज का नारी के प्रति दृष्टिकोण। परिवार में पहली लड़की का जन्म होत ही परिवार वालों की त्यौरी चढ़ जाती है। उन्हें यह डर सताने लगता है कि कहीं आगे भी लड़की का ही जन्म न हो। अधिकांश यह सोचते है कि लड़कियां न तो बेटों के सम्मान उनके वृद्धावस्था का सहारा बन सकती हैं न ही दहेज ला सकती हैं, अनेक पुरूष प्रधान परिवारों में लड़की को जन्म देने पर मां को प्रताड़ित किया जाता है। यही कारण है कि हमारे देश में बालिकओं की संख्या निरन्तर कम होती जा रही है यदि समाज में लड़की को भी लड़के के समान समझा जाए और नारी के प्रति उसकी मानसिकता में परिवर्तन हो जाए तो बालिकओं की घटती संख्या को अवश्य ही रोका जा सकता है।

महिलाओं के अनुपात में गिरावट कई सामूहिक कारणों से आयी है जैसे शिशू जन्म के समय महिला के प्रति लापरवाह होना, बालिकाओं की उपेक्षा करना, लड़कियों और महिलाओं का कुपोषित होना। नेशनल मानीटरिंग ब्यूरो के अधीन इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च ने दस राज्यों का सर्वेक्षण किया। इस सर्वेक्षण के अन्तर्गत 24 प्रतिशत महिलाएं ऐसी पायी गई जिनका वजन और कद कम था। ऐसे अनेक कारण हैं जिनके परिणामस्वरूप् महिलाओं के अनुपात में कमी आई है।

यदि आंकड़ों को देखा जाए तों आंकड़ो के माध्यम से जो परिदृश्य हमारे सामने प्रकट हुआ है उसे देखकर लगता है कि आर्थिक सम्पन्नता एवं सरकार द्वारा बनाये गए ठोस नियम आदि तब तक पूर्ण रूप् से सार्थक नहीं हो सकते जब तक की बालिका के प्रति हमारे समाज की सोच में परिवर्तन नहीं आता। बालिका के प्रति उचित दृष्टिकोण रखकर ही हम अपने समाज में उसे सम्मान दे सकते हैं एवं पुरूषों के समानुपात में लाने के प्रयास में सफल हो सकते हैं।

भारत की जनसंख्या का लगभग एक चौथाई हिस्सा 19 वर्ष से कम आयु की लड़कियों का है। भारत में लड़कियों के साथ सामाजिक, आर्थिक, मानसिक आदि कई स्तरों पर भेदभाव देखने को मिलता है। लड़कियों के प्रति किया जाने वाला यह भेदभाव बचपन से लेकर बुढ़ापे तक चलता है, शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में यह भेदभाव अधिक किया जाता है। अनुमान है भारत में हर छठी महिला की मृत्यु लिंग भेद के कारण होती है (प्रसाद- 1990-94)।

यद्यपि पिछले पचास वर्षों में भारत ने स्वास्थ्य के क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। उदाहरण के लिए व्यक्ति की औसत आयु बढ़ना, विवाह की औसत आयु में इजाफा एवं शिशु-मृत्यु दर में कमी। लेकिन आज भी बालिका शिशु की मृत्यु दर बालक शिशु मृत्यु दर से अधिक है। पिछले दशक में बालक-बालिका शिशु मृत्यु दर के अंतर में वृद्धि हुई है। आज भी भारत मे सभी आयु समूह की कुल मौतों में 5 वर्ष से नीचे की आयु का मृत्यु प्रतिशत 30 है और इनमें बालिकाओं की संख्या अधिक है। (वल्ड बैंक - 1964)।

4.3 भारत में लड़कियों की संख्या

भारतीय उपमहाद्वीप में स्त्री पुरूष के सामाजिक कार्यों एवं भूमिका इतनी सारी धारणयें फैली हैं कि जन्म से ही लड़की की भूमिका जाती है। भारतीय जनसंख्या का 38 प्रतिशत 14 वर्ष से कम उर्म है जिनमें से आधी लड़कियां है। सन 2011 की जनगणना में 843.93 मिलीयन आंकी गयी थी जिसमें 0-14 आयु समूह में बच्चे थे। इनमें से आधी लड़कीयां थी।

भारत में पुरूषों के मुकाबले स्त्रियों का अनुपात कम होने का मुख्य कारण है : 30 वर्ष से नीचे की उम्र में महिलाओं की मृत्यु दर का ऊंचा होना। इसमें नई वैज्ञानिक तकनीकों ने भी योगदान दिया है जैसे भ्रूण लिंग परीक्षण। अध्ययनों से पता चलता है कि 0-4 आयु समूह में बालिका मृत्यु दर बालकों की मृत्यु दर से 10 प्रतिशत अधिक है। 5-9 वर्ष के आयु समूह में यह अंतर 25 प्रतिशत पाया गया लेकिन 10-14 आयु समूह में लड़के-लड़कियों की मृत्यु दर में अंतर नहीं के बराबर था। नवजात शिशु मृत्यु दर एवं उत्तर नवजात शिशु मृत्यु दरों में अंतर टीकाकरण, स्वास्थ्य सेवाओं एवं कुपोषण से जुड़ा हुआ माना जाता है। मृत्यु दरों में यौन असमानता जानने के लिये दोनों वर्गों में इसकी स्थिति जानना आवश्यक होगा। इस

संबंधमें कुछ शोधकर्ताओं ने सराहनीय कार्य किया है। (किशोर 1993, दास गुप्ता 1987, रामानुजम 1987, घोष, भार्गव एवं मोरियाना 1982)

भारत में लड़कियों एव महिलाओ में बिमारी (असामयिक मृत्यु एवं अपंगता) के कारणों में से 68 प्रतिशत संक्रामक रोगों, मातृत्व एवं परिचारिका दशाओं तथा कुपोषण से जुड़ी हैं। इन कारणों को आसानी से कम लागत एवं कम खर्चीली तकनीकों से हटाया जा सकता है। उदाहरण के लिए चीन में महिलाओं के स्वास्थ्य संबंधीयही कारण 27 प्रतिशत ही हैं। लड़कियों में मृत्यु एवं अपंगता के कारणों में श्वास संदूषण, अतिसार-दस्त, चोट, टिटनेस एवं कुपोषण है। जन्म के समय वनज का कम होना इसे इसे और भी घात बना देता है। अक्सर जन्म के समय बालिका शिशु का वजन कम होता है। गर्भावस्थाजन्य कारण एवं प्रसव के 40 दिन के भीतर होने वाली किसी महिला की मृत्यु ‘मातृत्व मृत्यु’ कहलाती है। भारत में हर दिन 300 महिलाओं की मृत्यु शिशु को जन्म देते समय अथवा इसके जुड़े कारणों से होती है।

4.4 मादा भ्रूण एवं कन्या हत्या

भारतीय उपमहाद्वीप में बेटे के प्रति पाया जाने वाला मोह अद्वितीय है। लड़की के मुकाबले लड़कों के प्रति ऐसी प्राथमिकता अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका यहां तक कि पश्चिमी एिशया में भी नहीं पायी जाती है। (मुथुरायप्पा 1997,लेंसर 1990, ओकुम 1996) |भारत में छोटे परिवार के प्रति जागरूकता के साथ ही ‘लड़कों की प्राथमिकता’ ने विज्ञान के अविष्कारों के दुरूपयोग को प्रोत्साहित किया है। परिवार में बच्चों की संख्या को नियंत्रित करने के लिए ‘लड़का’ है या नही के आधार पर गर्भ निरोधक तरीके अपनाये जाते हैं। गर्भधारण के बाद भ्रूण का लिंग परीक्षण करवाया जाता है। यदि भ्रूण मादा है तो उसे नष्ट कर दिया जाता है। (पार्क एवं चो 1995, अरोका 1996)| चीन ने 1976 में ‘एक परिवार एक बच्चा’ की जनसंख्या नीति अपनायी। लेकिन 1990 के प्रारंभ होते-होते यह तथ्य उभर कर सामने आने लगा कि वहां लाखों लड़कियां ‘गायब’ हो गई हैं। (कोएक एवं बेनीस्टर 1994)। मादा भ्रूण हत्या इसका प्रमुख कारण था। कन्या शिशु हत्या के बारे में प्रथम बार पता लगने के बाद से 1870 में कन्या शिशु वध प्रतिबंध अधिनियम बनने तक इस विषय को लेकर बहुत बहस हुई। इनका ब्यौरा राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित है। इससे हमें यह पता चलता है कि अंग्रेजों ने इस कुप्रथा को रोकने के लिये कौन-कौन से उपाय अपनाये। उपलब्ध दस्तावेजों से पता चलता है कि 18 वीं एवं 19 वीं सदी में अंग्रेजों ने अलग-अलग तरीकों से इसे रोकने की कोशिश की। चूंकि यह प्रथा जमींदार वर्ग में अधिक थी जो स्थानीय स्तर पर प्रभावशाली थे अंग्रेजो ने सर्वप्रथम हिन्दू धार्मिक ग्रंथों का सहारा लिया। यहां यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेजों ने अपने शासन काल की जड़े जमने के प्रारंभिक वर्षों में एसा साहसिक कदम उठाया। वे चाहते तो इसे नजरअन्दाज कर सकते थे। उस समय के मिश्नरी लेखों से पता चलता है कि इंग्लैंड में इस मुद्दे को लेकर बहुत चर्चा थी एवं सम्पूर्ण क्रिश्चियन समाज इस प्रथा को समाप्त करना चाहता था। इस संबंधमें मिश्नरी विलसन जोनस की प्रसिद्ध किताब ‘हिस्ट्री ऑफ दी सप्रेशन ऑफ इन्फेन्टीसाइट इन वेस्टर्न इंडिया’ उत्तम संदर्भग्रंथ है।

4.5 बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति

प्राचीन भारत में महिलाओं को पुरुषों के बराबर शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध थीं। अनेक प्राचीन युग की विदुषी महिलाएँ गार्गी, मैत्रेयी आदि इसका प्रमाण हैं। कालान्तर में महिला शिक्षा की दशा अवनत होती गई। मुस्लिम काल में देश की महिलाओं को अनेक कुरीतियाँ जैसे पर्दा, बाल विवाह, आदि का सामना करना पड़ा जो महिला-शिक्षा के मार्ग में बाधक बनी।

अंग्रेजी-शासन काल में इस दिशा में सुधार हेतु कुछ प्रयास हुए किन्तु वे नगण्य रहे। एक अंग्रेज एडम्स (Adams) के शब्दों में तत्कालीन स्थिति इस प्रकार प्रकट होती है- "समस्त शिक्षा - संस्थाएँ पुरुषों के लाभार्थ है, समस्त महिला वर्ग अज्ञानता के अन्धकार में भटक रहा है।" ईसाई धर्म प्रचारकों (Christian Missionaries) ने कलकत्ता में 1820 में एक महिला विद्यालय खोला किन्तु इसमे जन-साधारण की लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त न कर सकीं। 1854 में वुड्स घोषणा पत्र ने स्त्री-शिक्षा के प्रसार पर बल दिया। 1882 मे हंटर आयोग ने देश में केवल 2 प्रतिशत लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करते हुए पाया। इस आयोग ने अनेक सुझाव दिये किन्तु सरकार की शिक्षा के प्रति उपेक्षा के कारण सिफारिशों पर कोई अमल नहीं हुआ।

19वीं व 20वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में देश में सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागरण की लहर फैली। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द आदि इस आन्दोलन के अग्रदूत बने। 'आर्य समाज', रामकृष्ण मिशन' आदि संस्थाओं ने महिला शिक्षा संस्थाएँ खोलीं। श्रीमती एनीबिसेन्ट ने 1914 में बनारस में तथा महर्षि कार्वे ने 1916 में पूना में महिला शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की। सन् 1917 में सैडलर आयोग (Saddler Commission) ने महिलाओं हेतु पृथक् पाठ्यक्रम व व्यावसायिक प्रशिक्षण की सिफारिश की। महात्मा गाँधी ने भी बालिका शिक्षा हेतु काफी प्रयास किये। देश की स्वाधीनता के बाद महिला-शिक्षा में अभूतपूर्व प्रगति हुई। शिक्षा के समान अवसरों के प्रावधान को पूरा करने हेतु महिला-वर्ग की शिक्षा पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। महिला शिक्षा का महत्त्व पं. जवाहरलाल नेहरु के शब्दों में इस प्रकार है- "एक लड़के की शिक्षा एक व्यक्ति की शिक्षा है किन्तु एक लड़की की शिक्षा सम्पूर्ण परिवार की शिक्षा है।" डॉ. राधाकृष्णन् आयोग (1948) ने कहा है - "शिक्षित स्त्री के बिना शिक्षित पुरुष हो ही नहीं सकता। यदि सामान्य शिक्षा को पुरुष या महिलाओं तक ही सीमित किया जाये, तो यह अवसर महिलाओं को दिया जाना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से शिक्षा का प्रसार अगली पीढ़ी तक हो सकेगा।"

भारतीय संविधान व विभिन्न शिक्षा आयोगों व समितियों ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। संवैधानिक प्रावधान - संविधान की धारा - 15 के अनुसार "राज्य किसी नागरिक के प्रति वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या अन्य किसी आधार पर भेदभाव नहीं करेगा। (The State shall not discriminant against any citizen or grounds of race, caste, sex, place of birth or any of them) उपर्युक्त संवैधानिक प्रावधान ने बालिका शिक्षा का मार्ग प्रशस्त किया। केन्द्रीय सरकार ने समय-समय पर विभिन्न शिक्षा आयोगों जैसे - डी. राधाकृष्णन् विश्वविद्यालय आयोग (1948-49), दुर्गाबाई देशमुख राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति (1958-59) श्रीमती हंसा मेहता स्त्री शिक्षा समिति

(1962), भक्तवत्सलम् समिति (1963) आदि की स्थापना की थी, उन सभी ने महिला शिक्षा के विकास हेतु आवश्यक अभिशंसाएँ की हैं।

उपर्युक्त समितियों, परिषदों तथा आयोगों की अभिशंसा के अनुसार महिलाओं के लिए शैक्षिक अवसरों की समानता की दिशा में सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रयास किये जा रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में महिला-शिक्षा हेतु संविधान की धारा 45 में शैक्षिक अवसरों की समानता के अवसर देने का प्रयास किया गया। पूर्वोलिखित समितियों, परिषद् एवं आयोगों ने महिला-शिक्षा के विकास में बाधक तत्त्वों के निराकरण एवं उसकी प्रगति सम्बन्धी सुझाव दिये। देश की पंचवर्षीय विकास योजनाओं में इस हेतु प्रयास किये गये।

शिक्षा मानव संसाधन के विकास का महत्वपूर्ण साधन हैं। इसी कारण भारत की महिलाओं के सबलीकरण हेतु शिक्षा को एक महत्वपूर्ण कारक माना गया है। शिक्षा के विकास में लोगों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति, अभिवृत्ति, मूल्य तथा संस्कृति कई बार बाधाएँ बनकर सामने आती। हैं। भारत में बालिकाओं की शिक्षा के विकास में बाधक के रूप में इन्हें अधिक जाना जाता है। ब्रिटिश काल में शिक्षा को ब्रिटिश शासन के सहायता हेतु एक छोटे से समूह को शिक्षित करने के साधन के रूप में देखा गया था। उस समय भी सामाजिक-धार्मिक परिस्थितियाँ अत्यन्त हावी थीं। अत: बालिकाओं की शिक्षा व्यवस्था विकट स्थिति में थी। 19वीं शताब्दी के सामाजिक सुधारकों ने बालिका शिक्षा की पैरवी की। आजादी के पश्चात् भी नीति निर्धारकों ने बालिका को बालक के समान शिक्षा प्रदान करने की नीतियों का निर्माण किया लेकिन बालिकाओं को शिक्षित करने के कार्य में व्यावहारिक प्रगति 20वी शताब्दी के अन्त तक अनेक प्रयासों एवं कारको के प्रभाव स्वरूप हुई है। इसी प्रगति का एक विहंगावलोकन हम करेंगे।

1) **साक्षरता की स्थिति -** वर्ष 1951 से लेकर वर्ष 1981 तक महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि 7.93 से लेकर 24.82 प्रतिशत रही। लेकिन जनगणना आकड़ों के अध्ययन से पता चलता है कि जनसंख्या वृद्धि के परिणाम स्वरूप निरक्षर महिलाओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। 1980-81 के उपलब्ध आकड़ों के अनुसार स्थिति इस प्रकार है- 1981 की जनगणनानुसार देश में उस समय महिलाएँ 29.75 प्रतिशत ही साक्षर थीं। जबकि पुरुषों का प्रतिशत 56.37 प्रतिशत अर्थात लगभग पुरुषों से आधी संख्या में ही महिलाएँ साक्षर थीं जो कुल महिला जनसंख्या का एक-चौथाई भाग ही था। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार कुल निरक्षरों में से लगभग 61 प्रतिशत महिलाएँ थी। और यह दर ग्रामीण इलाकों में लगभग 70 प्रतिशत थी। चिन्ताजनक यह है कि वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार निरक्षरों में से महिला निरक्षरता का प्रतिशत बढ़कर 64 प्रतिशत हो गया। महिला और पुरुष साक्षरता दर के मध्य वर्ष 1951 में अन्तर 18.30 प्रतिशत बिन्दुओं का था जो वर्ष 1981 में बढ़कर 26.62 प्रतिशत हो गया। वर्ष 2001 तक यह अन्तर पुन: घटकर 21.70 प्रतिशत बिन्दु तक हो गया है।

1991 की जनगणनानुसार देश में महिलाएँ 39.42 प्रतिशत साक्षर थीं तथा पुरुष 63.85% साक्षर थे। सत्र 2001 की जनगणनानुसार देश में महिलाएँ 54.16% साक्षर तथा पुरुष 75.85% साक्षर थे। अर्थात् साक्षरता में लिंगभेद सार्थक रूप से मौजूद हैं, साथ ही निरक्षरता में यह गिरावट बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति में हो रही प्रगति का द्योतक है। इस स्थिति को निरन्तर बनाये रखने की आवश्यकता है। ताकि

वर्ष 2010 तक 6 से 14 वर्ष के सभी बालक बालिकाओं को उच्च प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त करवाने के वर्तमान लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।

2) **क्षेत्रीय विषमताएँ -** भौगोलिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भारत एक विशाल देश है। भारत के एक राज्य से दूसरे राज्य में बालिका शिक्षा की दृष्टि से अनेक विषमताएँ पाई जाती है। जनगणना वर्ष 1981 के अनुसार केरल में 73 प्रतिशत महिलाएँ साक्षर थीं, वही राजस्थान में केवल 12 प्रतिशत महिलाएँ साक्षर थीं। मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा बिहार जैसे अनेक राज्य बालिका शिक्षा की दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए माने जाते हैं। वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार जहाँ कुल महिला साक्षरता दर 24.8 प्रतिशत थी। लेकिन ग्रामीण (18%) एव शहरी इलाकों में (47.8%) भी भारी विषमता थी। वर्ष 2001 की जनगणना में भी केरल मे लगभग 88 प्रतिशत महिला साक्षरता पाई गयी जबकि बिहार की साक्षरता दर लगभग 30 प्रतिशत सबसे कम थी। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, झारखण्ड आदि कुछ ऐसे प्रदेश थे जिनकी महिला साक्षरता दर 50% से भी कम थी। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण इलाकों (46.55%) तथा शहरी इलाकों (72.99%) के मध्य महिला साक्षरता में भारी अन्तर विद्यमान था।

3) **नामांकन -** देश की स्वतंत्रता से पूर्व अध्ययनरत बालक-बालिकाओं की संख्या में काफी विषमता थी। 100 बालकों के पीछे 35 बालिकाएँ प्राथमिक स्तर पर, 14 बालिकाएँ माध्यमिक स्तर पर तथा 12 विश्वविद्यालय स्तर पर अध्ययनरत थीं। व्यावसायिक, शिक्षा में बालिकाओं की शिक्षा सर्वाधिक न्यून थी। वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार 6-11 वर्ष उम्र की 96.3 प्रतिशत जनसंख्या विद्यालयों में नामांकित थी। लेकिन लड़कों के मुकाबले लड़कियों का नामांकन कम पाया गया। वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार विद्यालय के बाहर रहे बच्चों में से 70 प्रतिशत लड़कियाँ थी। वर्ष 1997-98 में प्राथमिक स्तर पर जहाँ लड़की की सकल नामांकन दर लगभग 100 प्रतिशत थी। वहीं लड़कियों की केवल 81 प्रतिशत थी। (वार्षिक प्रतिवेदन 1999, एम.एच.आर.डी)

बालक व बालिकाओं की शिक्षा के मध्य भेद निरन्तर कम हो रहा है। प्राथमिक शिक्षा स्तर पर नामांकन मे 23 वर्ष 2002-03 में जहाँ यह अन्तर 5.5% प्रतिशत था, वही 2006-07 में यह अन्तर केवल 2 प्रतिशत रह गया है। इसी प्रकार उच्च प्राथमिक स्तर पर बालक व बालिकाओं के नामांकन में अन्तर वर्ष 2002-03 मे 10.7 प्रतिशत था, वही वर्ष 2006-07 में यह अन्तर मात्र 3.5 प्रतिशत रह गया है।

एम.एच.आर.डी. की रिपोर्ट 11thPlan Working Group Report के अनुसार वर्ष 2001-02 से लेकर वर्ष 2004-05 की अवधि में लड़कियों की विद्यालय छोड़ने की दर 39.88% प्रतिशत से लेकर 24.82% प्रतिशत हो गई है। अर्थात् लगभग 15 प्रतिशत बिन्दु की कमी हुई है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की शैक्षिक स्थिति - विद्यालयी शिक्षा के साथ-साथ उच्च शिक्षा भी महिलाओं के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वर्ष 1950-51 में जहाँ प्रत्येक 100 पुरुषों के मुकाबले केवल 14 महिलायें उच्च शिक्षा में नामांकित थीं, वहीं वर्ष 2001-02 प्रत्येक 100 पुरुषों के मुकाबले 66 प्रतिशत महिलाएँ नामांकित थी। इस प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात् उच्च शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है।

बालिका शिक्षा :-

हम इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हैं कि भारत में लड़कियों को शिक्षा दिलाने में वह उत्साह नहीं देखा जाता जो लड़कों के मामलों में दिखता है। लड़कियों के प्रति भेदभाव सबके लिए शिक्षा का लक्ष्य हासिल करने के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा है।

लड़कियों को अक्सर अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप् ऊंचे स्तर की शिक्षा पाने के अधिकार से वंचित रखा जाता है। वे स्कूल के भीतर जाकर भी इस सुविधा से वंचित रह जाती है। पाठ्य पुस्तकों में ऐसे पाठ भरे पड़े है जिनमें लड़कियों का महत्व लड़कों से कम बताया गया है। ऐसी पाठ्य सामग्री से लड़कियों के आत्मविश्वास और पढ़ाई को ठेस लगती है। ऐसी पाठ्य सामग्री से लड़कियों के आत्मविश्वास और पढ़ाई को ठेस लगती है। 155 देशों में सबके लिए शिक्षा की जो विश्व घोषणा अपनाई थी उस पर भी यह मुद्दा हावी रहा : ''लड़कियों और महिलाओं के लिए शिक्षा सुलभ कराना और उसका स्तर सुधारना तथा उनकी सक्रिय भागीदारी के रास्ते की हर बाधा हटाना सबसे पहली प्राथमिकता है। लड़के और लड़कियों के लिए निश्चित भूमिका बताने वाली हर प्रकार की सामग्री को शिक्षा से हटा दिया जाना चाहिए।'' लड़कियों को शिक्षित करने के व्यापक सामाजिक लाभों को लगभग सभी स्वीकार कर चुके हैं फिर भी उन्हें दोहराना लाभकारी होगा:

- माता जितनी पढ़ी लिखी होगी शिशु और बाल मृत्यु में उतनी अधिक कमी आयेगी।
- अधिक शिक्षित माताओं के बच्चे अधिक सुपोषित होते हैं और उन्हें बीमारियों भी कम घेरती हैं।
- महिलाएं जितने अधिक वर्ष तक पढ़ेगी उतनी ही अधिक उम्र में शादी करेगी और उतने ही कम बच्चों का जन्म देगी।
- शिक्षा महिलाओं की प्रसव के दौरान मृत्यु की आशंका कम रहती है।
- महिला जितनी शिक्षित होगी उसके लिए जीवन के अवसरों और विकल्पों की संभावना उतनी ही अधिक रहेगी और परिवार या सामाजिक स्थिति के हाथों दमन और शोषण से भी बची रहेगी।
- शिक्षित महिला के विकास प्रक्रिया से प्रभावित होने, उसे समझने और उसमें भाग लेने तथा अपनी बेटी को स्कूल भेजने की संभावना भी अधिक होती है।
- शिक्षित महिला सामुदायिक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक और आर्थिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में अधिक सक्रिय भूमिका भी निभा सकती है।

अत: लड़की के प्रति संवेदनशीलता की नीति को व्यवस्था के हर स्तर पर निर्णय प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए।

निरक्षरता के प्रभाव बहुत गहरे ओर अक्सर जीवन के लिए खतरनाक भी हो सकते हैं। यह प्रभाव एक बुनियादी मानव अधिकार, शिक्षा के अधिकार, से वंचित रहने के कारण उत्पन्न होते हैं। शिक्षा मानव अधिकार घोषणा पत्र से लेकर 1989 के बाल अधिकार समझौते तक विभिन्न समझौतों में शिक्षा पाने के अधिकार का उल्लेख है। पिछली आधी सदी में स्पष्ट घोषणाओं और पुष्टि के बावजूद विकासशील देशों में स्कूल जाने की उम्र के करोड़ों बच्चे बुनियादी शिक्षा से वंचित हैं। इनमें लड़कियों की संख्या बहुत अधिक है। विकासशील देशों में स्कूल न जा रहे प्रति तीन बच्चों में से करीब दो लड़कियां होती हैं। (स्कूल न जा रहे 13 करोड़ बच्चों में से करीब 7 करोड़ 30 लाख : युनिसेफ फैक्ट्स एण्ड फिगर्स, 1998 युनिसेफ न्यूयार्क)।

शिक्षा का अधिकार सुनिश्चित करना वास्तव में नैतिकता न्याय और आर्थिक समझदारी से जुड़ा मुद्दा है। मृत्युदरों में विशेषकर बाल मृत्यु दरों और शिक्षा के बीच अटूट रिश्ता है। लड़कियों के लिए तो शिक्षा का महत्व विशेषतौर पर निर्णायक है। प्राथमिक स्कूल में लड़कियों के लिए तो शिक्षा का महत्व विशषतौर पर निर्णायक है। प्राथमिक स्कूल में लड़कियों की भर्ती में दस प्रतिशत वृद्धि होने पर शिशु मृत्युदर में प्रति 1,000 पर 4.1 मौतों की कमी की जा सकती है और माध्यमिक स्कूलों में लड़कियों की भर्ती में इतनी ही बढ़ोतरी होने पर प्रति हजार शिशुओं पर 5.6 मौतों की कमी हो सकती है। (हिल एम एनी और एजिलाबेथ एम किंग, वीमेन्स एज्युकेशन एण्ड इकानामिक वेलबींग, फेमनिस्ट इकानामिक्स, अंक 1, संख्या 2 लंदन : राटलेज जर्नल्स 1995) इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दुस्तान में अगर एक हजार अतिरिक्त लड़कियों को एक वर्ष और स्कूल में बढ़ाया जाए तो करीब 60 बच्चों को मृत्यु से बचाया जा सकता है।

कुछ विशेष समुदायों स्त्री साक्षरता की स्थिति अत्यंत दयनीय है। इन विशेष समुदायों में स्त्री साक्षरता का विश्लेषण करने के पूर्व सम्पूर्ण भारत में लड़कियों की स्कूल नामांकन की स्थिति को समझने का प्रयास करें। सम्पूर्ण भारत में 5-14 वर्ष की आयु समूह में 34.76 प्रतिशत लड़कियां ही स्कूल जा पाती हैं। पिछले वर्षों में स्त्री साक्षरता में बढ़ोतरी के बावजूद आज भी सिर्फ केरल को छोड़कर अन्य सभी राज्यों में लड़कों की तुलना में कम लड़कियां स्कूल जाती हैं या अपनी पढ़ाई जारी रख पाती हैं। स्कूली उम्र की लड़कियों में 41 प्रतिशत स्कूल नहीं जाती है। (आई आई पी एस 1995)। इसके अलावा लड़कियों की स्कूली अनुपस्थिति लड़कों की बनिस्पत अधिक है। अक्सर घरेलू कार्मों के लिए लड़कियों को रोक लिया जाता है। इस संबंधमें अखिल भारतीय आंकड़े उपलब्ध नहीं है। परन्तु तमिलनाडु के दक्षिण अर्काट जिले में किये गए एक अध्ययन के अनुसार डी.पी.ई.पी. के एक सर्वेक्षण के दौरान दूसरी एवं पांचवीं कक्षा में 41 एवं 22 प्रतिशत लड़कियां गैर हाजिर थी। अनुपस्थित लड़कों का प्रतिशत उन्हीं कक्षाओं के लिए क्रमश: 30 एवं 16 था (शर्मा एवं रामाकृष्ण 1994)। स्कूल छोड़ने का प्रतिशत भी लड़कों की तुलना में लड़कियों में अधिक है। शिक्षा विभाग (मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा किये एक अध्ययन के अनुसार एक से पांचवी कक्षा के बीच 41 प्रतिशत लड़के एवं 45 प्रतिशत लड़कियां स्कूल छोड़ देती है। हालांकि स्कूली ड्राप आउट बच्चों में यौन असमानता घट रही है फिर भी प्रतिवर्ष लड़कों के मुकाबले दस लाख से ज्यादा लड़कियां इस श्रेणी से जुड़ जाती है।

एक अध्ययन के अनुसार लड़कियों के स्कूल मे नामांकन नहीं कराने के मुख्य कारणों में आर्थिक गतिविधि (33 प्रतिशत ग्रामीण लड़कियों में एवं 30 प्रतिशत शहरी लड़कियों में) एवं रूचि न होना (32 प्रतिशत लड़कियों में, 33 प्रतिशत शहरी लड़कियों में) प्रमुख हैं। इसके साथ ही अभिभावकों का रूख भी महत्वपूर्ण रोल अदा करता है। मां-बाप की पंसद लड़का है। महाराष्ट्र का उदाहरण लें एक सर्वेक्षण में 50 प्रतिशत माताओं ने कहा कि उनकी दृष्टि में लड़कों को वे जितना चाहें उतना पढ़ाना चाहिए। इन सबसे लड़के-लड़कियों की शिक्षा के प्रति मां-बाप के रूख का पता चलता है। लड़कों के मामले में वे उसे वे उसकी कमाने की क्षमता से जोड़ते हैं तो लड़कियों के मामले में शादी के अवसर से।

लड़कियों के स्कूलों नामांकन को शिक्षा का अवसर-मूल्य भी प्रभावित करता है। नायर एवं नूना ने अपने हरियाणा अध्ययन (1994) में पाया कि अनेक परिवारों ने स्कूल न जाने के कारणों में लड़कियों द्वारा घरेलू कामों की जिम्मेदारी (75 प्रतिशत), पढ़ाई खर्च न बर्दाशत कर पाना (57 प्रतिशत), कपड़े इत्यादि का खर्च (53 प्रतिशत) बताया। कुल मिलाकर लड़की द्वारा स्कूल न जाने का मुख्य कारण काम बताया। अत: परिवार किस सदस्य पर कितना खर्च करना चाहता है यह भी महत्वपूर्ण है। भारतीय परिवारों में लड़के की शिक्षा पर धन व्यय करने क प्रवृति है क्योंकि व सोचते हैं कि ऐसा करने से ‘धन’ घर में ही रहेगा। जबकि लड़की पर खर्च का लाभ किसी अन्य परिवार को मिलेगा। हरियाणा में दो लड़कों वाली महिलाओं में सिर्फ 15 प्रतिशत ही और अधिक संतान चाहती है जबकि दो लड़कियों वाली महिलाओं में 95 प्रतिशत और संतानों की इच्छुक हैं। (संभवत: इस आशा में कि अगली संतान बेटा हो।) हरियाणा में माताएं घरेलू कार्यों, धार्मिक जिम्मेदारीयों एवं भावनात्मक सहारे के लिये लड़कियों की मदद चाहती हैं। जिसके चलते वे लड़कों की शिक्षा पर ज्यादा ध्यान देती हैं एवं लड़कियों की शिक्षा पर कम (मालही, 1993)।

लड़कियों द्वारा स्कूल छोड़ देने के मुख्य कारण लगभग वही हैं जो उनको भर्ती नहीं कराने के है। राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे के अनुसार ‘पढ़ाई में रूचि नहीं या आगे नहीं पढ़ना चाहती (33 प्रतिशत ग्रामीण लड़कियां, 28 प्रतिशत शहरी लड़कियां) या आमदनी के लिए काम (24 एवं 22 प्रतिशत) या घरेलू कामकाज (14 एवं 16 प्रतिशत) मुख्य कारण बताये गये। हरियाणा के चार जिलों में लड़कियों द्वारा पढ़ाई छोड़ देने का मुख्य कारण (75 प्रतिशत) घरेलू कामकाज पाया गया। लड़की की पढ़ाई पर खर्च भी प्रमुख कारण है। महाराष्ट्र के एक अध्ययन में पाया गया कि अनुसूचित जातियों पृष्ठभूमि की 6-18 वर्ष की लड़कियों में से वे लड़कियां अपनी पढ़ाई जारी नहीं रख पाती जिनके परिवार का मुखिया अनपढ़ है या जो स्वरोजगार वाले कामों में लगे हैं (आचपि एवं आभा में 1995)।

दलित एवं आदिवासी लड़कियों में शिक्षा

आदिवासी महिलाओं के बीच राजस्थान में कार्यरत महिला आधिकारी कहती है कि एक ही गांव की दो लड़कियां एक गैर आदिवासी और दूसरी आदिवासी का शिक्षा के मामले में अलग-अलग राह अपनाती हैं। दस आदिवासी लड़की में मुश्किल से ही एक कक्षा पांच तक पहुंच जाती है। इसी तरह रायपुर(छतीसगढ़) की प्रमुख महिला कार्यकर्ता का मानना है कि शिक्षा व्यवस्था विशेषकर आदिवासी व दलित वर्ग की लड़कियों के खिलाफ है। जहिर है ऐसे विचारों का आदिवासी

लड़कियों की शिक्षा पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। परन्तु प्रत्येक प्रांत में अनुसूचित जातियों या जनजातियों या जनजातियों की परिभाषा अलग-अलग है और कहीं-कहीं तो एक प्रांत में अनुसूचित जाति दूसरे प्रांत में जनजाति में गिरी गई है। सामाजिक एवं भौगोलिक बहिष्कार के कारण इन समुदायों की लड़कियों शिक्षा की तुलना में काफी कम पाया जाता है। कहना न होगा कि अधिकांश बालिका मजदूर इन्हीं वर्गों से आती है। पिछले तीन-चार दशकों में दलितों एवं आदिवासीयों में शिक्षा के प्रसार हेतु विशेष अभियान चलाये गय जिनका कुछ प्रभाव अवश्य हुआ है। हाल ही में शिक्षा विभाग द्वारा जारी आंकड़ों में दलित एवं आदिवासी बच्चों के नामांकनों में अप्रत्याशित वृद्धि बताई गयी है। दलित एवं आदिवासी बच्चों मे स्कूल ड्राप आउट की दर अधिक है क्योंकि पारिवारिक हित इसमें सबसे अहम रोल अदा करते हैं लेकिन राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे का अध्ययन कहता है कि जाति एवं आदिवासी होना अपने आप में उनकी शिक्षा को सीमित कर देता है। अन्य वर्गो की लड़कियों के मुकाबले में दलित एवं आदिवासी लड़कियों में ड्राप आउट दर ज्यादा है। इससे जाहिर होता है कि देश भर की लड़कियों पर लागू होने वाले कारणों के अलावा अन्य कारण हैं जो इस वर्ग की लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखते हैं। विशेष आदिवासी परियोजना के तहत खुलने वाले आदिवासी स्कूलों में पढ़ाई का माध्यम हिन्दी या प्रादेशिक भाषा होती है जोकि आदिवासी बच्चों की समझ से परे होती है। वैसे भी आदिवासी समाज में लड़कियां नृत्य एवं गीतों के माध्यम से जीवन के रहस्यों को ग्रहण करती है। अत: औपचारिक पढ़ाई उनके पल्ले नहीं पड़ती। उनके स्कूल छोड़ने का यह भी एक प्रमुख कारण है।

मुस्लिम लड़कियां

भारत में रहने वाली मुसलमान स्त्रियों का आकलन करती एक रिपोर्ट है 'वायस आफ द वायसलैस'। इसे सईदा सैयदेन हामिद ने राष्ट्रीय महिला आयोग के लिए तैयार किया है। आठ अध्यायों में बंटी इस रिपोर्ट के जरिए हम मुसलमान स्त्रियों की अवस्था को देख सकते हैं। 1999 में 'वूमैन एंड इस्लाम इन इंडिया' नाम से एक दस्तावेज तैयार किया गया था। इस पर बहस के बाद ही आयोग ने यह निर्णय लिया कि मुसलमान स्त्रियों की कहानी उन्हीं क जुबानी सुनी जाये। इसके लिए उन संस्थाओं की मदद ली गयी जो अल्पसंख्यकों के लिए काम करती हैं। भारत-भर के जिन शहरों में औरतों की सभाएं की गयीं वे थे- अलीगढ़, अहमदाबाद, इंदौर, जबलपुर, मुंबई, कोल्हापुर, हैदराबाद, बंगलूर, चेन्नई, कालीकट, तिरूवंनतपुरम, कलकत्ता और तेजपुर। इन सभाओं में नगर के बुद्धिजीवी, समाज-सेवक, छात्र-छात्राएं आए। इन औरतों की भाषा चाहे तमिल थी, उर्दू, बांग्ला, हिंदी या मलयाली लेकिन उनके कष्ट एक तरह के थे।

यह देखा गया कि विद्यालयों में सुधार की आवश्यकता है । कक्षा में अक्सर अध्यापक नहीं होते। इसलिए मजबूरी में उन्हें अपने बच्चों को काम पर भेजना पड़ता है।

अल्पसंख्यक समुदायों में मुस्लिम वर्ग में लड़कियों की शिक्षा की स्थिति शोचनीय है। 73 वें और 74 वें संविधान संशोधन के बाद प्राथमिक शिक्षा के प्रबंधन में विकेन्द्रीकरण के अंतर्गत जिला, उपजिला, नगर पालिका और पंचायत स्तर पर जनतांत्रिक ढंग से चुने गए निकायों को अन्य बातों के साथ साथ प्राथमिक शिक्षा का दायित्व भी सौंपा गया है। वैसे एक शोध अध्ययन (अजाजुद्दीन अहमद - मुस्लिम इन

इंडिया 1994-96) ने इस बात की ओर संकेत किया है कि मुस्लिम बालिकाओं में साक्षरता की दर अनुसूचित जाति की बालिकाओं से भी कम है। मुस्लिम समुदाय की बालिकाओं में निरक्षरता की ऊंची प्रतिशत के मुख्य कारणों में कम उम्र में विवाह, पर्दा प्रथा, महिला शिक्षिकाओं का अभाव एवं गरीबी गिनाए जा सकते हैं। उनके लिए अलग स्कूलों का न होना भी एक प्रमुख कारण माना जाता है।

4.6 महानगरों में लड़कियों की शिक्षा

देश में आंतरिक प्रवास की तेजी से बढ़ रहा है। गांवों में बुनियादी सुविधाओं के अभाव में लोग शहरों की ओर भाग रहे हैं। अनुमान था कि सन् 2015 तक देश की 42 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में निवास करने लगेगी। वैसे शहरों के मध्यम वर्ग में लड़कियों की शिक्षा की स्थिति बेहतर दिखायी देती है। लेकिन मुख्य चुनौती झुग्गी-झोपड़ी एवं पुनर्वास या स्लम बस्तियों में रहने वाली लड़कियों की शिक्षा की है। आज भी स्लम क्षेत्रों में लड़कियों को स्कूल नहीं भेजा जाता। उन्हें बहुत कम उम्र से ही घर में काम-काज में लगा दिया जाता है अत: या तो उनका स्कूल में दाखिला नहीं होता और यदि होता भी है तो उन्हें स्कूल जल्दी ही छोड़ना पड़ता है। घर के काम का उत्तर दायित्व महिलाओं पर होने के कारण लड़कियों को अपना स्कूल जाने का अवसर खोना पड़ता है। स्कूल जाने वाली लड़कियों की अपेक्षा स्कूल न जाने वाली लड़कियां अधिक काम करती है जैसे खाना पकाना, कपड़े धोना, छोटे भाई-बहनों की देखभाल करना आदि।

इसी तरह स्कूल न जाने वाली लड़कियों के कार्यों की सूची पर नजर डालने से यह ज्ञात होता है कि धीरे-धीरे उनके कार्यों में मजदूरी करना जुड़ता चला जाता है।

हालांकि आंकड़े देखकर हमें लगता है कि अधिकांश लड़कियों को अपनी पढ़ाई घरेलू कामों में अधिक व्यस्त होने के कारण छोड़नी पड़ी लेकिन इसके पीछे कुछ अन्य कारण भी विद्यमान है। जहां अनियमित मजदूरों, अल्पकालीन ठेकेदारों तथा सब्जी बेचने वाले अधिक संख्या में रहते हैं अत: पुरूषों के अनियमित रोजगार के कारण अधिकतर महिलाओं को आसपास की कालोनियों में नौकरानी का काम करना पड़ता है। ज्यादातर छोटी लड़कियों का काम में हाथ बंटाने के लिए अपनी मां के साथ जाना पड़ता है, जोकि स्कूलों में लड़कियों की अनुपस्थिति एवं स्कूल छोड़ने का सबसे बड़ा कारण है |इसके अतिरिक्त कई महिलाएं अपनी लड़कियों को घर पर घरेलू काम निपटाने के लिए छोड़ जाती हैं यह भी उनके स्कूल न जा पाने के कारणों में से एक है। घर के काम को निपटाने में कई बार बहूत देर होने पर वे देर रात को सोती हैं जिससे सुबह जल्दी स्कूल जाने में वे असमर्थ रहती हैं। स्कूल जाने में असमर्थ पूर्वी दिल्ली में रहने वाली एक लड़की पिंकी की समस्या भी कुछ इसी प्रकार की है। पिंकी 11 वर्षीय भाई विकी तथा मीनाक्षी (8) व उषा (6) की सबसे बड़ी बहन है। जब उसके छोटे भाई बहन स्कूल जाते हैं तो उसे घरेलू काम निपटाने के लिए घर पर ही रहना पड़ता है। पिंकी के पिता टेलिविजन ठीक करते हैं और २५०० रूपया महीना कमाते हैं पर घर के बढ़ते हुए खर्चो को देखते हुए उसकी मां ने दो साल से घरेलू नौकरानी का काम करना शुरू कर दिया और मां के घर से बाहर काम पर जाने से पिंकी के कंधों पर घर की नई जिम्मेदारियों आ गयी। घरेलू काम निपटाते-निपटाते पिंकी का अधिक समय लग जाता जिससे स्कूल में उसकी उपस्थिति तो कम हुई ही साथ ही स्कूल के कार्यो पर भी प्रभाव पड़ा आखिरकार

चौथी कक्षा में ही उसने स्कूल छोड़ दिया। इसी प्रकार शिक्षा विभाग के एक अध्ययन में पाया गया कि घरेलू उत्पादन में सर्वाधिक योगदान छोटी लड़कियों का होता है। वजीरपुर पत्थरवाला बाग की झुग्गी-झोपड़ी का उदाहरण देखए : वहां अधिकांश महिलाएं या तो नौकरानी का काम करती है या फिर लिफाफे बनाना या कढ़ाई करना आदि घरेलू उत्पादन के कार्य करती है। यहां स्कूल जाने वाली लड़कियों की संख्या अधिक है पर माता-पिता द्वारा उन्हें स्कूल भेजने की इच्छा रखते हुए भी स्कूल छोड़ना पड़ता है। स्कूल संबंधितअनेक व्यय जैसे किताबें, वर्दी का खर्च वाहन न कर पाने की स्थिति में उन्हें अपनी इच्छा के विरूद्ध अपनी बेटियों को स्कूल से निकालना पड़ता है। अत: माता-पिता की आर्थिक स्थिति ठीक ने होने के कारण भी स्कूलों में लड़कियों की संख्या कम पायी जाती है।

वर्तमान स्थिति यह है कि आज माता-पिता अपने बच्चों को अधिक से अधिक पढ़ाना चाहते हैं। राजीव गांधी झुग्गी-झोपड़ी कैम्प में रहने वाली एक 12 वर्षीय लड़की नसीम का उदाहरण देखिए, इस के पिता 10 वीं तक पढ़ा है और उसकी मां ने 12 वीं पास कर कालेज में प्रवेश भी लिया था परन्तु किन्ही कारणवश आगे नहीं पढ़ सकी। यह अपने सभी बच्चों को स्कूल भेजते हैं और सभी को उच्च शिक्षा दिलाने का सपना देखते हैं। नसीम छठी कक्षा में पढ़ती है और सदैव पेट दर्द की शिकायत करती है। उसकी मां ने बताया कि शायद यह समस्या कुपोषण के कारण है क्योंकि वे लोग अपने बच्चों को पौष्टिक आहार देने में असमर्थ हैं। नसीम गणित में कमजोर है और उसे ट्यूशन की आवश्यकता है किन्तु उसके माता-पिता उसे नहीं दिला सकते। इस तरह कुछ खास विषयों में कमजोर होना लड़कियों के स्कूल छोड़ने का कारण है, विशेषकर आठवीं कक्षा के स्तर पर। लड़कियों द्वारा स्कूल छोड़े जाने के कारणों में प्रमुख निम्न है:

- स्कूलों के दूर होने के कारण कई माता-पिता अपनी लड़कियों को स्कूल जाने की अनुमति नहीं देते। उन्हें डर लगता है कि कहीं घर से दूर जाने पर उनके साथ कोई दुर्घटना न हो जाए।
- कई बार अपने बच्चों का जन्म प्रमाण पत्र न होने के कारण माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल में प्रवेश दिलाने में असमर्थ रहते हैं।
- स्कूलों में शिक्षकों द्वारा बच्चों को दी जाने वाली सजांए एवं उनके साथ किया जाने वाला दुव्यवहार के कारण भी माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजने से कतराते हैं।

स्कूलों में शिक्षकों द्वारा लड़कियों के साथ किये जाने वाले दुव्यवहार की आंशका से माता-पिता अपनी लड़कियों को एक खास उम्र के बाद से स्कूल भेजने से कतराते हैं। वैसे गरीबों या साधनों का न होना लड़कियों को शिक्षा न दिलाने के पिदे मुख्य कारण बताया जाता है लेकिन यह 'गरीबी' सापेक्ष' है। यानी यह तर्क लड़कों के मामलों में नहीं दिये जाते और लड़कियों के लिए ही इन तर्को का सहारा लिया जाता है।

गरीबी , बार-बार परीक्षा के फेल होना, पढ़ाई में रूचि न होना या घरेलू कामों को प्राथमिकता देने के कारण प्राय: लड़कियां स्कूल में अनुपस्थिति रहती है और स्कूल के पाठ्यक्रम में पीछे रह जाता हैं परिणामस्वरूप उन्हें स्कूल छोड़ना पड़ता है। पहली से आठवीं कक्षा तक स्कूल छोड़ने वाले बच्चों में

बड़ी संख्या लड़कियों की होती है। भारतीय समाज में एतिहासिक तथा सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में नारी की परम्परागत स्थिति को पहचाने बिना कोई भी लिंग पृथक्करण के तथ्य को नहीं समझ सकता। भारतीय समाज में एक बालिका का विकास इस धारणा के साथ होता है वह अपने पिता के घर की 'अस्थायी सदस्या' है। यह भी सत्य है कि भारत के लगभग सभी राज्यों में लड़कियों की स्थिति समस्याओं से ग्रसित है और आज यही स्थिति मानव संसाधन विकास में एक मूलभूत प्रश्न बनकर अभरी है।

4.7 लिंग विषमताएं तथा रूढ़िबद्ध धारणाएं

भारतीय समाज में लड़कियों के प्रति भेदभाव तथा लिंग असमानता धर्मवलंबी लोकाचार और पारम्परिक लिंग संबंधी रूढ़िबद्ध धारणाओं से जुड़ी हुई है : प्राचीन भारत में स्त्री-पुरूष की भुमिकाएं समान नही थी। यही कारण था कि लड़कियों में आत्म-सम्मान की कमी थी और जीवन के हर क्षेत्र में उनके सथ असमानता का व्यवहार होता था। लड़की के जन्म होने पर उसे परिवार का दुर्भाग्य समझा जाता था।

भारतीय समाज में लड़के व लड़की के प्रति विशेषाधिकार तथा कार्य प्रारूप के संबंध में भिन्न-भिन्न धारणाएं विद्यमान है जो सदियों से चली आ रही है। लड़कों को प्राय: पुरूषोचित स्वभाव विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता, जैसे-आक्रमण, प्रभुत्व, स्वतंत्रता, साहसिक कार्यो का बोध और जाता, जैसे-आक्रमण, प्रभुत्व, स्वतंत्रता, साहसिक कार्यों का बोध और लक्ष्य-प्राप्ति। इसके विपरित लड़कियों में स्त्रियोचित विशेषताओं को विकसित करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता था, जैसे-विनम्रता, पालन-पोषण करना, निर्भरता तथा लक्ष्य-विहीनता। इस प्रकार से लड़के व लड़कियों के कार्यो के संबंधित भिन्न-भिन्न धारणाएं हैं और यह आशा की जाती है कि वे यथोचित व्यवहार करें। इसका सामाजिकरण की प्रक्रिया पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है जो बचपन से किशोरावस्था तक और प्रौढता तक सीधा फैल जाता है। अत: लिंग संबंधी पूर्व धारणाएं ही सबसे बड़ा कारण है जिससे बच्चों विशेषकर लड़कियों के साथ समाज में भेदभाव किया जाता है।

मध्यमवर्गीय भारतीय परिवारों में यह अन्तर बच्चों में घरेलू जिम्मेदारी बांटने, आर्थिक संसाधनों के वितरण तथा भविष्यकालीन योजनाओं के रूप् में दुष्टिगत होता है। घरेलू कार्यक्षेत्र महिलाओं व स्त्रियों का होता है। बहुत ही कम परिवार ऐसे हैं जिनमें लड़कों से भी घर के काम में सहयोग देने के लिए कहा जाता होगा। मध्यमवर्गीय परिवार में लड़कों से बाजार से सामान लाने, दवा लाने संबंधी कार्य करने के लिए कहे जाते है। और जिन लड़कों की रूचि खाना पकाने, कढ़ाई, बनुाई आदि में होती है उनका मजाक बनाया जाता है।

लड़कियां अनुभव करती है कि पिता के घर तथा सुसराल दोनों ही जगह उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। दहेज के लिए अथवा सिर्फ लड़की की मां होने के कारण उनके साथ दुव्यवहार किया जाता है। पोषण तथा आहार के मामलों में उनकी अवहेलना की जाती है। उनका दमन किया जाता है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद द्वारा किये गये 1989 में पांचवें अखिल भारतीय शिक्षा सर्वेक्षण ने यह रिपोर्ट दी कि भारतीय समाज में शिक्षा के व्यापक प्रसारण के लाभ अभी तक लड़कियों तक नहीं पहुंचे

है। यद्यपि पिछले 50 वर्षों में शिक्षण सुविधाओं का हर स्तर पर विकास हुआ है। सरकार के भरसक प्रयासों के बावजूद सीमित संख्या में ही लड़कियां स्कूली शिक्षा विशेषकर माध्यमिक या उच्च प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर पाती है। सैद्धान्तिक रूप से लड़कियों को भी समान शिक्षा का अधिकार है पर यह सच्चाई से बहुत दूर है।

शिक्षा के लिए अधिक महत्व लड़कों को दिया जाता है लड़कियों को नहीं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 5-8 वर्ष की आयु के लगभग 80 प्रतिशत बच्चों स्कूल में दर्ज हैं शेष 20 प्रतिशत बच्चे निम्न सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के कारण कभी स्कूल नहीं गये। अनुसूचित जाति-जनजाति के बच्चों का औसत नामांकन बहुत कम है जबकि लड़कियों को स्कूल जाने के साथ-साथ घर की जिम्मेदारीयां भी निभानी पड़ती है अत: उन्हें अपना स्कूल का गृह कार्य करने का समय नहीं मिला और सामान्यत: अनुपस्थित रहती है। लड़कियों द्वारा प्राथमिकता घरेलू कार्य को दी जाती है जबकि लड़कों द्वारा शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है। लड़कियों को पुरस्कृत तब किया जाता है जब वे घर का काम ज्यादा करती है या छोटे भाई बहनों को अच्छी तरह संभालती हैं जबकि लड़कों को उनके स्कूल की परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने पर पुरस्कृत किया जाता है।

बदलता नजरिया

भारतीय समाज में लड़की के जन्म को दुर्भाग्यपूर्ण माना जाता है किन्तु शिक्षित परिवारों में और अन्य वर्ग की विचारधारा में अब निश्चित रूप से परिवर्तन आया है। कुछ समाज शास्त्रियों का मानना है कि यह परिवर्तन शिक्षित शहरी मध्यमवर्गीय महिलाओं में आई जागृति का परिणाम है। वे नहीं चाहती कि उनकी बेटियां भी दमन का जीवन व्यतीत करें। यह भी प्रकाश में आया है कि हाल के वर्षो में दिल्ली एवं मुंबई के शिक्षित वर्ग की महिलाओं में भ्रूण जांच परीक्षण के विषय में प्रतिकुल विचार उत्पन्न हुए है। इस विषय में राष्ट्र संघ की कुछ एजेंसियां युनिसेफ एवं युनिफेम के योगदान को हमेशा याद रखा जायेगा।

विज्ञान ने यह प्रामाणित कर दिया है कि प्रतिभा एवं मानसिक योग्यताओं के संबंधमें स्त्री और पुरूष दोनों समान है। कई क्षेत्रों में तो लड़कियों ने लड़कों से बेहतर प्रदर्शन किया है और उन क्षेत्रों में अपना नाम विख्यात किया है जो पहले पुरूष प्रधान क्षेत्र माने जाते थे। आज लड़कियों को पसन्द किया जाता है क्योंकि वे अपने माता-पिता से भावनात्मक स्तर पर निकटता निरन्तर बनाए रखती है।

लिंग के आधार पर असमानता को कम करने के लिए भरसक प्रयास किये गए हैं। शिक्षा में लड़कियों की भागीदारी के परिणामस्वरूप् ही यह सुधार संभव हुआ है। इसी तरह स्कूलों में लड़कियों की भर्ती में भी इजाफा हुआ है। इसी तरह स्कूलों में लड़कियों की भर्ती में भी इजाफा हुआ है। उच्च शिक्षा में लड़कियों को अधिक पंजीकरण लड़कियों की शिक्षा में सुधार का प्रतीक है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी स्थिति सुधरती नजर आ रही है। अत: कहा जा सकता है कि भारत में शनै-शनै लड़कियों के प्रति नजरियां बदल रहा है। लड़कियों का सामाजिकरण पारम्परिक मान्यताओं, सामाजिक मानक एवं मूल्यों तथा परिवार एवं वैवाहिक संस्थानों से प्रभावित होता है अत: परम्परागत मान्यताओं को तोडते हुए हर वर्ग के लोगों के बीच नये सामाजिक प्रतिमान स्थापित करने होंगे।

इसके अतिरिक्त परम्परागत विचारधाराओं और प्राथाओ में सुधार करना होगा। सामाजिक परिवर्तन के लिए मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन अत्यन्त अनिवार्य है। लड़कियों के साथ लिंग के आधार पर असमानता तथा भेदभाव को दूर करने के लिए समान विकास तथा कानूनी नीतियों को अपनाना होगा।

बालिकाओं की कम भागीदारी एवं विद्यालय छोड़ने की ऊँची दर के कारण

बालिकाओं के नामांकन व ठहराव को बढ़ाने हेतु किये गए अनेक प्रयासों के बावजूद शैक्षिक संस्थाओं में बालिकाओं के नामांकन की स्थिति पुरुषों के मुकाबले कम है। विद्यालय छोड़ने की दर बालिकाओं में बालकों के मुकाबले सार्थक रूप से अधिक है। ऐसे बहुत सारे कारक हैं जो कि बालिकाओं के नामांकन व ठहराव को प्रभावित करते हैं। इन कारकों को तीन विस्तृत क्षेत्रों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है -

(1) पारिवारिक सामाजिक कारक।

(2) शैक्षणिक सुलभता तथा इसको प्रदान करने वाली व्यवस्थाओं में कमी।

(3) शिक्षा की विषयवस्तु का महिलाओं की आवश्यकता के अनुरूप नहीं होना।

सर्वप्रथम ये कारक क्या हैं ? इसका अध्ययन हम करेंगे -

1) पारिवारिक एवं सामाजिक कारक-

इसके अन्तर्गत चार प्रमुख कारण है जो बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करते हैं –

(अ) पारिवारिक परम्पराएँ एवं कम उम्र में शादी

(आ) पर्दा प्रथा

(इ) सामाजिक एवं पारिवारिक अपेक्षाएँ

(ई) शिक्षा का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष उच्च व्यय

2) शैक्षणिक सुलभता तथा इसको प्रदान करने वाली व्यवस्थाओं में ।कमी -

(अ) घर से विद्यालयों की अधिक दूरी

(आ) विद्यालयी समय सारणी में लचीलेपन का अभाव

(इ) महिला अध्यापिकाओं की कमी।

(ई) बालिका विद्यालयों की अनुपस्थिति।

3) शिक्षा की विषयवस्तु का बालिकाओं की आवश्यकता के अनुरूप नहीं होना -

(अ) अव्यावहारिक शिक्षण विधियाँ

(आ) पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों में बालिकाओं की उपेक्षा।

(1) पारिवारिक एवं सामाजिक कारक - सर्वप्रथम हम बालिका शिक्षा को प्रभावित करने वाले मुख्य पारिवारिक एवं सामाजिक कारकों का अध्ययन करेंगे।

(अ) पारिवारिक परम्परायें एवं कम उम्र में शादी - बालिका चाहे किसी भी सामाजिक - आर्थिक परिस्थिति की हो उसकी शिक्षा विचारों और धारणाओं से प्रभावित होती है।मध्यकाल से ही महिलाओं को घरेलू अर्थात् घर की देखभाल करने की जिम्मेदार माने जाने की परम्परा भारतीय समाज में रही है। अधिकतर भारतीय परिवारों में महिलाओं के लिए घरेलू कामकाज, परिवार की देखभाल, बच्चों की देखभाल आदि को ही परम्परागत माना जाता है। इन्हें स्त्रियोचित या महिलाओं के लिए पुश्तैनी कार्य माना जाता है। दूसरों की देखभाल करने के अलावा स्वयं हेतु किए जाने वाले कार्यों या घर के बाहर के कार्यों का स्त्रियों के लिए उचित नहीं माना जाता है। बालिकाओं को घर से बाहर पढने के लिए भेजना घर के कार्यों में बाधा माना जाता है। इस प्रकार ये परम्परागत कार्य वितरण बालिकाओं की शिक्षा में एक प्रमुख बाधा का कार्य करता है।

इसी प्रकार देश के विभिन्न हिस्सों में बालिकाओं की कम आयु मे शादी करने की प्रथा पाई जाती है। वर्ष 1930 तक बालिकाओं के लिए शादी की वैधानिक आयु केवल 14 वर्ष थी जिसे वर्ष 1950 में बढ़ाकर 18 वर्ष किया गया। लेकिन कानूनी व्यवस्था के बावजूद वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार तात्कालिक शादीशुदा महिलाओं में से लगभग 53 प्रतिशत 18 वर्ष से कम आयु की थीं और राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्व वर्ष 1993-94 के अनुसार लगभग 33 प्रतिशत शादीशुदा महिलाओं की उम्र 15 वर्ष थी। राजस्थान में " आखातीज त्योहार" पर हर साल लगभग 50,000 से ज्यादा बच्चों की शादी कम उम्र में कर दी जाती है। उत्तरी भारत के राजस्थान, बिहार, उत्तर प्रदेश के साथ-साथ दक्षिण भारत के राज्यों कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश आदि में कम उम्र में शादी आम बात है।

कम उम्र में शादी के कारण बालिका पर अनेक पारिवारिक एवं सामाजिक बन्धन लागू कर दिये जाते हैं, जो उसकी शिक्षा में सर्वाधिक बाधक हो जाते हैं।

(आ) पर्दा प्रथा तथा सामाजिक रिवाज - कुछ कम कुछ ज्यादा लगभग पूरे भारत में बालिकाओं के यौवनारंभ (Onset of Puberty) से ही चाहे विवाहित हो या नहीं पर्दे में अथवा लड़कों से अलग रखने की प्रथा पाई जाती है। सर्वप्रथम बालिका को घर में ही माहवारी के दौरान निर्जन स्थान पर या अन्य गतिविधियों से अलग रखना प्रारम्भ हो जाता है। बालिका एवं महिलाओं के यौन विषय को परिवार की इज्जत के साथ देखा जाता है। जो कि उनकी बाह्य गतिविधियों को सीमित कर देता है। इस प्रकार के रिवाज बालिकाओं को विद्यालय अथवा महाविद्यालय से दूर रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। कम उम्र में शादी के बाद भी ससुराल में पर्दा आवश्यक माना जाता है, जो कि विद्यालय जाने में महिलाओं में ऋणात्मक भाव उत्पन्न करता है।

(इ) सामाजिक एवं पारिवारिक अपेक्षाएँ - 19वीं शताब्दी से सम्पूर्ण विश्व में महिलाओं की शिक्षा दीक्षा क्या होनी चाहिए, क्या यह लड़कों के समान होनी चाहिए? इस पर निरन्तर बहस चल रही है। आजादी के पश्चात् लगभग सभी समितियों एवं आयोगों ने लड़कों के समान ही लड़कियों की शिक्षा की वकालत की है। लेकिन वास्तविक हालात इनसे कुछ भिन्न हैं। थोड़ी

सी उन लड़कियों को छोडकर जिनको अपने विषय या कार्य क्षेत्र चुनने की स्वतंत्रता है। उनके अलावा अधिकतर बालिकाओं को कार्यक्षेत्र या विषय चुनने के बाध्य होना पड़ता है। क्योंकि वह क्षेत्र या विषय उसके सामाजिक तथा पारिवारिक भूमिकाओं के लिए उपयुक्त है। कला विषय के प्रति महिलाओं का रुझान स्पष्ट दिखाई देता है। व्यावसायिक विषयों में मुख्यत: शिक्षण तथा नर्सिंग जैसे विषय ही महिलाओं को आकर्षित करते हैं। विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में बालिकाओं का आकर्षण कम दिखाई देता है। पिछले एक दशक मे, इन रुझानों में कुछ बदलाव दिखाई दे रहे हैं। इलेक्ट्रोनिक्स तथा साफ्टवेयर जैसे तकनीकी क्षेत्रो में बालिकाओं का रुझान बढ़ा है। लेकिन अभी भी सामाजिक एवं पारिवारिक अपेक्षाओं के बोझ तले बालिकाओं एवं महिलाओं को परम्परागत महिलान्मुख पाठ्यक्रम अधिक आकर्षित करते हैं। विषय चयन की इस भूमिका में निवेश के पारिवारिक स्रोत भी भूमिका अदा करते हैं। मध्यमवर्गीय परिवार बालिकाओं के वजाय बालकों की तकनीकी शिक्षा हेतु निवेश करने में प्राथमिकता देता है, चाहे दोनों की अभिवृत्ति समान क्यों नहीं हो। विद्यालय छोड़ते समय के परिणाम की अपेक्षा बहुत सारे अन्य अशैक्षणिक कारक एवं परिस्थितियाँ बालिकाओं को विज्ञान तथा तकनीकी उच्च शिक्षा से अलग रखने में अपनी भूमिका अदा करते हैं। ये अशैक्षणिक कारक मुख्यत: बालिका के जीवन की भूमिका हेतु पारिवारिक एवं सामाजिक अपेक्षाओं से ही सम्बन्धित होते हैं। अधिकतर यह पाया गया है कि बालिकाओं को एक अच्छी पत्नी एवं एक समर्पित माता की भूमिका में ही होना चाहिए और उसके पास यदि समय है तो वह शिक्षक या क्लर्क का कार्य कर सकती हैं। यही सोच बालिकाओं की उच्च शिक्षा में बाधा का कारण है।

(ई) शिक्षा में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष उच्च व्यय - अनेक शोध यह दर्शाते हैं कि शिक्षा के प्रति अरुचि तथा गरीबी दो प्रमुख कारण है जो बालिकाओं को शिक्षा से दूर रखने का कार्य करते हैं। अधिकतर गरीब परिवारों में बालिकायें घर का कार्य देखती है, छोटे बच्चो का ख्याल रखती हैं, पशुओं को चराने के कार्य करती हैं, खेतों में छोटे- मोटे कार्यो मैं सहयोग देती है। इससे परिवार को प्रत्यक्ष रूप से आय तो नही होती है, किन्तु गरीब परिवारों मे जहाँ माता एव पिता दोनो श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं वही ये कार्य भी महत्वपूर्ण होते हैं। इन कार्यों को पूरा करवाने का लालच ही बालिकाओं को विद्यालय जाने से रोकता है। दूसरी ओर विद्यालय मे, शिक्षा प्राप्त करने के याद किसी प्रकार के कोई रोजगार की आशा नही होती है।

इसी प्रकार दहेज जैसी कुप्रथाओं के कारण सक्षम मध्यवर्गीय परिवारो के मातापिता भी बालिकाओं के शिक्षा मे निवेश करने के बजाय विवाह में दहेज आदि के रूप मैं खर्च करना उपयुक्त समझते हैं। बालिकाओं को शिक्षित करने पर माता-पिता को एक तो उसके समान पढा लिखा वर ढूँढ़ने की जिम्मेदारी आ जाती है। दूसरी ओर उनको प्रत्यक्ष आय प्राप्त नहीं होती। भारत के लगभग सभी समाजों मे यह प्रथा है कि लड़की की आय को उसके ससुराल के परिवार का माना जाता है। उससे किसी प्रकार का पैसा लेना माता-पिता अपनी इज्जत के विरूद्ध समझते हैं। इसके वजाय लड़की की शादी मे दहेज में धन देने (जो उनके सामाजिक एव आर्थिक प्रतिष्ठा का सूचक माना जाता है) को अधिक महत्त्व देते हैं। इस प्रकार के पारिवारिक

सामाजिक दायरो मे बालिका की शिक्षा के खर्च को व्यर्थ माना जाता है। लेकिन पिछले एक दशक में उच्च मध्यमवर्गीय परिवारों में इस प्रवृत्ति में बदलाव आया है। बालिकाओं को रोजगार के अवसर मिलने एव उनकी नियमित आय होने के कारण शिक्षित बालिका को समाज तथा परिवार में अच्छी दृष्टि से देखा जाने लगा है।

(2) शैक्षिक सुलभता तथा इसको प्रदान करने व्यवस्थाओं में कमी - सामाजिक एवं पारिवारिक कारको के अलावा भी अनेक कारण हैं जो कि बालिका शिक्षा को प्रभावित करते हैं, इसमें महत्त्वपूर्ण बालिकाओं के लिए शैक्षिक सुविधाओं की उपलब्धता है।

(अ) घर से विद्यालयों की दूरी - पारिवारिक पद सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण एक निश्चित आयु के बाद बालिकाओं का घर से दूर विद्यालय में जाना सम्भव नहीं हो पाता है। इस कारण से अनेक बालिकायें विद्यालय बीच में ही छोड़ देती है। छठे अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण (वर्ष1992) के अनुसार लगभग 7 प्रतिशत आबादी क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालय एक किलोमीटर से दूर था और लगभग 3 प्रतिशत आबादी क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालय 2 किमी से दूर था। इस प्रकार एक ओर छोटी आयु की बालिकाओं का दूर विद्यालय भेजने में बाधाएँ है तथा दूसरी ओर बड़ी आयु की बालिकाओं का सामाजिक कारणों से दूर विद्यालय भेजने में बाधाएँ हैं।

(आ) विद्यालय समय सारणी का कम लचीला होना - विद्यालय की वार्षिक एवं दैनिक समय सारणी का बालिकाओं के घरेलू कार्य के ढाँचे एवं मौसम की परिस्थितियों के अनुकूल न होना भी एक महत्वपूर्ण कारण है जो विद्यालयों में बालिकाओं के नामांकन को प्रभावित करता है। बालिकाओं की आवश्यकताओं के अनुरूप विद्यालय समय सारणी को लचीला बनाये जाने की आवश्यकता है।

(इ) महिला अध्यापिकाओं की कमी - पूर्व में उल्लेखित शिक्षण बिन्दुओं से स्पष्ट है कि अनेक सामाजिक एवं पारिवारिक रीति-रिवाज बालिका के विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने में बाधा उत्पन्न करते हैं, ऐसे में विद्यालयों में कम महिला शिक्षकों की उपस्थिति बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने में नकारात्मक प्रभाव डालती है। अनेक सामाजिक एवं धार्मिक वर्गो खासकर अल्पसंख्यक एवं पिछड़े वर्गो में पुरुष शिक्षकों से शिक्षा दिलवाने में नकारात्मक अभिवृत्ति दिखाई पड़ती है।

वर्ष 1991 तक प्राथमिक विद्यालयों में लगभग 29 प्रतिशत तथा उच्च प्राथमिक विद्यालयों में लगभग 33 प्रतिशत तथा सैकण्डरी विद्यालयों में लगभग 32 प्रतिशत महिला अध्यापिकाएँ मौजूद थीं। वर्ष 2001 में महिला अध्यापिकाओं की संख्या में वृद्धि हुई जिनकी संख्या प्राथमिक विद्यालयों में 35 प्रतिशत तथा उच्च प्राथमिक विद्यालयों में 38 प्रतिशत हो गई है। माध्यमिक विद्यालयों में वर्ष 2001 में भी वही स्थिति है। इस प्रकार अधिक महिला अध्यापिकाओं को उपलब्ध करवाये जाने की आवश्यकता बनी हुई है। (वार्षिक प्रतिवेदन 2002-03; एम.एच.आर.डी, नई दिल्ली)

(ई) बालिका विद्यालयों की अनुपस्थिति - भारत में अनेक धार्मिक, सामाजिक एवं अल्प संख्यक वर्ग ऐसे हैं जो बालिकाओं को बालक के साथ सह शिक्षा प्रदान करवाने को स्वीकार नहीं करते हैं। ऐसी स्थिति में अलग बालिका विद्यालय की आवश्यकता महसूस की जाती है लेकिन ऐसे विद्यालयों की संख्या मात्र 10 से 15 प्रतिशत है।

उपर्युक्त मुख्य कारकों के अलावा अन्य कारक जैसे- भौतिक संरचना एवं उपकरणों की अपर्याप्तता, प्रेरित करने वाले योजनाओं की अपर्याप्तता तथा छोटे बच्चों की देखभाल की सुविधा का अभाव आदि भी बालिका शिक्षा को प्रभावित करते हैं।

(3) शिक्षा की विषयवस्तु का बालिकाओं की आवश्यकता के अनुरूप नहीं होना - शिक्षा की विषयवस्तु का बालिकाओं की आवश्यकता के अनुरूप न होना भी एक मुख्य कारण है जो कि बालिका शिक्षा को प्रभावित करता है।

(अ) अव्यावहारिक शिक्षण विधियाँ -विद्यालयों का आधार अनेक नियम एवं कानून जो नामांकन, उम्र परीक्षा में उत्तीर्णता, निश्चित पाठ्यपुस्तकों से पढ़ाई, समय सारिणी, पुरस्कार, दण्ड आदि से सम्बन्धित होते हैं। ये नियम, कानून पाठ्यपुस्तकें, पाठ्यक्रम आदि किसी एक तरीके को लागू कर लिखे गये होते हैं। प्रत्येक परिस्थिति में इनका प्रभावी होना आवश्यक नहीं है खासकर ग्रामीण, आदिवासी, परिस्थितियों तथा महिलाओं के लिए एक भिन्न प्रकार के संदर्भ की आवश्यकता महसूस की जाती है। इस संदर्भ के अभाव में अनेक नामांकित बालिकाएँ विद्यालय के वातावरण में अपने आप को समायोजित नहीं कर पाती हैं जो उनके विद्यालय छोड़ने का कारण बनती हैं।

(आ) पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में बालिकाओं की उपेक्षा - ऐसा पाया जाता है कि व्यक्ति व्यवहार में धर्म, वर्ग, जाति आदि चरों के साथ-साथ लिंग भी पूर्वाग्रह उत्पन्न करता है। एक शिक्षक भी उससे अछूता नहीं रह सकता। इसी प्रकार पाठ्यपुस्तकों तथा पाठ्यक्रम में भी पुरुष वर्चस्व वाले समाज का असर दिखाई देता है।

पाठ्यपुस्तकों एवं पाठ्यक्रम का बालिकाओं की आवश्यकताओं के अनुरूप न होने के कारण बालिकाओं का अरुचिपूर्ण लगता है जो कि शिक्षा के प्रति उनकी अभिवृत्ति को प्रभावित करता है।

4.8 सामाजिक-सांस्कृतिक कारक तथा उनका बालिका शिक्षा पर प्रभाव

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, प्रत्येक क्षेत्र, समुदाय के सामाजिक- सांस्कृतिक मूल्य, परम्पराएँ उसके नागरिकों के जीवन को अवश्य प्रभावित करती हैं।

(अ) ग्रामीण परिवेश के संदर्भ में - भारत की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है। ग्रामीण सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का प्रभाव बालिकाओं की शिक्षा को प्रभावित करता है। भारत के अधिकतर ग्रामीण इलाकों में अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराएँ विद्यमान हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं के लिंग आधारित कार्यो का विभाजन होता है। ग्रामीण इलाकों में सामाजिक अधिकतर लगभग प्रत्येक समाज लड़के एवं लड़कियों के रहन- सहन, लालन-पालन एवं अन्य मानकों यहाँ तक की खान-पान में भी अन्तर करता है। भारत में ग्रामीण इलाकों में सामाजिक ढाँचा लगभग पूरी तरह से पुरुष केन्द्रित पाया जाता है। महिलाओं को एक तरह से पुरुष एवं परिवार की सहायक रूप में द्वितीय नागरिक के रूप में मान्यता पाई जाती है।

महिलायें अपने निर्णय स्वयं नहीं ले पाती है। वित्त एवं अन्य कानूनी अधिकार भी पुरुषों के हाथ में होते हैं। प्रारम्भ में नैतिक एवं सांस्कृतिक रूप से महिला को पुरुष की अर्द्धांगिनी के रूप में बराबर का दर्जा दिया जाता था। लेकिन मध्य काल एवं उसके पश्चात् इस प्रकार की परम्परायें विकृत होती गई। इस समय भारत में ग्रामीण इलाकों में महिलाओं की स्थिति सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती है। चाहे कोई सामाजिक-आर्थिक अथवा जाति वर्ग का हो, सभी में कमोबेश यही स्थिति पाई जाती है !

इस प्रकार का सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण ही ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा बालिकाओं के पिछड़ेपन के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी कहा जा सकता है।

(ब) शहरी परिवेश के संदर्भ में - भारत की लगभग 20 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में निवास करती है और शहरों की जनसंख्या का प्रतिशत निरन्तर बढ़ रहा है। अधिकतर शहरी जनता किसी न किसी ग्रामीण परिवेश से जुड़ी है लेकिन शहरी जनसंख्या के मध्य शनै: शनै: सामाजिक सांस्कृतिक बदलाव दिखाई दे रहे हैं। खान-पान, रहन-सहन, आदि में पश्चिम के अन्धानुकरण के कारण निरन्तर बदलाव आ रहे हैं। साथ ही शहरों में अलग-अलग ग्रामीण इलाकों से आए लोगों में सम्मिलित संस्कृति दिखाई देती है। शहरों में सामाजिक-आर्थिक स्तर में सुधार के परिणामस्वरूप सामाजिक बन्धनों एवं मूल्यों की जकड़न से निकलने की छटपटाहट भी दिखाई देती है।

इसके साथ ही शहरों में उपलब्ध शिक्षा की सुविधाएँ भी शहरी क्षेत्र की महिलाओं को आकर्षित करती हैं। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् जब महिलाओं में सक्षमता का विकास होता है तब एक दूसरे प्रकार के सामाजिक- सांस्कृतिक बदलाव को देखा जाता है। परिणामस्वरूप शहरों में विभिन्न कार्य क्षेत्रों में महिलायें, पुरुषों के समान ही भाग लेने लगी हैं। शहरी क्षेत्रों में पर्दा-प्रथा जैसी बुराइयाँ ग्रामीण इलाकों के मुकाबले कम पाई जाती हैं। पहनावा तथा घर से बाहर निकलने में भी महिलाओं को अधिक छूट स्वीकार की जाने लगी है। लेकिन इन सबके बावजूद शहरों में पश्चिमी संस्कृति के अन्धानुकरण के फलस्वरूप आई अनेक बुराइयों के कारण बालिकाओं को परेशानी का सामना करना पड़ता है। शहरी क्षेत्र में आए सामाजिक एवं सांस्कृतिक बदलाव के प्रभाव स्वरूप बालिका की शिक्षा की स्थिति ग्रामीण क्षेत्र से ज्यादा अच्छी कहीं जा सकती है।

(स) पिछड़े वर्ग के संदर्भ में - भारत में मुख्यत: दो प्रकार के पिछड़े वर्ग मौजूद हैं जो सामाजिक, आर्थिक व अन्य कारणों से अन्य वर्गों के मुकाबले पिछड़े हुए माने जाते हैं। ये है- (1) जातिगत तथा धार्मिक वर्ग (2) भौगोलिक कारणों से पिछड़े वर्ग। इन्हें भारत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक आदि के रूप में जाना जाता है।

अनुसूचित जाति के अन्तर्गत वे वर्ग है जो वर्षो से भारत की जाति आधारित सामाजिक प्रणाली के अन्तर्गत निम्न जाति वर्ग के कहे जाते रहे हैं। इनमें से अधिकतर सफाई आदि कार्यो में लगे हरिजन, चमड़े के कार्यो को करने वाले चमार, भूमि हीन मजदूर आदि जातियाँ जो भारत में अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग नामों से प्रचलित हैं, आती हैं। ये जातियाँ वर्षो से सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई रही हैं। इन जातियों के पिछड़ेपन का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि वर्ष

1981 में अनुसूचित जाति की मात्र 11 प्रतिशत महिलाएँ साक्षर थीं। सामाजिक तथा आर्थिक रूप से पिछड़े होने के कारण अनेक सामाजिक बुराईयाँ इन वर्गो में विद्यमान रही हैं । पुरुष केन्द्रित पारिवारिक व्यवस्था, छुआछूत पर्दा प्रथा एवं गरीबी के फलस्वरूप अनुसूचित जातियों की बालिकायें विद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाती हैं । इन वर्गो में पुरुषों के साथ महिलायें भी परम्परागत रोजगार में हाथ बँटाती हैं, इस कारण से छोटी बालिकाओं पर घर की जिम्मेदारी, छोटे बच्चों की देखभाल आदि आ जाती है । जिससे वे विद्यालय नहीं जा पाती हैं । कम उम्र में विवाह भी अनुसूचित जाति की बालिकाओं के कम शिक्षित होने का कारण है । अनेक सरकारी प्रयासों एवं आरक्षण जैसी व्यवस्थाओं के बावजूद अनुसूचित जाति की महिलाओं की शैक्षिक स्थिति में कोई महत्वपूर्ण बदलाव नहीं दिखाई दे रहा है । वर्ष 1991 में अनुसूचित जाति की मात्र 23 प्रतिशत महिलायें साक्षर थी ।

अनुसूचित जनजाति के अन्तर्गत भारत के सुदूर एवं पहाड़ी प्रदेशों में स्थित आदिवासी एवं आधुनिकता से दूर, प्रकृति पर निर्भर, वनों में रहने वाले वर्गो को रखा जाता है । अधिकतर जनजाति वर्गो में पुरुष एवं महिलायें समान रूप से अपने पारम्परिक कार्यो में संलग्न रहते हैं । इनकी आजीविका मुख्यत: पहाड़ों एवं वनों की प्राकृतिक सम्पदा से जुड़ी होती है । इनकी दिनचर्या मौसम के अनुकूल एवं जटिल परिस्थितियों में कड़ी मेहनत वाली होती है । जिनमें महिलाओं की भागीदारी होती है । पारम्परिक कार्यो में संलग्न रहने के कारण औपचारिक शिक्षा में रुचि नहीं लेते हैं । सुदूर जंगली एवं पहाड़ी इलाकों में बसावट होने के कारण विद्यालय एवं शिक्षकों की व्यवस्था करना भी मुश्किल कार्य है । इस कारण अनुसूचित जनजाति की महिलाएं शिक्षा के क्षेत्र में सर्वाधिक पिछड़ी हुई कही जा सकती हैं । वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजाति की महिलाओं में साक्षरता का प्रतिशत मात्र 8 था जो वर्ष 1991 में बढ़कर लगभग 18 प्रतिशत हुआ है । इस प्रकार अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर उनकी शिक्षा के अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है ।

अल्पसंख्यक वर्गो के अन्तर्गत धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक वर्ग लिए जाते हैं । इनमें ईसाई, पारसी, जैन मुस्लिम वर्ग प्रमुख है । इन अल्पसंख्यक वर्गो में सबसे बड़ा भाग मुस्लिम वर्ग का है तथा मुस्लिम अल्पसंख्यक वर्ग ही भारत में शैक्षिक रूप से अधिक पिछड़ा माना जाता है मुस्लिम महिलाओं के शैक्षिक रूप से पिछड़े होने का मुख्य कारण उनके धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाज हैं । अधिकतर परिवारों से महिलाओं का सामाजिक जीवन अनेक सामाजिक एवं परम्परागत बन्धनों से बन्धा होता है । बालिकाओं को बालकों के विद्यालय में नहीं भेजा जाता है । यौवनारम्भ से ही बालिकाओं को बुरका पहनना अनिवार्य होता है । पुरुष अध्यापकों से शिक्षा ग्रहण करने में संकोच किया जाता है । यह देखने में आया है कि परिवार नियोजन को मुस्लिम समुदाय में ठीक नहीं माना जाता है, जिससे महिलाओं पर बहुत सारे बच्चों के लालन-पालन की जिम्मेदारी आ जाती है । जो उन्हें शिक्षा एवं रोजगार आदि से वंचित करने में मुख्य भूमिका अदा करता है । बड़ी बालिकाओं को भी बच्चों की देखरेख में लगा दिया जाता है । जिससे वे विद्यालय छोड़ने को मजबूर हो जाती हैं । मुस्लिम समाज में महिलाओं के घर से बाहर रोजगार आदि में हिस्सा लेने को भी ठीक नहीं समझा जाता है । अधिकतर मुस्लिम महिलायें घर का कामकाज ही देखती है, इससे शिक्षा ग्रहण करने में उनकी रुचि कम पाई जाती है । सर्व शिक्षा अभियान के तहत इनकी शिक्षा हेतु विशेष प्रयास किये जा रहे हैं ।

किसी भी समाज का सर्वांगीण विकास तभी संभव होगा, जब उसमें महिलाओं की भागीदारी बराबर की हो। भारतीय समाज में महिलाओं की लगभग आधी आबादी है। देश की आधी आबादी को विकास की प्रक्रिया में भागीदार बनाये बगैर हम देश की समृद्धि, सुदृढ़ सामाजिक संरचना एवं सर्वांगीण विकास की परिकल्पना कैसे कर सकते हैं? यह एक विचारणीय प्रश्न है।

देश व समाज की सामाजिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों का स्त्री-शिक्षा पर प्रभाव पड़ा है जिन्हें अध्ययन करने की दृष्टि से हम निम्न बिन्दुओं के रूप में देख सकते हैं -

1. **पितृसत्तात्मक परिवार -** परिवार का मुखियॉ पिता होता है। परिवार के लिये निर्णय लेने का अधिकार उसे ही होता है। वर्तमान समय में परिवार में महिला सदस्यों की राय भी ली जाती है परन्तु फिर भी 90 से 95% तक आज भी भारतीय समाज पुरूष प्रधान समाज है।

   आज भी लड़कियों की शिक्षा से ज्यादा लड़कों की शिक्षा पर व्यय किया जाता है।

2. **लिंग भेद -** भारतीय समाज में आरम्भ से ही लड़के व लड़की में फर्क किया जाता रहा है। लड़के के जन्म पर अधिक खुशियॉ मनाई जाती है। पुत्रियाँ होने के पश्चात् भी पुत्र-प्राप्ति के लिये प्रयत्न किये जाते हैं।

   लड़कियों को आरम्भ से ही पराया-धन माना गया है। अत: कई परिवारों में लड़कियों को पढ़ाने के बजाय घरेलू-कार्यो में दक्ष करना अधिक अच्छा माना जाता है। एक निश्चित उम्र होते ही उनकी शादी कर दी जाती है। अत: वह पढने की उम्र में, घरेलू संसार में कैद होकर रह जाती है। ऐसा प्राय: ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक देखा जा सकता है।

3. **समाज का दृष्टिकोण -**बालिका-शिक्षा के लिये ग्रामीण क्षेत्रों में उपयुक्त वातावरण नहीं है। यदि कोई अभिभावक अपनी पुत्री को पढने के लिये विद्यालय भेजता है तो समाज व पास-पड़ौस के लोग उस पर व्यंग कसते हैं पढ़ लिख कर लड़की से नौकरी करवानी है क्या? या ज्यादा लड़की को पढाओगे तो उसके लिये उपयुक्त वर नहीं मिलेगा या फिर पढ़-लिख कर लड़की का दिमाग फिर जायेगा।

   इस प्रकार के नकारात्मक व्यवहार अभिभावकों को यह सोचने पर मजबूर करते हैं कि घर से दूर विद्यालय में भेजने का डर, उपयुक्त वर न मिलने का डर आदि उन्हें बालिका को नामांकन करने से दूर रखता है।

4. **महिला अध्यापिकाओं का अभाव -** ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर महिला अध्यापिकाओं का अभाव होने से, अभिभावक उन्हें शाला में भेजने से कतराते हैं।

5. **सामाजिक कुरितियॉ -** प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में कुछ कुरीतियाँ प्रचलित रही है। अनमेल विवाह, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, रूढिवादिता, अन्धविश्वास, जाति-प्रथा आदि।

   इन सब कुरीतियों का प्रभाव बालिका-शिक्षा पर भी नजर आता है। गाँवों में अल्पआयु में ही कन्या की शादी कर दी जाती है। अत: वह अपनी शिक्षा व व्यक्तित्व विकास पर ध्यान नहीं दे पाती है।

6. **विद्यालय की स्थिति -** यह समस्या मुख्य रूप से ग्रामीण व पहाड़ी क्षेत्रों में आती है। जहाँ जनसंख्या कम व छितरी होने के कारण विद्यालयों की केन्द्रीय स्थिति नहीं बन पाती है। घर से विद्यालय दूर व सुनसान इलाके में होने से अभिभावक अपनी कन्या को विद्यालय भेजने से डरते हैं।

7. **पाठ्यक्रम की अनुपयुक्तता -** विद्यालयों में प्रचलित पाठ्यक्रम की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है। छात्रायें पढने में रूचि नहीं ले पाती है। कन्याओं से विषयों का समावेश किया जाना आवश्यक है। गृह-विज्ञान, सिलाई-कढ़ाई, नृत्य-संगीत आदि विशयों का अध्ययन करवाकर समस्या का निराकरण किया जा रहा है।

8. **विद्यालय का नीरस वातावरण -** राजकीय विद्यालयों में जो ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित है, वहाँ का विद्यालयी वातावरण बालिकाओं को अध्ययन हेतु आने के प्रेरित नहीं कर पाता है। अध्यापकों की संख्या, अध्यापकों का अपने नैतिक दायित्वों के प्रति दृष्टिकोण, भौतिक संसाधनों की कमी, कतिपय अध्यापकों का छात्राओं के साथ गलत व्यवहार, छात्राओं को शिक्षालय में आने से रोकता है। परिणामस्वरूप अपव्यय व अवरोधन की समस्या का आरम्भ हो जाता है।

9. **भौतिक संसाधनों की कमी -** ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालय भवन में उपयुक्त बैठने की व्यवस्था नहीं है विद्यार्थियों के लिये पीने के पानी तथा शौचालयों की व्यवस्था नहीं है अत: बालिका के लिये विद्यालय में 4-5 घंटे व्यतीत करना मुश्किल हो जाता है। सरकार अब इस ओर ध्यान देने का प्रयास कर रही है।

10. **आर्थिक निर्भरता -** भारतीय समाज में पारिवारिक ढांचा इस प्रकार का है कि भारतीय स्त्री हमेशा पुरूष पर निर्भर रहती है। बचपन में वह पुत्री कहलाती है बड़े होने पर बहिन, युवा होने पर पत्नी, पुत्र जन्म के बाद माँ आदि अर्थात उसकी अपनी अस्मिता व पहचान पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है। शिक्षित नहीं होने के कारण वह आर्थिक रूप से परतन्त्र होती है। आर्थिक परतन्त्रता भी स्त्री के व्यैक्तिक विकास में बाधा पहुँचाती है।

11. **स्वयं से अनभिज्ञ -** स्त्री शिक्षा व विकास में सबसे बड़ी बाधा स्त्री का अपने स्वयं के प्रति नजरियॉ है। वह अपनी क्षमताओं और शक्तियों से अनभिज्ञ है। वह अपने स्वंय के प्रति जागरूक नहीं है। इसलिये वह प्रत्येक बात के लिये पुरूष पर निर्भर है। अशिक्षा से स्त्रियों के आत्मविश्वास में कमी आ जाती है।

12. **अन्याय को सहन करते जाना -** स्त्री-शिक्षा में बाधक सामाजिक व सांस्कृतिक एक महत्वपूर्ण पहलू है कि स्त्री सभी विपदाओं और समस्याओं तथा अन्याय को चुपचाप ऑसू बहाती हुई सहन करती जाती है। उसे लगता है पुरूष प्रधान समाज में यही उसकी नियति है। अपनी तकदीर का वह स्वयं तभी बदल सकती है जब वह शिक्षित हो जाये।

महिलाओं से सम्बन्धित विभिन्न कानूनों से वह अनभिज्ञ होती है। अत: आसानी से शोषण का शिकार बन जाती है। सामाजिक बदनामी के डर से वह चुप रहती है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है सामाजिक व सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव स्त्री शिक्षा पर पड़ता है। बदलते समय में स्त्रियाँ शिक्षित होने लगी है।

स्वतंत्रता के बाद स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए निरन्तर प्रयास किये गये। 1991 में महिला साक्षरता 39 .42 प्रतिशत हो गई। कन्या शालाओं की स्थापना, महिला अध्यापिकाओं में वृद्धि एवं न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अन्तर्गत चौदह वर्ष तक की बालिकाओं को शिक्षित करने की योजनायें बनाई गई। औद्योगीकरण के कारण समाज में गतिशीलता आई है। शहरी महिलाओं के साथ-साथ ग्रामीण महिलाओं में भी शिक्षा के प्रति जागरूकता आई है। तथा उन्होंने प्राचीन व सांस्कृतिक रूढियों को अपनाने से बेहतर शिक्षा का मार्ग चुन लिया है। आज शिक्षित महिला विभिन्न व्यवसायों में कार्यरत होकर आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है।

4.9 शैक्षिक विकास में लैंगिक अनुपात का असन्तुलन

ऐसी इकाई में हम पूर्व में जनसख्या अनुपात पर चर्चा कर चुके हैं | परन्तु शैक्षिक विकास को समझने के लिए लैंगिक अनुपात को समझना अवश्य है | महिला शिक्षा की संख्यात्मक व गुणात्मक विवेचना करने के उपरान्त यह बात बहुत स्पष्ट रूप से समझ मे आ जाती है कि आरम्भ से ही बालक व बालिका के शैक्षिक विकास में अन्तर पाया गया है। भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66) ने स्त्रियों की शिक्षा तथा उससे सम्बन्धित समस्याओं पर विस्तृत रूप से विचार किया। आयोग के सुझाव अनुसार "स्त्रियों की शिक्षा को प्रमुख कार्यक्रम के अन्तर्गत रखना चाहिये और उन सभी समस्याओं को समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये, जो स्त्रियों की शिक्षा में बाधक हो।" पुरूषों व स्त्रियों के बीच की असमानता को समाप्त कर देना चाहिये।

मानव-अधिकार के सार्वभौमिक घोषणापत्र में उल्लेख किया गया है कि शिक्षा हर मानव का मौलिक अधिकार है, जिसका अवसर बिना किसी भेदभाव के सभी को समानरूप से सुलभ होना चाहिये।

इन सभी प्रयासों से स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित तीन पक्ष उभर कर सामने आये हैं - 1. विद्यालयों के विषयवस्तु का पुनर्निरीक्षण करना, ताकि किसी प्रकार लिंग के आधार पर पक्षपात न हो और साथ ही विद्यालयों में लिंगों की समानता के विचार को प्रोत्साहित करना। 2. शिक्षकों की भावनाओं को लिंग 'समानता से ओतप्रोत करना और 3. स्त्रियों की संख्या को हर क्षेत्र में बढ़ावा देना तथा उनकी समस्याओं से सम्बद्ध कार्यक्रमों पर अध्ययन और शोध को प्रोत्साहित करना।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि प्रजातान्त्रिक राज्य में जहाँ हर नागरिक का समान नागरिक अधिकार तथा सामाजिक उत्तरदायित्व है, वहाँ लड़की तथा लडकियों की शिक्षा में अन्तर पाया जाता है, जो वांछनीय नहीं है।

स्त्री शिक्षा के प्रति इस प्रकार के प्रगतिशील मूल्यों के होने पर भी स्त्रियों और पुरूषों की शिक्षा में अन्तर रखने की संस्तुति विविध स्तरों पर दी जाती रही है।

1971-81 के दशक में स्त्री-शिक्षा में 6.1 की वृद्धि हुई, 1971 में 18.7% स्त्रियाँ शिक्षित थी, जबकि 1981 में शिक्षित महिलाओं का प्रतिशत बढ़कर 24.8% हो गया।

निम्न सारणी में स्त्रियों और पुरूषों की शिक्षा दर को दर्शाया गया है।

सर्व शिक्षा अभियान के तहत बालिका शिक्षा

सर्व शिक्षा अभियान वास्तव में एक ऐसा कार्यक्रम है जिसमें केन्द्रीय, राज्य एवं स्थानीय सरकार की सहभागिता है। सर्व शिक्षा अभियान का मुख्य बल विभिन्न व्यूह रचनाओं के द्वारा विद्यालयों से बाहर रहने वाले बच्चों को मुख्य धारा के विद्यालयों में नामांकित करने एवं 6- 14 आयु वर्ग के बच्चों को आठ वर्ष की जिम्मेदार शिक्षा उपलब्ध कराने पर है। इसमें लिंग एवं सामाजिक भेदों को पाटने एवं विद्यालयों में सभी बच्चों के शत-प्रतिशत ठहराव पर जोर दिया गया है। विद्यालय तंत्र में समुदाय के स्वामित्व के द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लिए सर्व शिक्षा अभियान का शुभारंभ सम्पूर्ण देश में किया गया है। वास्तव में यह सम्पूर्ण देश में गुणवत्तापूर्ण बेसिक शिक्षा उपलब्ध करने की संवैधानिक प्रतिबद्धता को पूर्ण करने का एक प्रयास है। सर्व शिक्षा अभियान मिशनरी भावना के साथ समुदाय के स्वामित्व वाली गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के द्वारा सभी बालक-बालिकाओं की मानवीय योग्यताओं को सुधारने के लिए एक सुअवसर प्रदान करने का एक प्रयास है। बेसिक शिक्षा के द्वारा सामाजिक न्याय को उत्प्रेरित करने का यह एक प्रयास है। इसके द्वारा प्रारम्भिक विद्यालयों के प्रबन्धन में पंचायत राज संस्थाओं, विद्यालय विकास एवं प्रबन्ध समितियों, अभिभावक अध्यापक संगठनों, मातृ-अध्यापक संगठनों एवं अन्य ग्रास रूट की संस्थाओं को प्रभावी रूप से सम्मिलित करने का एक प्रयत्न किया या सर्व शिक्षा अभियान एक वृहत योजना है। यह डीपीईपी, लोक जुम्बिश, शिक्षाकर्मी बोर्ड, जनशाला इत्यादि सभी बड़ी शैक्षिक व्यूह एवं सभी कार्यक्रम बोर्ड, जनशाला इत्यादि जैसी सभी बड़ी शैक्षिक व्यूह रचनाओं एवं सभी कार्यक्रमों को अपने अन्तर्गत समाहित कर लेगी।

सर्व शिक्षा अभियान के उद्देश्य एवं लक्ष्य - सर्व शिक्षा अभियान का, विद्यालय तंत्र के समुदाय के स्वामित्व के द्वारा वर्ष 2010 तक 6- 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को शिक्षा उपलब्ध कराने का लक्ष्य है। विद्यालय प्रबन्धन में समुदाय की सक्रिय सहभागिता के साथ सामाजिक, क्षेत्रीय एवं लिंगभेद को पाटने का भी इसका एक दूसरा लक्ष्य रहा है। इसका लक्ष्य बच्चों को प्राकृतिक वातावरण में इस प्रकार से सीखने एवं पूर्ण ज्ञान कराने का है जो मूल्य आधारित शिक्षा के द्वारा आध्यात्मिक एवं भौतिक दोनों ही रूपों में उनकी मानवीय क्षमताओं को पूर्णत: विकसित कर सके। सर्व शिक्षा अभियान पूर्ण प्राथमिक शिक्षा एवं देखभाल के महत्त्व का अनुभव करता है। यह 0- 14 की आयु को लगातार कड़ी के रूप में देखता है। इसलिए इस अभियान के अन्तर्गत आईसीडीएस केन्द्रों अथवा ऐसे विशेष पूर्व प्राथमिक शिक्षा केन्द्रों जो आईसीडीएस के क्षेत्र में नहीं हैं, का पूर्व प्राथमिक शिक्षा में सम्बल देने हेतु सभी प्रयास किये जावेंगे और इस तरह के प्रयत्न महिला एवं विकास विभाग के द्वारा किए जा रहे प्रयासों के पूरक होंगे।

सर्व शिक्षा अभियान के निम्नलिखित उद्देश्य हैं -

- सभी बच्चे, विद्यालयों, शिक्षा गारण्टी केन्द्रों, वैकल्पिक विद्यालयों तथा "बैक टू स्कूल" कैम्पों में वर्ष 2003 तक नामांकित हो जावें।
- वर्ष 2007 में सभी बच्चे प्राथमिक शिक्षा के पांच वर्ष पूर्ण कर लेवें।

- वर्ष 2010 तक सभी बच्चे प्रारम्भिक शिक्षा के आठ वर्ष पूर्ण कर लेवें।
- सबके लिए शिक्षा पर जोर देते हुए संतोषजनक गुणवत्ता वाली प्रारम्भिक शिक्षा पर जोर दिया जावे।
- वर्ष 2007 तक प्राथमिक स्तर एवं वर्ष 2010 तक प्रारम्भिक शिक्षा स्तर पर सभी लिंग एवं सामाजिक श्रेणियों के भेद पाट दिए जावें।
- वर्ष 2010 तक सार्वजनीन ठहराव हो जावे।

सर्व शिक्षा अभियान के तहत बालिकाओं की शिक्षा में सहभागिता तथा उपलब्धि हासिल करना एक प्रमुख लक्ष्य है। सर्व शिक्षा अभियान के तहत संचालित लगभग प्रत्येक कार्यक्रम के क्रियान्वयन में बालिकाओं के लिए विशिष्ट प्रबन्ध किये जाने के प्रावधान हैं। इसके साथ ही दो प्रमुख कार्यक्रम "प्रारम्भिक स्तर पर बालिकाओं का राष्ट्रीय कार्यक्रम" (NPEGL) तथा कस्तूरबा गांधी बालिका आवासीय विद्यालय (KGBV) को बालिकाओं को केन्द्रित कर बनाया गया है। इसी प्रकार से महिला समाख्या कार्यक्रम को भी सर्व शिक्षा अभियान के साथ समन्वय के साथ चलाया जा रहा है।

प्रारम्भिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम (एन.पी.ई.जी.ई.एल) - एनपीईजीईएल सर्व शिक्षा अभियान का एक अभिन्न अंग है तथा इसे सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत पृथक् अस्तित्व के रूप में क्रियान्वित किया गया है। ये कार्यक्रम Gender component plan of SSA के नाम से भी जाना जाता है। कार्यक्रम के अन्तर्गत शैक्षिक रूप से पिछड़े ब्लॉक, जिनमें ग्रामीण महिला साक्षरता की दर राष्ट्रीय औसत (48.13) की तुलना में कम है तथा जेण्डर गेप राष्ट्रीय औसत(21.50) से अधिक है का चयन किया गया है।

उदेश्य - 1.) प्रारम्भिक शिक्षा स्तर पर बालिकाओं की पहुँच सुनिश्चित कर नामांकन में लिंग असमानता को कम करना। 2.) नामांकित बालिकाओं का विद्यालय में ठहराव सुनिश्चित करने हेतु आधारभूत सुविधाओं को विकसित एवं प्रौन्नत करना। 3.) शिक्षा क्षेत्र में महिलाओं तथा बालिकाओं की अधिकाधिक सहभागिता सुनिश्चित करना।

एन पी ई जी ई एल कार्यक्रम की वार्षिक कार्ययोजना एवं बजट के अनुसार राज्यों में बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने वाली विभिन्न गतिविधियों की प्रभावित आयोजना को सुनिश्चित किया जाता है। चयनित ब्लॉक के प्रत्येक पुनर्गठित संकुल में पूर्व मे स्थित एक ऐसे विद्यालय का किया जायेगा, जहां पर एस सी / एस टी जनसंख्या घनत्व अधिक हो तथा महिला साक्षरता दर न्यूनतम हो। इस विद्यालय को बालिकाओं के लिए मॉडल कलस्टर विद्यालय की तरह उपयोग किये जाने का प्रावधान है। जिसे एक मुश्त अनुदान के रूप में अधिकतम 2 लाख रूपये का प्रावधान रखा गया है। बालिका आदर्श कक्षा - मॉडल कलस्टर विद्यालय को आदर्श बनाने के लिए शिक्षिका, बालिकाएं एवं समुदाय की पहल सुनिश्चित करने की योजना है तथा इनमें निम्न प्रकार की गतिविधियों का आयोजन किया जाता है- सकुल स्तरीय विद्यालय विकास एवं प्रबन्धन समिति की बैठक, सर्वश्रेष्ठ विद्यालयों एवं शिक्षकों को (पुरस्कार वितरण, बालिकाओं के लिए उपचारात्मक कक्षायें, व्यावसायिक प्रशिक्षणों का आयोजन, महिला

बैठकों का आयोजन, बालिकाओं हेतु स्वास्थ्य चर्चा, जेण्डर संवेदनशीलता शिक्षक प्रशिक्षण, मीना सी डी प्रदर्शन, एम टी ए एवं पी टी ए बैठकें बाल मेलों का आयोजन, प्रतियोगिताएँ, उत्सव एवं त्यौहार आदि। व्यावसायिक प्रशिक्षण -

जिलें में चयनित विकास खण्डों के मॉडल कलस्टर स्कूलों पर व्यावसायिक प्रशिक्षण का आयोजन किया जा रहा है। बालिकाओं में कौशल विकसित करने के उद्देश्य से बालिकाओं हेतु व्यावसायिक प्रशिक्षण का आयोजन किया जा सकेगा जिसमें उन्हें कटिंग टेलरिंग का प्रशिक्षण कालीन अवकाश में दिया जाएगा तथा कम्प्यूटर प्रशिक्षण शीतकालीन अवकाश में आयोजित किया जाएगा दोनों ही प्रशिक्षण गैर आवासीय होंगे।

कस्तूरबा गॉधी बालिका आवासीय विद्यालय (KGBV) - सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत कस्तूरबा गाँधी बालिका आवासीय विद्यालयों की योजना चलाई जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत प्रारम्भिक स्तर पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक तथा बीपीएल परिवारों की बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालय खोले जाते हैं। कस्तूरबा गाँधी आवासीय बालिका विद्यालयों के मॉडल निम्न हैं -

मॉडल नं. 1 - 100 बालिकाओं के लिए बोर्डिंग सुविधाओं सहित आवासीय विद्यालय की स्थापना।

मॉडल नं 2 - वर्तमान में संचालित बालिका उच्च प्राथमिक विद्यालयों में 50 बालिकाओं के लिए (उच्च प्राथमिक विद्यालयों को बोर्डिंग सुविधा सहित आवासीय विद्यालय में परिवर्तन)।

उद्देश्य - इन विद्यालयों का उद्देश्य वंचित वर्ग की उन बालिकाओं को जोडना है, जो कठिन परिस्थितियों और दुर्गम वासस्थलों में रहते हुए किसी कारणवश (यथा सामाजिक, पारिवारिक आदि) विद्यालय नहीं जा सकीं अथवा जिनकी आयु कक्षा में अध्ययनरत बालिकाओं से अधिक हो चुकी है। ऐसी बालिकाओं को निर्धारित ब्लॉक से चयन कर इन विद्यालयों में प्रवेश दिलाये जाने का प्रावधान है।

प्रवेश हेतु बालिकाएँ एवं प्राथमिकता - चयनित ब्लॉकों की अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक वर्ग व गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले किसी भी वर्ग / जाति के परिवारों की बालिकाएँ। बड़ी उम्र की बालिकाएँ जो विद्यालय में नामांकित नहीं हैं तथा किसी कारणवश प्राथमिक शिक्षा पूर्ण नहीं कर सकी हैं। दुर्गम क्षेत्रों (पलायन करने वाली जनसंख्या, बिखरे हुए वासस्थान जो प्राथमिक / उच्च प्राथमिक विद्यालय खोलने हेतु मापदण्ड पूरे नहीं करते हैं) की बालिकाओं को भी लक्ष्य समूह में रखे जाने का प्रावधान है।

योजना का क्रियान्वयन - ये आवासीय विद्यालय सरकारी भवन अथवा किराये के भवन में जहाँ 50 या 100 बालिकाओं के लिए 4-6 बड़े कमरे, 1 रसोईघर एवं पर्याप्त शौचालय व्यवस्था उपलब्ध होगी ऐसे किराये के भवन में कमरों का उपयोग कक्षा कक्ष एवं डोरमेट्री के रूप में किया जाने का प्रावधान है। एस.एस.ए. के अन्तर्गत बालिका शिक्षा के संदर्भ में विशेष प्रावधान किए गए हैं जो निम्न लिखित हैं -

- जिलों में बालिकाओं के लिए आवासीय ब्रिज कोर्स संचालित किए जाने का प्रावधान है। इनमें लाभान्वित होने वाली बालिकाएँ वे होंगी जो विद्यालयों में नामांकित नहीं हैं।

- बालिकाओं के लिए तीन माह के ब्रिजकोर्स आयोजित किए जाने का प्रावधान हैं । इनमें लाभान्वित होने वाली ग्रामीण क्षेत्रों की वो बालिकाएँ, जो अनामांकित या ड्राप आउट हैं।
- बालिकाओं के लिए तीन-तीन माह के गैर आवासीय कैम्पस आयोजित किए जाने का प्रावधान है।
- लिंग आधारित कार्यशालाएँ आयोजित किए जाने का प्रावधान है इनमें मातृ अध्यापक संगठनों एवं सहायता समूहों के सदस्य लाभान्वित होंगे।
- मुख्य विषयों जैसी अंग्रेजी, गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, संस्कृत एवं हिन्दी में कमजोर
- बालिकाओं की कठिनाईयों को दूर करने के लिए 7 दिवस के अतिरिक्त आवासीय कैम्पस आयोजित किए जाने का प्रावधान है।
- बालिकाओं को अध्यापन अधिगम सामग्री (12 कॉपिया ज्योमेट्री बॉक्स, स्कूल बैग तथा 2 पेन)
- उपलब्ध कराए जाने का प्रावधान है।

इस प्रकार सर्व शिक्षा अभियान वर्ष 2010 तक प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में बालिकाओं के लिए विशेष लक्ष्य के साथ कार्य कर रहा है। सर्व शिक्षा अभियान का विस्तृत अध्ययन हम इकाई 9 के अन्तर्गत करेंगे।

बालिका शिक्षा की स्थिति में परिवर्तन

आजादी के पश्चात् नीति निर्धारकों ने बालिका को बालक के समान शिक्षा प्रदान करने की नीतियों का निर्माण किया। लेकिन बालिकाओं को शिक्षित करने के कार्य में व्यावहारिक प्रगति 20वी शताब्दी के अन्त तक अनेक प्रयासों एवं कारकों के प्रभाव स्वरूप हुई है। वर्ष 2002-07 के दौरान इसी प्रगति का अवलोकन करेंगे। प्राथमिक स्तर पर बालक व बालिकाओं के मध्य नामांकन के लिंग भेद में कमी आई है। वर्ष 2002-03 में जो 5.5 प्रतिशत अंक का अन्तर था। वर्ष 2005-06 में 42 प्रतिशत अंक रह गया । इसी प्रकार उच्च प्राथमिक स्तर पर यह अन्तर वर्ष 2002-03 में प्रतिशत था। जो कि वर्ष 2005-06 में 8.8 प्रतिशत बिन्दु रह गया। इसी प्रकार लड़कियों की विद्यालय छोड़ने की दर जो वर्ष 2002-03 में 39.88 प्रतिशत थी वह भी घट कर 24.82 प्रतिशत रह गई। लेकिन इस दर को और कम करने की आवश्यकता है।

लिंग समानता सूचकांक यह दर्शाता है कि लड़कों के मुकाबले लड़कियों के नामांकन से केवल उच्च प्राथमिक पर ग्रामीण क्षेत्रों में सार्थक परिवर्तन दिखाई दे रहा है बाकि अन्य क्षेत्रो में इन वर्षो में बहुत अन्तर दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है तथा इसके लिए अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है।

यह पाया गया है कि कुल नामांकन से बालिकाओं का नामांकन प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक दोनों स्तर पर कम है और निरन्तर लगभग एक समान बना हुआ है। सरकारी विद्यालयों में लड़कियों का नामांकन

निजी विद्यालयों के मुकाबले अधिक पाया जाता है। स्पष्ट है कि लड़कियों के नामांकन में वृद्धि के उपाय किए जाने की आवश्यकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में बालिका नामांकन की ओर देखे तो जहाँ वर्ष 2002-03 में कुल नामांकन का लगभग 80 प्रतिशत नामांकन प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यालयों में हुआ वही वर्ष 2006-07 में यह नामांकन 79.64 प्रतिशत ही रह गया।

एम.एच.आर.डी.(2008) के अनुसार देश में जहाँ कुल मुस्लिम जनसंख्या 13.4 है, वहीं मुस्लिम बच्चों का नामांकन उच्च प्राथमिक स्तर पर लगभग 9 प्रतिशत है। इसमें लड़कियों का हिस्सा लगभग 49 प्रतिशत है। दूसरी ओर अन्य पिछड़े वर्ग में लड़कियों का नामांकन कुल नामांकन में से लगभग 47.62 प्रतिशत है। अर्थात् अल्प संख्यक वर्ग मुस्लिम लड़कियों का प्रतिशत अन्य पिछड़े वर्ग की अपेक्षा अधिक है। अन्य पिछड़े वर्ग की बालिकाओं हेतु भी अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है।

शारीरिक रूप से विकलांग एवं अक्षम बालिकाओं के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इस प्रकार की बालिकाओं का लिंग समानता सूचकांक (Gender Parity Index) अर्थात् बालकों के मुकाबले बालिकाओं का अनुपात सारणी संख्या 3.3 में दिया गया है।

यह भी देखा गया है कि अक्षम बालिकाओं के लिए विद्यालय में शिक्षा हेतु किए जाने वाले प्रयासों में सार्थक उपलब्धि हासिल हुई है लेकिन इसके लिए और अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। एम. एच. आर. डी (2008) के अनुसार भारत में प्राथमिक विद्यालयों में बालिकाओं की विद्यालय छोड़ने की दर लगभग 8.12 है। यह दर अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग पाई गई है। उड़ीसा जैसे राज्यों में दर लगभग 21 है। दूसरी ओर राजस्थान के लिए यह दर लगभग 15 है।

प्रारम्भिक शिक्षा में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति की लड़कियों का हिस्सा जाति के कुल नामांकन का लगभग 47% जो कि बालिका शिक्षा के लिए एक अच्छा संकेत है लेकिन कुछ विशेष राज्य में इसकी स्थिति ठीक नहीं है। अण्डमान निकोबार तथा पाण्डिचेरी जैसे केन्द्र शासित प्रदेशों में यह प्रतिशत लगभग 35 ही है। जिसे सुधारने की आवश्यकता है।

वर्ष 1999=2000 में जहाँ प्राथमिक स्तर पर 35.6 प्रतिशत महिला अध्यापिकाएँ उपलब्ध थीं, वहीं वर्ष 2006-07 में लगभग 41 प्रतिशत हो गई। उच्च प्राथमिक स्तर पर जहाँ वर्ष 1999-2000 में अध्यापिकाओं का प्रतिशत 36.1 था वह वर्ष 2006-07 में 38.52 प्रतिशत हो गया। बालिकाओं के नामांकन के लिए महिला अध्यापिकाओं की संख्या बढ़ाने की आवश्यकता है।

स्पष्ट है कि इन दोनों पिछड़े वर्गो के बालक तथा बालिकाओं के नामांकन अन्तर में कमी दृष्टिगोचर हो रही है। इस प्रकार दसवीं पंचवर्षीय योजना 2002-07 के दौरान बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति में सुधार हुआ है, जिसे निरन्तर बनाये रखने की आवश्यकता है।

4.10 सारांश

1. **देश की स्वतंत्रता से पूर्व अध्ययनरत बालक-**बालिकाओं की संख्या में काफी विषमता थी। ब्रिटिश काल में भारत में बालिकाओं की शिक्षा व्यवस्था विकट स्थिति में थी। जनसंख्या वृद्धि

के परिणाम स्वरूप निरक्षर महिलाओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। साक्षरता में लिंगभेद सार्थक रूप से मौजूद है। भारत के एक राज्य से दूसरे राज्य में बालिका शिक्षा की दृष्टि से अनेक विषमताएँ पाई जाती हैं। बालिकाओं को शिक्षित करने के कार्य में व्यावहारिक प्रगति 20वी शताब्दी के अन्त तक अनेक प्रयासों के एवं कारकों के प्रभाव स्वरूप हुई है। बालक व बालिकाओं की शिक्षा के मध्य भेद निरन्तर कम हो रहा है।

2. **ऐसे बहुत सारे कारक हैं जो कि बालिकाओं के नामांकन व ठहराव को प्रभावित करते हैं**। इन कारकों को तीन क्षेत्रों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है - 1) पारिवारिक सामाजिक कारक, 2) शैक्षणिक सुलभता तथा इसको प्रदान करने वाली व्यवस्थाओं में कमी, 3) शिक्षा की विषयवस्तु का महिलाओं की आवश्यकता के अनुरूप नहीं होना।

3. **सामाजिक**-साँस्कृतिक वातावरण ही ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा में बालिकाओं के पिछड़ेपन के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी कहा जा सकता है। शहरी क्षेत्र में आए सामाजिक एवं साँस्कृतिक बदलाव के प्रभाव स्वरूप बालिका की शिक्षा की स्थिति ग्रामीण क्षेत्र से ज्यादा अच्छी कही जा सकती है। अल्पसंख्यक वर्ग के शैक्षिक रूप से पिछड़े होने का मुख्य कारण उनके धार्मिक एवं सामाजिक रीति-रिवाज हैं। अनुसूचित जनजाति वर्गो में पुरुष एवं महिलायें पारम्परिक कार्यो में संलग्न रहने के कारण औपचारिक शिक्षा में रुचि नहीं लेते हैं। पुरुष केन्द्रित पारिवारिक व्यवस्था, छुआछूत पर्दा प्रथा एवं गरीबी के फलस्वरूप अनुसूचित जातियों की बालिकायें विद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाती हैं।

4. **सर्व शिक्षा अभियान** का विद्यालय प्रबन्धन में समुदाय की सक्रिय सहभागिता के साथ सामाजिक, क्षेत्रीय एवं लिंग भेद को पाटने का लक्ष्य है। दसवीं पंचवर्षीय योजना 2003-07 के दौरान बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति में सुधार हुआ है, जिसे निरन्तर बनाये रखने की आवश्यकता है।

4.4 अभ्यास प्रश्न

1. अल्पसंख्यक मुस्लिम वर्ग की सामाजिक एवं साँस्कृतिक परम्पराओं से शिक्षा पर क्या प्रभाव पड रहा है ?
2. भारत में बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति का वर्णन करें।
3. बालिकाओं के औपचारिक शिक्षा प्रणाली में कम भागीदारी तथा विद्यालय छोड़ने की ऊँची दर के कारणों की विवेचना करें।
4. ग्रामीण, शहरी तथा पिछड़े वर्गो के सन्दर्भ में बालिका शिक्षा पर सामाजिक-साँस्कृतिक कारकों के प्रभाव की व्याख्या करें।
5. सर्वशिक्षा अभियान के तहत् बालिका शिक्षा हेतु किये जाने वाले प्रयासों का वर्णन करें।
6. बालिका शिक्षा में वर्ष 2002 के पश्चात् आये परिवर्तनों की विवेचना करें।

4.6 संदर्भ ग्रंथसूची

- पारीक, मथुरेश्वर, सम्पादक (2002) : "राजस्थान में शिक्षा" राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
- वर्मा, सांवलिया बिहारी, एम.एल. सोनी एवं संजीव गुप्ता, (2005) "महिला जाग्रति और सशक्तीकरण", आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर।
- M.H.R.D. (2008): "Elementary Education in India –Analytical Report 2006-07,"NUEPA and Department of School education and Literacy, Ministry of Human Resource Development, Government of India, New Delhi.
- Goel Aruna (2004): "Education and Socio-Economic Pespectives of Women Development and Empowerment," Deep Publications, New Delhi.
- Panigrahi, L.K. (2003): "Women and child Education," Abhishek Publication, Chandigarh.
- Sharma, Nirmala (2006): "Women and Education issues and Approches," Alfa Publication,New Delhi.
- Sharma, Usha, B.M. Sharma (1995): "Women Education in Modern India", Women and Educational Development Series-5, Common Wealth Publishers, New Delhi.
- Satya,B.R.(2003): "Trends in Education", Anmol Publication, New Delhi
- http://WWW.educationforallinindia.com

इकाई - 5

जैंडर असमानता की चुनौतियां अथवा जैंडर समता की और सुदृढ़ीकरण में विद्यालय, साथियों शिक्षकों पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों आदि की भूमिका

Role of schools, peers, teachers, curriculum and textbooks, etc. in challenging gender inequalities or reinforcing gender parity

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 जेण्डर की परिभाषा एवं अर्थ

5.3 जेण्डर असमानता

5.4 जेण्डर असमानता के सिद्धान्त

5.5 जेण्डर असमानता की चुनौतियां

5.6 जेण्डर समता और सुदृढ़ीकरण में विद्यालय, साथियों शिक्षकों पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों आदि की भूमिका

5.7 जेण्डर समानता हेतु कुछ प्रयास

5.8 सारांश

5.9 अभ्यास प्रश्न

5.10 संदर्भग्रंथसूची

5.0 प्रस्तावना

भारत में नहीं अपितु विश्व के सभी देशों मे समाज के महिला व पुरूष के बीच लैंगिक असमानता व्याप्त है। अवधारणात्मक आधार पर लैंगिकता समाज व समुदाय द्वारा स्त्री पुरूष की सामाजि भूमिकाओं, जिम्मेदारियां उनके स्वाभाविक गुणों और शक्ति संबंधों को इंगित करती है। यह संस्कृति, क्षेत्रिय

विभिन्नता, सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति से संबंधितहोती है। अर्थात् समाज द्वारा ही स्त्री पुरूष में भेदभाव उत्पन्न किया जाता है।

म्हिला व पुरूष के मध्य असमानता समाज की व्यवस्था के अनुसार परिस्थितियों का निर्माण है। ए. ओकले 1976 ने सेक्स तथा जेण्डर के मध्य अंतर को स्पष्ट किया है। इनके अनुसार सेक्स महिला व पुरूष के मध्य जैविक विभाजन है तथा जेंडर सामाजिक समानान्तर गैर बराबरी है। जोकि स्त्रीत्व तथा पुरूषत्व के आधार पर बंटी हुई है। इस प्रकार जैंडर महिला और पुरूष के बीच समाज द्वारा रचित अंतरों के साथ संबंधितहै। इसका संबंधन केवल व्यक्तिगत पहचान से है। बल्कि मूल्यों, मानकों, वैचारिकी से भी संबंधितहै। विश्व के सभी समाजों के महिला व पुरूष के मध्य असमानता जेंडर के आधार पर तय की गई है। समाज में श्रम विभाजन का अधार भी जैंडर ही रहा है। महिलाओं का कार्यक्षेत्र घरेलू व पारिवारिक संगठन का कार्य तथा पुरूषों का कार्य क्षेत्र शारीरिक श्रम को माना गया है।

अब तक हमने महिला की प्रस्थिति के बारे में जाना है और हर क्षेत्र में लिंग भेद महत्वपूर्ण कारणों को पाया है। आखिरी जेण्डर असमानता या भेदभाव क्या है और कैसे कम किया जा सकता है। इसके बारे मे इस इकाई में जानकारी प्रापत करेंगे।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- जेण्डर के अर्थ समझ सकेंगे
- जेण्डर असमानता के संबंधमें जानकारी प्राप्त करेंगे
- जेण्डर असमानता के कारण जान सकेंगे
- जेण्डर असमानता के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे
- जेण्डर असमानता की चुनौतियां जान सकंगे
- जेण्डर समानता के लिए सुझाव बता सकेंगे

5.2 जेण्डर की परिभाषा एवं अर्थ

जेण्डर पुरूषों और स्त्रियों की उन भूमिकाओं एवं उत्तरदायित्वों की और संकेत करता है। जिनकी रचना हमारे परिवार समाज और संस्कृति द्वारा की गई है। ये भूमिका एवं उत्तरदायित्च अधिगामित है जो कि समय के साथ और विभिन् संस्कृतियों के अनुसार परिवर्तित हो सकते है।

समाज की संरचना, संगठन और व्यवस्था में जेण्डर की समानता और असमानता का विशेष महत्व है। जेण्डर की असमानता समाज की संतुलन व्यवस्था है और विकास को प्रभावित करती है। पुरूषों और स्त्रियों को विकास हेतु पर्याप्त समानर अवसर प्राप्त न होने की स्थिति को जेण्डर असमानता कहा जाता है। वर्तमान युग के विश्व में जेण्डर समानता की स्थापना को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जा रही है तथा

मानवाधिकार संरक्षण के समर्थकों ने स्त्रियों के प्रति होने वाले किसी भी प्रकार के अन्याय, हिंसा, अत्याचार या भेदभाव का आधिकाधिक विरोध करना प्रारंभ किया है।

विश्व के विकसित देशों मे लिंगीय समानता जहां वास्तविकता का आकार ले रही है, विकासशील एवं अविकसित देशों में भी यह कोरे आदर्श के रूप में ही स्वीकार है और अभी पुरूषों की बराबरी करने में महिलाओं को काफी समय लगेगा।

पिछले कुछ वर्षो में सामाजिक विज्ञानों में लिंग के सामाजिक पक्षों को उसकी जैविकीय पक्षों से अलग कर जेण्डर के रूप में समझने और अध्ययन करने की एक नई शुरूआत हुई है। जेण्डर सत्प्रत्यय स्त्रियों और पुरूषों के बीच सामाजिमक रूप से निर्मित भिन्नता के पहलुओं पर ध्यान आकर्षित करता है। किन्तु आजकल जैण्डर का प्रयोग व्यक्तिगत पहचान और व्यक्तिक को इंगित करने के लिए ही नहीं किया जाता है। पुरूषत्व एवं स्त्रीत्व संबंधीरूढिबद्ध धारणाओं और संरचनात्मक अर्थो में संस्थाओं और संगठनों में जेण्डर भेद के रूप में भी किया जाता है।

5.3 जेण्डर असमानता

समाज में महिला व पुरूष को अलग ही नहीं देखा जाता बल्कि असमानता का व्यवहार किया जाता है। सामाजिक असमानता का यह रूप हर जगह नजर आता है। विभिन्न समाजों में विभिन्न रूप में विभिन्न क्षेत्रों में दिखता है। जेण्डर असमानता को स्वाभाविक था कहे कि प्राकृतिक और अपरिवर्तनशील मान लिया जाता है। लेकिन जेण्डर असमानता का आधार स्त्री और पुरूष की जैविक बनावट नहीं बल्कि इसे दोनों के बारे में प्रचलित रूढ़ छवियां और तयशुदा सामाजिक भूमिकायें हैं। भारत में अनेक हिस्सों में मां - बाप को सिर्फ लड़के की चाह होती है। लड़की को जन्म लेने से पहले ही खत्म कर देने के तरीके उसी मानसिकता से पनपते है। हमारे देश का लिंग अनुपात (प्रति हलार लड़कों पर लड़कियों की संख्या) गिरकर 933 रह गया है। अध्ययनों से ज्ञान हुआ है कि जेण्डरी असामनता कैसे विकसित होते है। परिवार बुजर्गों के द्वारा किये गये लिंग भेद तो हमारी जानकारी में होते हैं किन्तु हमारे समाज में विभिन्न क्षेत्रों में फैले लिंगभेद जो बहुत हल्के में लिये जाते है, वो भी उतने ही प्रभावशील होते है

सामुदायिक स्तर पर भी स्त्री और पुरूषों में काफी असमानता दिखाई देती है। जैसे पुरूष अधिक शक्तिशाली माने जाते है और सित्रयों को सामुदायिक कार्यो में नेतृत्व के पर्याप्त अवसर नही दिये जाते है। जिम्मेदारी वाले कार्यो मे स्त्रियों को कम भागीदारी दी जाती है। एक ही व्यवस्था में स्त्रियों को पुरूषों की तुलना में कम महत्वपूर्ण कार्य दिये जो है क्योंकि उन्हें महत्वपूर्ण कार्यो के लायक ही नहीं समझा जाता है। जैसे सेना की नौकरी सित्रयों की हिस्सेदारी और भूमिका बहुत कम है।

यहां तक की प्रशासकीय स्तर पर भी सर्वोच्च पदों पर स्त्रियों की कमी है। यहां तक कि प्रशासकीय स्तर पर भी सर्वोच्च पदों पर स्त्रियो की कमी है। भेदभाव के चलते संसद में भी इनका प्रतिनिधित्व अन्य देशों की तुलना में हमारे देश में बहुत कम है। इन्हीं भेदभाव के कारण स्त्रियां प्रताड़ना और परेशानियां का शिकार होती है तो उन दोनों (जन्म लेने वाली और जन्म देने वाली) को ही नफरत से देखा जाता है। बांझपनकी अवस्था में स्त्री को अशुभ माना जाता है और विभिन्न प्रकार से प्रताडित भी किया जाता हैं

सार्वजनिक स्थानों पर भी महिलाओं के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता है। वे अक्सर छेड़छाड की शिकार होती है। प्राय: इस प्रकार का दुव्यवहार सभी प्रकार की महिलाओं को झेलना पड़ता है चाहे वो शहरी हो या ग्रामीण, पढ़ी लिखी हो या निरक्षर, पेशेवर हो या भ्मिक।

5.4 जेण्डर असमानता के सिद्धान्त

समाजशास्त्र में स्त्री -पुरूष के बीच ना केवल असामनता स्वीकार किया गया है बल्कि इस संदर्भ में सिद्धानत भी प्रतिपादित किये गये है। तीन सिद्धान्त विशेष रूप से प्रचलित है।

- उदारवादी सिद्धान्त - इस सिद्धान्त के अनुसार स्त्री पुरूष असमानता का प्रमुख कारण समाजीकरण में भेदभाव है। यह बात जगजाहिर है कि आज भी सभी समाजों में ग्रामीण नगरीय बालक और बालिकाओं के समाजीकरण के पक्षपात किया जाता है। जो आगे चलकर प्रमुख कारण साबित होता है। पुरूषों द्वारा विशेषाधिकार पर उनके दावों का, जिसमें एक तरफ पुरूषों को विशेषाधिकार प्रदान किया जाता है तो दूसरी तरफ स्त्रियों को विभिन्न प्रकार के पोषण और निर्योग्यताओं मे ढकेल देता है और पुरूष प्रधान समाज समाजिक मूल्य को सिखाता है। ये बाते स्त्रियों के प्रति हीन भावना को विकसित करता है। सामाजिक और सांस्कृतिक प्रथाएं भी नारी शोषण को बढ़ावा देती है और जेण्डर असमानता का पोषण करती है।
- उग्र - उन्मूलनवादी या रेडिकल सिद्धान्त - यह सिद्धान्त समाज में जेण्डर असमानता या नारी की निम्न स्थिति का कारण उदारवादी एवं मार्क्सवादी सिद्धान्त की तरह समाजीकरण और पूंजिवादी को मानते के बाजाये अज्ञानता एवं परतंत्रता को इसका मुख्य कारण मानता है। तात्पर्य यह है कि समाज में स्त्रियों को निम्न और समानता पूर्ण स्थति के लिए कौन जिम्मेदार है, इस विषय पर विद्वानों के बीच मतभेद होना ही चाहिए पर इस विषय पर एकमत दिखता है कि आज भी समाज में स्त्रियों की स्थिति काफी शोचनीय एवं कमजोर है। शायद यही वह परिप्रेक्ष्य है जिससे महिला सशक्तिकरण की अवधारणा समाज के सामने उभरकर आती है इसी कारण समाज का जो वर्ग , तब्का कमजोर है स्वाभाविक रूप से उसी के सशक्तिकरण की बात होगी।

5.5 जेण्डर असमानता की चुनौतियां

वल्ड इकॉलोमिक फोरम द्वारा 28 अक्टूबर 2014 को जेण्डर समानता पर जारी रिपोर्ट में बताया गया है कि भारत इस सूचकांक पर पिछले वर्ष के 101 वें स्थान से लुढ़ककर अब 144 वे स्थान पर पहुंच गया है।चीन, बंग्लादेश और श्रीलंका भी भारत से आगे है। एक तरफ विकास के तमाम आंकड़े और दूसरी तरफ दुनिया की सबसे पुरानी और समृद्ध संस्कृति होने का हामारा दावा।

भारत में महिलाओं की स्थिति में गिरावट कोई नई बात नहीं है। खासकर भूमण्डलीकरण के दौरे के बाद यह स्थिति बिगड़ी है। यह कहला ठीक नहीं है कि औरतें काम नहीं करना चाहती और उनके संस्कार उन्हें घर से बाहर काम करने से रोकते है। अर्जुन सेन गुप्ता की जो रिपोर्ट आई थी उससे भी इसकी पुष्टि होती है। जितनी भी औरतों से बात हुई है सबने यही कहा हैं कि सार्वजनिक जीवन में आगे बढ़कर अपनी हिस्सेदारी को बढाए। परिवार के लिए आर्थिक स्तर पर भी कुछ योगदान करें। पर हमने जो विकास का

रास्ता चुना है, जो रोजगार रहित वृद्धि हो रही है उसमें महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर पैदा ही नहीं हो रहे है। गांवों की बात छोड़ दीजिए दिल्ली जैसे शहरा में एनएसएस ओ के नवीनतम आंकड़ों के अनुसार महिलाओ की रोजगार हिस्सेदारी मात्र 9.4 प्रतिशत है।

जेण्डर समानता के पैमाने पर भारत पिछड़ने का सबसे बड़ा कारण है कि भारत में लिंग अनुपात दर बहुत कम है और इससे अपेक्षित सुधार के बजाय गिरावट के संकेत है। भारत में महिलाओं की बदतर स्थिति का सबसे बडा कारा तो उनके प्रति सांस्कृतिक सामाजिक स्तर पर भेदभाव ही है। पढ़ लिखे भी भारतीय महिलाओं के लिए हिंसा और असामनता की चुनौतियां बनी हुई है। समाजिक, कार्यकत्ताओं ने कहा कि महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना पड़ेगा। महिलाओं में जागरूकता लाने के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं, शिक्षाविदों और सरकार सभी को मिलकर प्रयत्न करना होगा और सबसे ज्यादा महिला को अपने अधिकारों और कत्र्तव्यों के लिए सजग होना पडेगा। जब तक कि महिलायें अपने ऊपर होने वाले अपराधों को चुपचाप सहन करती रहेगी, उरन पर अत्याचार होते रहेगे। अत: महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना पड़ेगा और आवश्यकता पड़ने पर न्याय की शरण में जाना पड़ेगा। साथ ही पुरूषों की भी अपनी रूढिवादी सोच और नारी को उपभोग की वस्तु समझने की मानसिकता को बदलना पड़ेगा, तभी महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों और अपराधों में कमी आयेगी।

विश्व की आबादी का लगभग आधा भाग महिलाओं का है, जो परिवार, समाज एवं देश के विकास के अनिवार्य एवं अति महत्वपूर्ण योगदान करती है। फिर भी परिवार और समाज में उन्हें आज तक स्थान नहीं मिल सका। जिसकी वह वास्तविक हकदार है। किसी भी समाज का स्वरूप वहां की नारी की स्थिति पर निर्भर करता है। यदि उसकी स्थिति सुदृढ़ एवं सम्मानजनक है तो ऐसा माना जाता है कि वह समाज भी सुदढ़ और मजबूत होगा। आज भारतीय महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक जैसे तमाम मोर्चों पर कठिनाइयों का समाना करना पड़ रहा है। महिलाओं की सामाजिक स्थिति यह है कि लगभग प्रत्येक परिवार के महत्वपूर्ण मुद्दों पर निर्णय लेने का अधिकार लगभग पुरूष अपने पास रखते है

और महिलाएं उनकी हां में हां मिलाने को बाध्य है। दहेज, वैधव्य, बाल विवाह, तलाक जैसी अनेकों सामाजिक तथाक कथित धार्मिक परंपराओं और प्रावधानों को निभाने की जिम्मेदारी भी महिलाओं पर थोप दी गई है। भारत में महिला सशक्तिकरण क्यों? इस समाज के विकास में उनके योगदान ओर उन्हें प्राप्त प्रस्थिति में व्याप्त विरोधाभास के रूप में देखना और समझना होगा। इसी विरोधाभास को इंगित करते हुए महात्मा गांधी ने कहा था कि नारी को अबला कहना उनका अपमान करना है। नारी स्वयं भांति स्वरूपणी है, आवश्यकता केवल उन्हें पहचानने को एवं सामाजिक रूप से स्वीकृत करने की है। भारत में महिलाओं से संबंधितप्रमुख चुनौतियां इस प्रकार है

- लिंग भेद की समस्या
- शिक्षा की समस्या
- स्वास्थ्य और पोषण की समस्या
- धार्मि अंधविश्वास एवं अज्ञानता की समस्या

- यौन उत्पीड़न और यौन शोशण की समस्या

दहेज की समस्या

नारी के प्रति हिंसा की समस्या

- तलाक की समस्या।

- महिला कर्मचारियों को कम वेतन देना

संचार माध्यमों द्वारा नारी की विकृत छवि प्रस्तुत करना।

5.6 जेण्डर समता की और सुदृढ़ीकरण में विद्यालय साथियों, शिक्षकों, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों की भूमिका

एक पुरूष की अपेक्षा एक नारी को शिक्षित करना ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि एक पुरूष को शिक्षित करने से केवल एक व्यक्ति शिक्षित होता है जबकि एक नारी को शिक्षित करने से पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है।

सरकार बालिकाओं की शिक्षा को विशेष महत्व देने के लिए वचनबद्ध है। यह स्वीकार करती है कि यदि सार्वजनिक प्रारंभिकम शिक्षा को यथार्थ रूप में साकार करना हे तो बालिकाओं की प्रवेश संख्या को बढ़ावा होगा उनकी स्कूल छोड़ने कर दर को कम करना होगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संक्रमण काल में विभिन्न पद्धतियों को अपना होगा जैसे औपचारिक, अनौपचारिक, संक्षिप्त कार्यक्रम एवं रात्रि स्कूल आदि प्रारंभ करने होगे। बालिकाओं की बालकों के स्कूल में उपस्थिति बनाये रखने के लिए स्कूल के वातावरण को सुखद एवं सुरक्षित बनाना, शिक्षक कार्य को आनन्दमय बनाना आवश्यक है।

शिक्षा में जेण्डर समानता का अर्थ होगा रूढिगत विचारों के ऊपर उठकर बालक एवं बालिका को समान शैक्षिक व्यवस्थाएं एवं अवसर उपलब्ध करवाना जिससे उनकी शैक्षिक उपलब्धियों पर लिंग भेद के कारण प्रभाव न हो सकें। शिक्षा में लिंग संवेदनशीलता लाना आवश्यक है।

बालिका शिक्षा की सफलता की पहली शर्त महिला एवं महिला शिक्षा के प्रति रूढिवादी विचारों, मापकों, मूल्यों एवं मापदण्ड़ों को पूरी तरह से ध्वस्त कर आधुनिक एवं सम लिंगवादी मूल्यों को समाज में स्थापित करना है ताकि लोग लड़कियों को शिक्षा प्राप्त करने से रोकने की जगह हाथ पकड़कर पाठ्शाला तक छोड़ आये। महिला शिक्षा । खर्च की जाने वाली रकम फिजूल खर्च और दूसरे के बगिया के फूल में पानी देने वाली, नकारात्मक मानसिकता को ध्वस्त कर हर खर्च को एक विनियोग एवं समाज के मानव संसाधन का विकास के रूप में देखने की मानसिकता लोगों को पैदा करना।

शिक्षण प्रक्रिया के अन्तर्गत विद्यालय एवं कक्षा कक्ष के बालिका के बालक के समान व्यवहार दिया जाये । इस हेतु एक समान पाठ्यचर्या, शिक्षण पद्धतियां एवं शैक्षिक व शिक्षण सामग्री हो जो किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह तथा जेण्डर रूढिवादिता से मुक्त हो।

बालिका शिक्षा की उपादेयता के प्रति समाज में जागृति लाना। जिससे केरल की भांति प्रत्येक 10 मेंसे 9 बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर दें।

शिक्षक परिवर्तन के प्रमुख नियामक। वे विद्यालय में बच्चों के रोल मॉडल होते है। विद्याथ्र्ाी उनका अनुसरण करते है। शिक्षक को विद्यालय में जेण्डर संवेदनशीलता के लिए कार्यकत्र्ता के रूप में कार्य करना होगा। स्वयं उन्हें इसके लिए मानसिक रूप से तैयार करना होगा जिससे वे समानता का वातावरण विद्यालय में उत्पन्न कर सकें। विद्यालय में शिक्षण कार्य के दौरान उन्हें कार्य व्यवहार में जेण्डर संवेदनशीलता की समझ उत्पन्न करनी होगी। बालिकाओं को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने हेतु विभिन्न गतिविधियों का आयोजन करना होगा। कक्षा कक्ष में उन्हें बालकों को समान ही महत्व दे, बालिका द्वारा किये गये कार्य की सराहना करें एवं उन्हें बेहतर कार्य हेतु प्रेरित करें।

साथियों का व्यवहार, विद्यालय का संगठन, वातावरण एवं अनुशासन बालिका के प्रति सहयोगात्मक हो। महिला शिक्षिका को भी बढ़ावा दिया जाये।

जेण्डर पक्षपता से मुक्त पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकें तैयार करना एक राष्ट्र की गुणवत्ता उसके नागरिकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है तथा नागरिकों की गुणवत्ता काफी हद तक उनकी शिक्षा पर निर्भर करती है। शिक्षा की औपचारिक संस्थाएं अपने नियोजित और संरचित पाठयक्रम के द्वारा न केवल बच्चों को साक्षर करती है, बल्कि उनके चारों और होने वाले परिवर्तनों को अपनाने तथा उनके प्रति अनुकूलित होने में मदद करती है। एक पाठ्यक्रम विद्यालय द्वारा किये जाने वाले सभी प्रयासों का संग्रह है जिसके द्वारा विद्यालय के अंदर और विद्यालय के बाहर की परिस्थितियों में वांछित परिणाम प्राप्त किये जाते है, यह बालक का बौद्धिक, शारीरिक भावानात्मक, आध्यात्मिक, सामाजिक और नैतिक विकास करता है।

प्राचीन भारत में महिलाओं और पुरूषों के लिए सार्वजनिक शिक्षा की परम्परा थी। दुर्भाग्यवश कालान्तर में महिला शिक्षा की दशा अवनत होती गई। स्वाधीनता से पूर्व की महिला शिक्षा सीधे तौर पर महिलाओं की भूमिका जैसे गृहिणी और माता से जुड़ी थी। शिक्षा पुरूषों को रोजगार हेतु प्रशिक्षित करने से संबंधित थी, क्योंकि महिलाओ से यह आशा नहीं कि जा सकती है कि वह घर के बाहर कार्य करें। अत: पाठ्यक्रम भी उतनी सामाजिक भूमिका के अनुसार ही था। इसी दौरान कुछ विषयों का नारीवाद विषयों के तरह उदय हुआ। धंधा, संगती, गृह विज्ञान आदि। जबकि भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान गणित आदि विषयों में पुरूषों से संबंधितमाना जाता था। स्वाधीनता के पश्चात के समय को महिलाओं की उनके घरों से मुंक्ति के समय के तौर पर इंगित किया जाता है। शिक्षित लोगों के धार्मिक आड़म्बर और सामाजिक रूढ़िवादी विचारों में गिरावट आने लगी। पाठ्यक्रम में जेण्डर समानता संबंधीशिक्षा के अन्य उपलब्धि कोठारी कमीशन द्वारा दी गई सिफारिशों के द्वारा प्राप्त हुई। इस कमीशन के अनुसार बालिका शिक्षा के विरूद्ध परम्परात पूर्वाग्रह को कम करने हेतु जनसामान्य को शिक्षित करना होगा।

जहां तक संभव हो मिश्रित प्राथमिक विद्यालय होने चाहिये। उच्च प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं के लिए अलग से विद्यालय खोले जाने चाहिए।

5.6.1 पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों को जेण्डर पक्षपात से मुक्त करने हेतु सुझाव

वर्तमान समय में पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में सुधार का कार्य बहुत ही गंभरी रूप से किया जाता हैं NCERT ने 124 पृष्ठों का दस्तावेज तैयार किया है जिसे National Curriculum Frame Work 2005 कहा जाता है। NCF (2005) दस्तावेज के अनुसार ''समानता के लिए हमें पाठ्यपुस्ताकें का

प्राथमिक उपकरण की तरह उपयोग करना चाहिए, क्योंकि यह शिक्षा हेतु बहुत बड़ी संख्या में विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए भी प्राव्य संसाधन है।

NCERT के अनुसार नई पाठ्यपुस्तकें लिखते और तैयार करते समय इस बात का ध्यान में रखना होगा कि बच्चों को कम उम्र से ही जेण्डर संवेदनशील बनाना है तथा उन्हें जेण्डर रूढिवादिता से दूर रखना है। इसके पीछे सम्पूर्ण भावना है कि – विद्यार्थी यह महसूस कर सकें कि महिलाएं पुरूषों के कम योग्य अथवा समर्थ है इस सोच का कोई आधार नहीं है।

वर्तमान संदर्भ में उठने वाले मुद्दों के आधार पर कहा जा सकता है कि NCF (2005) में प्रस्तावित सुधार स्वागत योग्य है, लेकिन अभी भी पाठ्यपुस्तकों व पाठ्यक्रमों से जेण्डढर रूढ़िवादिता को कम करने की आवश्यकता है - कुछ सुझाव निम्नलिखित है।

- पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों में वहां संशोधन करने की आवश्यकता है जहां महिलाओं को चित्रण केवल अच्छी गृहणियों की तरह किया गया है। पुरूषों के समान महिलाओं की उपलब्धियों को शामिल करने की आवश्यकता है।
- पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें एक जेण्डर समिति जिसमें अकादमिक, नारीवाद, इतिहासकार , सरकार आदि शामिल हो, जिससे पाठ्यक्रम में गुणवत्ता एवं यह सुनिश्चित हो जाये कि पाठ्यपुस्तकें लिंगभेद से मुक्त हो।
- बालिकाओं के स्थान के बारे में सतही सोच से लिखने के बजाए लेखकों को परिवार में बालिकाओं की वास्तविक स्थिति को महसूस करके लिखना चाहिए।
- पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन को एक साधारण क्रिया की तरह नहीं लिया जाना चाहिए बल्कि इस पर राज्य सरकार का पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण होना चाहिए।
- शैक्षिक सामग्री का उत्पादन संविधान में निहित भावना तथा मौलिक अधिकार एवं समानता के अनुरूप होना चाहिए।

5.7 जेण्डर समानता हेतु कुछ प्रयास

जैंण्डर असमानता समाप्त करने या कम करने के लिए छोटी छोटी कोशिशों द्वारा एक बदलाव लाने का प्रयास कर सकते है।

- लड़के और लड़कियों को बराबर का व्यार देख रेख और सम्मान मिलें।
- लड़के और लड़कियों, महिलाओं एवं पुरूषों को समान पोषण स्वास्थ्य सेवाएं शिक्षा, रोजी रोटी, कमाने एवं विकास को समान अवसर मिलें ।
- अपने स्वयं के विचारों में परिवर्तन करके,
- अपने समुदायों में लिंग पक्षपात और महिलाओं के प्रति हिंसा पर बातचीत करने के लिए प्रोत्साहित करना।

- पुरूष और महिलाएं दोनों परिवार के फैसलों में बराबर भूमिका निभाएं।
- दोनों सामुदायिक फैसलों में भी शामिल हो।
- एक सकारात्मक वातावरण तैयार करना और समुदाय के प्रभावशाली लोगों को इस अभिप्राय में शामिल करना।
- लेगों के मन में यह सोच विकसित करना कि महिला पुरूष जीवनसाथी के रूप में निजी एवं सार्वजनिक जीवन में एक समान है।
- कनूनी समानता के लिए राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयत्न किये जाये।
- राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पुरूषों एवं महिलाओं के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में अवसर बढ़ाने के लिए प्रयत्न कये जाये।

5.8 सारांश

जेण्डर संबंधीअसमानता कई रूपों में उभकर सामने आती है जिसमें से सबसे प्रमुख विगत कुछ दशकों में जनसंख्या में महिलाओं के अनुपात में निरंतर गिरावट की रूझान है। सामाजिक रूढिवादी सोच और घरेलू तथा समाज के स्तर पर हिंसा इसके कुछ अन्य रूप है। लोकतांत्रिक समाज के निर्माण एवं विकास के लिए उसमें विभेदों को समाप्त किया जाना आवश्यक है। महिलाओं में जेण्डर समानता की स्थापना के लिए स्त्रियों में शिक्षा की आवश्यक माना गया है। बालिका को शिक्षा प्रापित के अवसर बालक के समान उपलब्ध हो। अर्थात् अभिभावक, अध्यापक एवं समाज उस हेतु किसी प्रकार की लिंग विभेद की अभिवृत्ति न रखें।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

सही/गलत बताइये।

1- स्विधान में महिला को पुरूष के समान अधिकार प्राप्त है।
2- सार्वजनिक स्थानों पर महिलाओं के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता है।
3- उदारवादी सिद्धानत के अनुसार स्त्री-पुरूष असमानता का प्रमुख कारण सामाजीकरण में भेदभाव है।
4- भारत में लिंगनुपात दर बहुत कम है।
5- बालक - बालिकाओं के समान पाठ्यक्रम होना चाहिए।

5.9 अभ्यास प्रश्न

1 जेण्डर के अर्थ को स्पष्ट करे। जेण्डर असमानता क्या है चर्चा करें।
2 जेण्डर असमानता की चुनौतियों की व्याख्या कीजिए।
3 जेण्डर समानता हेतु क्या प्रयास किये जा सकते है? बताइये

शिक्षा के द्वारा जेण्डर समानता लाने के लिए िशक्षक की पारिवार्तित भूमिका क्या हो सकती है, व्याख्या कीजिए।

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Rao, R.K., Women and Education, Kalpaz publication, New Delhi-110052
- Pantjali, P.C. Development of women Education in India, Shree publishers, Ansari Road. New Delhi-110002
- Pandey A.K.m Emerging issues in Empowerment of Women, Anmol Publication, New Delhi.
- ओकले , अभ, सेक्स जेण्डर और सोसायटी, द यूनिवर्सिटी ऑफ मिशं्िगन, एिश्या, पब्लिशड एसोसियशन, विद यू सोसायटी।
- अग्रवाल, उमेश, भारत में महिला समानता और सशक्तिकरण के प्रयास योजना नइ्र दिल्ली।
- जे. व्यास, आशुतोष, (2014) जेण्डर समानता और महिला सशक्तिकरण, आविष्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर

इकाई - 6

विषम लिंग वास्तविकताएं और डोमेन (ग्रामीण, शहरी, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति), मुसलमान और विकलांग

Heterogeneous gendered realities and domains (Rural, Urban, SC/ST, Muslim, and Disabled)

इकाई की रूपरेखा:

6.1 ऐतिहासिक परिदृश्य

6.1.1 शैक्षिक विकास से संबंधित विषम लिंग वास्तविकताएं

6.1.2 व्यवसायिक विकास से संबंधित विषम लिंग वास्तक्किताएं

6.2 आधुनिक भारत में विषम लिंग वास्तविकताएं

6.3 ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में विषम लिंग वास्तविकताएं

6.4 विषम लिंग वास्तविकताएं अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अल्पसंख्यकों के संदर्भ में

6.5 महिला शिक्षा के लिए किए जा रहे नवीन प्रयास

6.6 महिलाओं के लिए अनौपचारिक शिक्षा

6.7 अभ्यास प्रश्न

6.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.1 ऐतिहासिक परिदृश्य

महिलाओं के शैक्षिक सुधार हेतु सर्वप्रथम भारत सरकार द्वारा 4 नवम्बर 1948 में राधाकृष्णन आयोग विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की स्थापना की गई। आयोग ने आदर्श वाक्य ’’पढ़ी लिखी माता घर की भाग्य विद्याता वाक्य को महत्त्वपूर्ण ही नही शिक्षा के विकास हेतु सर्वाधिक उपयोगी भी बताया। आयोग के अनुसार कुषल मात्त्व सफल गृहणी बनाने के लिए अर्थशास्त्र, गृहविज्ञान, गृहे प्रबन्धे, मातृ शिशु कल्याण विषयों की शिक्षा उच्च्च प्राथमिकता के आधार पर दी जाए।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) के प्रारम्भिक वर्षों में देश की साक्षरता दर मात्र 18.33 प्रतिशत थी। जबकि 1961 में साक्षरता दर 28.30 प्रतिशत जिसमें स्त्री व पुरूष साक्षरता क्रमश: 15.3 प्रतिशत एवं 40.4 प्रतिशत थी। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-74) में महिला साक्षरता प्रतिशत 21.97 प्रतिशत रहा। उस समय प्रति हजार पुरूषों पर मात्र 440 महिलाएँ ही साक्षर थी। छटे पंचवर्षीय योजना (1980-85) के आरम्भ में 1981 में साक्षरता का प्रतिशत बढ़ कर 29.67 एवं 43.57 प्रतिशत हो गया।

इस समय में स्त्री शिक्षा में विशेष सफलता मिली। जिसमें पुरूष स्त्री साक्षरता क्रमश: 56.38 प्रतिशत एवं 29.67 प्रतिशत हो गयी। परिणाम स्वरूप पुरूष व महिला साक्षरता के मध्य अन्तर घटकर दो गुने से भी कम हो गया। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया गया । साथ ही तकनीकी व व्यावसायिक क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता बढ़ाने पर विशेष बल दिया गया। जिसके परिणामस्वरूप 1991 में साक्षरता प्रतिशत बढ़कर 52.2 प्रतिशत हो गया। पुरूष व स्त्री साक्षरता प्रतिशत भी बढ़कर क्रमश: 64.13 प्रतिशत व 39.29 प्रतिशत हो गया।

इस प्रकार प्रति हजार पुरूषों पर साक्षर महिलाएँ 569 हो गयी।

महिला सशक्तिकरण हेतु सरकार द्वारा अनेक विकास कार्यक्रमों एवं कल्याणकारी योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। जैसे द्ववारका योजना (1982) महिला समाख्या योजना (1989) किशोर बालिका योजना (1992), ग्रामीण महिला विकास परियोजना (1996), बालिका समृद्ध योजना (1997) एवं स्वयं सिद्ध योजना (2001) आदि। परियोजनाओं व कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि हुई है।

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार वर्तमान में महिला साक्षरता पिछले 10 वर्षों में 39.29 से बढ़कर 54.16 हो गई है। इस प्रकार पिछले एक दशक में 14.87 की वृद्धि संभव हो सकी है।

6.1.1 शैक्षिक विकास से संबंधित विषम लिंग वास्तविकता

भारतीय शिक्षा आयोग में विचार रखा गया कि उन सभी समस्याओं को दूर कर देना चाहिए जो स्त्रियों की शिक्षा में बाधक है। पुरूष व स्त्रियों के बीच शिक्षा की असमानता को दूर कर देना चाहिए।

मानव अधिकार के सार्वभौमिक घोषणापत्र में उल्लेख किया गया है कि शिक्षा हर व्यक्ति (मानव) का मौलिक अधिकार है। जिसका अवसर बिना किसी भेदभाव के सभी को समानरूप से सुलभ होना चाहिए।

इन प्रयासों से स्त्री शिक्षा से संबंधित तीन पक्ष उभर कर सामने आये हैं:-

1. विद्यालयों की विषय वस्तु का पुनर्निरीक्षण करना, ताकि किसी प्रकार लिंग के आधार पर पक्षपात न हो और साथ ही विद्यालयों में लिंग की समानता के विचार को प्रोत्साहित करना।
2. शिक्षकों की भावनाओं को लिंग, समानता से ओत-प्रोत करना।
3. स्त्रियों की संख्या को हर क्षेत्र में बढ़ावा देना तथा उनकी समस्याओं से सम्बद्ध कार्यक्रमों पर अध्ययन एवं शोध को प्रोत्साहित करना।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि प्रजातान्त्रिक राज्य में जहाँ हर नागरिक का समान नागरिक अधिकार और सामाजिक उत्तरदायित्व है, वहाँ लड़की तथा लड़कियों में शिक्षा में अन्तर पाया जाता है, जो वांछनीय नही है।

स्त्री शिक्षा के प्रति इस प्रकार के प्रगतिशील मूल्यों के होने पर भी स्त्रियों और पुरूषों की शिक्षा में अन्तर रखने की संस्तुति विविध स्तरों पर दी जाती रही है।

1971-81 के दशक में स्त्री शिक्षा में 6.1 की वृद्धि हुई 1971 में 18.7 प्रतिशत स्त्रियों शिक्षित थी, जबकि 1981 में शिक्षित महिलाओं का प्रतिशत बढ़कर 24.89 प्रतिशत हो गया।

विगत 70 वर्षो के प्रयासों के बावजूद भी स्त्रियों की निरक्षरता खत्म नहीं हो पा रही है। 1961 में 18.5 करोड़ थी, 1971 में 21.5 करोड़, 1981 में 24 करोड़ तथा 1981 की मतगणना के अनुसार सबसे अधिक अशिक्षित महिलाएँ राजस्थान में 85.12 प्रतिशत बिहार में 86.47 प्रतिशत उत्तरप्रदेश में 88.58 प्रतिशत मध्यप्रदेश में 84.47 प्रतिशत जम्मू कश्मीर मं 84.12 प्रतिशत थी।

6.1.2 व्यवसायिक विकास से संबंधित विषम लिंग वास्तविकताएं

महिलाओं ने शिक्षित होने के साथ विभिन्न व्यवसायों प्रवेश के अवसर भी बढ़ते जा रहे हैं। महिलाओं का झुकाव अकसर उन व्यवसायों की और अधिक है जहां वे स्वयं को महफूज महसूस करती है। शिक्षण व्यवसाय में परिवार को भी समय दे सकने के कारण यह एक पंसदीदा व्यवसाय है। इसके अतिरिक्त इन्जीनियर, डॉक्टर, आर्किटेक्ट, फैशन, डिजाइनर, इन्टीरियर डेकोरेटर विमान परिचालिका, न्यूज रीडर, अनुसंधान और मैनेजर आदि पदों पर कार्य करना पसंद करती है।

राज्य व्यवस्थापन, प्रशासन, भारतीय शासन व्यवस्थाओं में भी अपना परचम फैला रही है। पंचायती राज व्यवस्था में भी स्थिति काफी मजबूत है।

कार्यस्थल के अतिरिक्त घर परिवार की जिम्मेदारी के दोहरे बोझ के तहत कार्य सम्पूर्ण निष्ठा से निर्वहन करती है। आज चाहे कोई विषय हो, टेक्नीकल से लेकर कार्य नियोजन, प्रबन्धन, निर्णय क्षमता सभी में पुरूषों के समान दक्षता का परिचय दे रही है। भारतीय समाज की पुरूष प्रधानतावाली सोच का अवसर कार्य स्थल पर भी देखने को मिलता है पुरूष, अपनी महिला समकर्मचारी के साथ बराबरी का सलूक नहीं करते है। उनसे ज्यादा काम की अपेक्षा करते है उन्हें नीचा दिखाने का मौका नहीं छोड़ते हैं। कभी-कभी तो गलत टीका टिप्पणी करने से भी बाज नहीं आते है।

कभी-कभी प्रशासन भी महिला कर्मचारी की कार्यकुशलता को संशय की दृष्टि से देखता है। किसी कार्य को पूरा कर पाने का विश्वास सहज ही पुरूष को महिला पर नही होता। अपनी महिला सहकर्मी को पदोन्नती व प्रगति को देखकर पुरूष वर्ग के अहम को चोट लगती है। कई बार कार्य विभाजन में भी महिलाओं को अहम कार्य से वंचित रखा जाता है। कई गोपनीय बातें भी उससे छिपाकर रखी जाती है। कहीं-कहीं महिला मजदूर को पुरूष मजदूर की अपेक्षा कम वेतन दिया जाता है। इस प्रकार व्यवसायों में भी लिंगीय विभेदता आम है।

अभ्यास प्रश्न

1. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की स्थिति पर टिप्पणी लिखिए।
2. महिलाओं से संबंधित शैक्षिक एवं व्यवसायिक स्थिति का विवेचन कीजिए।

6.2 आधुनिक भारत में विषम लिंग वास्तविकताएं और डोमेन

आधुनिक भारत में विषम लिंग वास्तविकताएं और डोमेन की अगर चर्चा की जाती है तो मध्यकाल की तुलना में स्थिति बेहतर है। शिक्षा का स्वरूप गतिशील है। समाज में होने वाले सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिर्वतन शिक्षा को निरन्तर प्रभावित करते रहते है।

भारत में स्वतंत्रता पष्चात सभी क्षेत्रों में विकास की संभावनाएं बढ़ी है। महिलाओं और पुरूषों में भेदभाव के चलते महिलाओं की स्थिति में सुधार तो देखने को मिलता है परन्तु इसे वर्तमान में प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता। साक्षरता, आत्मनिर्भरता जैसे गुणों में पिछड़े पक्ष के आधुनिक समाज में स्त्री शिक्षा का बढ़ावा नही दिया बल्कि कुछ क्षेत्रों और स्तरों पर इसका विरोध भी देखने को मिला है।

पुरूष प्रधान भारतीय समाज में पुरूषों की मानसिकता से यह साफ जाहिर हो रहा है कि प्रकट रूप में जो स्त्री शिक्षा के हिमायती बनते है उनमें से अधिकांश व्यक्ति यह नहीं चाहते कि समाज में स्त्रियों का वर्चस्व बढ़ जाये। महिलाएँ कुल जनसंख्या का आधा भाग है अर्थात आधी जनसंख्या जहां निरक्षर है अशिक्षित है वहां स्थिति दयनीय ही बनी हुई है शिक्षा और विकास का गहरा संबंध है क्योंकि आधी जनसंख्या अशिक्षित है फिर पूर्ण विकास भी कैसे संभव हो सकता है। अर्थात यदि महिला शिक्षा पर उचित ध्यान दिया जाएगा तो देश में विकास, उन्नति व प्रगति के पथ भी प्रशस्त होगें।

प्राचीनकाल से वर्तमान काल में स्त्री शिक्षा के स्वरूप में जो सुधार आया है उसके पीछे अनेकों समाज सुधारक, चिन्तनशील, विदवान लोगों की महन्ती भूमिका रही है भारत में मानसिक संकीर्णता के कारण लड़कियों की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता था। केवल उन्हें घर के कार्यों को सिखाने पर बल दिया जाता था। जब-जब समाज में नारी की शिक्षा पर बल दिया गया है तब-तब नारी ने उस क्षेत्र में उत्कृष्ठ प्रदर्षन किया है। शिक्षा के क्षेत्र में गार्गी, मैत्रेयी, जैसी विदुषियों आज भी शिक्षा में अपने अमूल्य योगदान के लिए जानी जाती है।

वर्ष 1956 में महिला शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा समिति की स्थापना की गई। जिसने स्त्रियों की शिक्षा से संबंधित विविध समस्याओं और बाधाओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया। समिति का सुझाव था कि लड़को के समान लड़कियों को शिक्षा दी जानी चाहिए।

स्त्री पुरूष के शिक्षा के बीच अन्तर के कारणों तथा उसके निराकरण के लिए 1963 में बालक-बालिकाओं के पाठ्यक्रम विभेदीकरण समिति की स्थापना की गई। 1964-66 में भारतीय शिक्षा आयोग ने सुझाव दिया स्त्रियों की शिक्षा को प्रमुख कार्यक्रम के अन्रतगत रखना चाहिए। और उन सभी समस्याओं को समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए जो स्त्रियों की शिक्षा में बाधक हो। पुरूषों और स्त्रियों के बीच की असमानता को शिक्षा द्वारा दूर किया जा सकता है।

1986 में नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत राष्ट्रीय एकीकरण द्वारा सबको शिक्षा के समान अवसर की बात दोहराई गई। लडकियों की शिक्षा से न केवल समाजिक न्याय बल्कि परिर्वतन व विकास की गति में भी तीव्रता आती है।

1.3 ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में विषम लिंग वास्तविकताएं

हमारे देश में लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गांवो में निवास करती है। ग्रामीण क्षेत्रों मेंशिक्षा का प्रचार-प्रसार शहरों की तुलना में कम है। लोग परम्परागत सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में अधिक विश्वास रखते है। शहरी क्षेत्रों में पाश्चात्य विचार धारा अधिक परिलक्षित होती है, ग्रामीण पुराने संस्कार एवं रुढिवादिता से जुड़े प्रतीत होते है। राजस्थान राज्य देश महिला शिक्षा की दृष्टि से दयनीय स्थिति में है क्योंकि यहां सबसे कम साक्षरता 20.84 प्रतिशत है।

1991 की जनगणना सर्वेक्षण के अनुसार देश की कुल 84 करोड़ जनसंख्या के 33 करोड़ 22 लाख महिलाएँ निरक्षर थी ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी 75 प्रतिशत महिलाएँ निरक्षर है।

ग्रामीण क्षेत्रों में इतनी अधिक निरक्षरता का कारण सामाजिक कुरीतियां, पिछड़ापन दोषपूर्ण रीतिरिवाज, धार्मिक मान्यताएं, अन्धविश्वास, आर्थिकी गरीबी एवं अशिक्षा है ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी बाल-विवाह करवाएं जा रहे है, परिवार लड़कों को प्राथमिकता दी जाती है। लड़कियों के पालन पोषण एवं शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। लड़कियाँ घर और खेती में कार्यो में हाथ बटाती है एंव छोटे भाई बहनों का ख्याल रखती है। उस प्रकार विभिन्न कार्यो में दबकर पढ़ाई के विषय में अधिक सोच नही पाती न ही परिवार से पढ़ाई की ओर कोई प्रोत्साहन उसे मिल पाता है। अधिक पढ़ी लिखी लड़की के लिए योग्य वर तलाषने आदि कारणों से उसकी पढ़ाई को हतोत्साहित ही किया जाता है। इसके लिए आवश्यकता है निरक्षरता के समूल नाश की सर्वेक्षण बताते है कि शिक्षित की अपेक्षा निरक्षर स्त्रियाँ किसी भी प्रकार की प्रताड़ना की अधिक शिकार होती है।

ग्रामीण क्षेत्र के गरीब अभिभावक बालिकाओं को पढ़ाने भेजने के लिए असमर्थ है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी व भुखमरी से विवश होकर भी कई परिवारों में बालिकाएं भी अपने माता-पिता के साथ मजदूरी कर आर्थिक सहायता प्रदान करती है। महिला शिक्षा का शहरी संदर्भ में चित्र ग्रामीण की अपेक्षा कुछ भिन्न है शहर में लड़के व लड़की में बहुत अधिक असमानता का भाव अभिभावकों में नही होता है। उनके लिए समान रूप से शिक्षा की व्यवस्था है। समाज की सोच भी व्यापक होती है। समाज पढ़ा लिखा व सुलझे हुए विचारों को मान्यता देता है शिक्षा की दृष्टि से दोनों समान है, दोनों को अधिक स्वतंत्रता है। साक्षरता स्तर भी ग्रामीण की तुलना में बेहतर है।

यशपाल समिति के आंकलन के अनुसार पहली कक्षा में दाखिल सौ लड़कियों में चालीस लड़कियाँ ही पाँचवी कक्षा तक पहुँच पाती है। आठवी तक केवल 18 लड़कियों और विश्वविद्यालय तक मात्र तीन प्रतिशत लड़कियाँ पहुँच पाती है। 1991 की जनगणना के अनुसार पुरूषों की साक्षरता 63.86 प्रतिशत तथा महिलाओं की साक्षरता 39.42 प्रतिशत है।

बड़े शहरों में हांलाकि शिक्षा का स्तर ग्रामीण की अपेक्षा बेहतर है परन्तु शिक्षित नारी उपभोक्तावादी संस्कृति का शिकार बन रही है। इस दृष्टि से अधिक शोषण का शिकार बन रही है। शहर में चूंकि बन्धन नही है इसलिए मूल्यों का हास भी अधिक है। आत्मनिर्भरता अधिक है तो पैसे व प्रसिद्धी का लालच भी अधिक है।

1.4 विषम लिंग वास्तविकतांए अनुसूचित जाति जनजाति एवं अल्पसंख्यकों के संदर्भ में

शिक्षा तार्किक दृष्टिकोण विकसित करती है, वैज्ञानिक विचारों की स्थापना करती है। ज्ञान का प्रसार करती है। समाज में व्याप्त पाखण्डों, समस्याओं, कुरीतियों, रूढिववादिता, बुराईयों को दूर करती है। संविधान के अनुच्छेद संख्या 14 में यह व्यवस्था की गई है कि 6-14 वर्ष के सभी बालक-बालिकाओं को बिना भेदभाव के अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा दी जाएगी। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी 75 प्रतिशत से अधिक महिलाएँ निरक्षर है इनमें भी गरीबी रेखा से नीचे, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों की 90 प्रतिशत से अधिक महिलाएँ निरक्षर है। देश के 17 जिलों में महिला साक्षर 50 प्रतिशत से कम है तथा 73 जिलों महिला साक्षरता 20 प्रतिशत से भी कम है।

आज भी जनसंख्या का एक बहुत बड़ा प्रतिशत बालिकाएं औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पा रही है। इनमें से अनुसूचित जाति की महिलाएँ सबसे अधिक वंचित है। यूनिसेफ की एक रिपोर्ट के अनुसार देश अनुसूचित जातियों के बच्चों के अनुसार प्राथमिक कक्षाओं पहली से चैथी तक में नामांकन दर केवल 15.79 प्रतिशत इनमें 39.46 कन्यायें है और इनमें भी प्राथमिक शिक्षा के बाद आधी लड़कियाँ स्कूल छोड़ देती है।

स्कूल छोड़ने में सर्वाधिक 68.73 प्रतिशत जनजाति की लड़कियाँ है। इन आंकड़ो से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि ग्रामीण बालिकाओं विशेषकर अनुसूचित जाति एवं जन जातियों की लड़कियाँ अधिक मात्रा मं शिक्षा बीच में ही छोड़ देती है। इस लिए साक्षरता दर बहुत कम है। हांलाकि देश में शिक्षा संबंधी शिक्षा सुधार किए गए है। फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में बालिका शिक्षा की स्थिति संतोषजनक नहीं है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्र शिक्षण परिषद के पांचवे अखिल भारतीय सर्वे में (1989) के अनुसार देश के 60 प्रतिशत प्राथमिक स्कूलों के सभी कक्षाओं पहली से चैथी के लिए मात्र एक एक अध्यापक नियुक्त किया गया है। देश के 5.29 लाख प्राईमरी स्कूलों में से आधों में स्वच्छ पेयजल की सुविधाएं भी नही है। 85 प्रतिशत स्कूलों में कोई शौचालय भी नहीं है। और 7100 स्कूलों में भवन के नाम पर कोई कच्ची या पक्की इमारत नहीं है। अनुसूचित जाति एवं जनजातियों एवं अल्पसंख्यकों समुदाय में बालिका शिक्षा को महत्त्व नहीं दिया जाता है। माता-पिता स्वयं निरक्षर होते है तथा वे परम्परागत मान्यताओं में ज्यादा विश्वास रखते हैं । इन समुदायों में प्रायः लड़कियों का विवाह कम आयु में कर दिया जाता है। कहीं-कहीं बाल विवाह भी किए जा रहे है। अतः लड़कियाँ औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पा रही है। वे अक्सर माता-पिता का घर में हाथ बंटाती है या फिर आर्थिक रूप से छोटे घरेलु कार्य कर अभिभावकों की सहायता करती है।

गरीब अभिभावक गुजर बसर तक सीमित रहते है अपने बच्चों की शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दे पाते। अतः बालिकाओं की शिक्षा हेतु इनकी मानसिकता बदलने का प्रयास करना पड़ेगा इसके अतिरिक्त व्यावसायिक केन्द्र पर प्रशिक्षण एवं सीखों कमाओं जैसी योजनाओं से जोड़ना पड़ेगा जिससे गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोग अपनी लड़कियों के लिए औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था कर सकें।

अल्पसंख्यक वर्गो के अन्तर्गत धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक वर्ग लिए जाते है। इनमें इसाई पारसी, जैन, मुस्लिम वर्ग प्रमुख है। इन अल्पसंख्यक वर्गों में सबसे बड़ा भाग मुस्लिम वर्ग का है तथा मुस्लिम अल्पसंख्यक वर्ग ही भारत में शैक्षिक रूप से अधिक पिछड़ा माना जाता है। मुस्लिम महिलाओं के शैक्षिक रूप से पिछड़े होने का मुख्य कारण उनके धार्मिक एवं सामाजिक रीतिरिवाज है। अधिकतर परिवारों में महिलाओं का सामाजिक जीवन अनेक सामाजिक एवं परम्परागत बन्धनों से बंधा होता है। बालिकाओं को बालकों के विद्यालयों में नहीं भेजा जाता है किशोर अवस्था से ही बालिकाओं को बालकों के विद्यालयों में नही भेजा जाता है किशोर अवस्था से ही बालिकाओं को बुरका पहनना अनिवार्य होता है। पुरूष अध्यापकों से शिक्षा-दीक्षा में संकोच महसूस किया जाता है। महिलाओं की मुख्य जिम्मेदारी बच्चों का लालन पालन होती है क्योंकि बच्चे अधिक संख्या में होते है क्योंकि पारम्परिक रीति रिवाजों के हिसाब से बच्चे खुदा की देन होते है परिवार नियोजन इस समुदाय में अच्छा नहीं माना जाता। इस वजह से मुस्लिम महिलाएँ शिक्षा एवं रोजगार से वंचित रह जाती है। बड़ी बालिकाओं को घर के कार्य कलापों और बच्चों की देख-रेख में लगा दिया जाता है जिससे वे विद्यालय छोड़ने को मजूबर हो जाती है। मुस्लिम समाज में महिलाओं को घर से बाहर रोजगार आदि में हिस्सा लेने को भी ठीक नहीं समझा जाता है। अधिकतर मुस्लिम महिलाएँ घर का काम काज ही देखती है इस प्रकार के माहौल में उनकी शिक्षा की रूचि कम रहती है, परिवार से प्रोत्साहन की कमी से वे कई बार निरक्षर भी रह जाती है।

शारीरिक रूप से विकलांग एवं अक्षम बालिकाओं के लिए शिक्षा की व्यवस्था करना भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। अक्षम बालिकाओं के लिए विद्यालयों में शिक्षा हेतु किए जाने वाले प्रयासों में सार्थक उपलब्धि हासिल हुई है। लेकिन इसके लिए और प्रयास की आवश्यकता है। एम.एच.आर.डी (2008) के अनुसार भारत में प्राथमिक स्तर विद्यालय छोड़ने की दर लगभग 8.12 प्रतिशत है।

राजस्थान अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की महिला साक्षरता दर वर्ष 1991 की जनगणनानुसार क्रमश: 8.31 प्रतिशत तथा 4.42 प्रतिशत थी जोकि अन्य सभी राज्यों से कम है। सामान्य महिला साक्षरता दर 20.44 प्रतिशत से भी यह बहुत कम है। इस प्रकार जाति वर्गो के मध्य राजस्थान में शैक्षिक भेद बहुत अधिक रहा है।

जनगणना 2001 के अनुसार राजस्थान में महिला साक्षरता दर के क्षेत्रिय असंतुलन भी देखने को मिलते हैं। जहां झुंझुनू एवं सीकर जिलों में महिला साक्षरता दर 62 से 68 प्रतिशत तक पाई जाती है। वहीं उदयपुर जिले के कोटड़ा तहसील में यह मात्रा 11.14 प्रतिशत पाई गई। इसी प्रकार उदयपुर, बांसवाड़ा के कुछ अन्य ग्रामीण इलाकों में महिला साक्षरता दर मात्र 18 से 19 प्रतिशत पाई गई। जबकि उदयपुर शहर में महिला साक्षरता दर 81.02 प्रतिशत पाई गई।

6.5 महिला शिक्षा के लिए किए जा रहे नवीन प्रयास

1. विद्यालयों में महिला अध्यापक वृद्धि
2. अपारंपरिक शिक्षा योजना के अधीन बालिका केन्द्रों के लिए अलग से बजट
3. ई.जी.एस. स्कूल, ब्रिजाकोर्स, स्कूल जाने वाली बालिकाओं के लिए अवासीय षिविर।
4. लोक जुंबिष, निम्न महिला साक्षरता जिलों में डी.पी.ई.पी. महिला अधिकारिता के लिए महिला समाख्या योजना।
5. माध्यमिक शिक्षा तक लड़कियों की निःशुल्क योजना।
6. पिछलें जिलों/ब्लाकों में विशेष रूप से बालिकाओं के लिए कस्तूरबा गाँधी स्वतंत्र विद्यालय स्थापना।
7. बालिकाओं को शिक्षा से जोड़ने के लिए ग्रेस प्रोजेक्ट ट्रांसपोर्ट वाउचर, साईकिल वितरण योजना, गार्गी पुरस्कार, स्कूटी योजना, बालिका फाउण्डेशन, विघार्थी दुर्घटना योजना, पोषाहार कार्यक्रम, निःशुल्क पाठ्यपुस्तक वितरण, विकलांग बालकों की सुविधा व अनीमिया नियंत्रण कार्यक्रम संचालित किए जा रहे है।
8. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में सर्वशिक्षा अभियान के प्राथमिक शिक्षा के साथ-साथ राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के माध्यम से भी महिला शिक्षा व किशोर शिक्षा पर बल दिया जा रहा है।
9. राष्ट्रीय सतत् साक्षरता अभियान महिला एवं बाल विकास मंत्रालयों के माध्यम से महिला शिक्षा के पाठ्यक्रम तैयार किए जा रहे है।

6.6 महिलाओं के लिए अनौपचारिक शिक्षा

महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता शिक्षा के बिना संभव नहीं है। शिक्षा के दृष्टिकोण उदार व विस्तृत होता है। इसी से आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। वर्तमान समाज में अनेकों कारणों के फलस्वरूप बालिकाएं औपचारिक शिक्षा से वंचित रह जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं के विद्यालय नामांकन की संख्या बालकों से काफी कम है। इसी प्रकार शहरी क्षेत्रों में भी उच्च शिक्षा को लेकर सकारात्मक दृष्टिकोण अभी तक विकसित नहीं हो पाया है।

अनौपचारिक शिक्षा ऐसी बालिकाओं के लिए लाभकारी विकल्प है। यह शिक्षा ज्ञानवर्धन के लिए जीवन काल में किसी भी समय प्राप्त की जा सकती है। सरकारी स्तर पर विविध कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं की अनौपचारिक शिक्षा से जोड़ने का प्रयास किया गया है। इन कार्यक्रमों में पढ़ने लिखने और गणना ज्ञान के अतिरिक्त जीवन कौशल शिक्षा पर भी बल दिया गया है। सम्पूर्ण साक्षरता अभियान साक्षरता पष्चात कार्यक्रम निरन्तर शिक्षा एवं सर्व शिक्षा अभियान ऐसे ही सरकारी कार्यक्रम है। महिलाओं के व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं स्वरोजगार के लिए गैर सरकारी संस्थाएं भी महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। इस क्षेत्र में स्वयं सहायता समूहों की भूमिका भी उल्लेखनीय है।

6.7 अभ्यास प्रश्न

1. ग्रामीण एंव शहरी क्षेत्र के संदर्भ में विषम लिंग वास्तविकताओं का उल्लेख कीजिए।
2. अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अल्पसंख्यकों के संदर्भ में विषम लिंग वास्तविकताओं का परिचय दीजिए।

6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- दिगामूर्ती, एज्यूकेशन फार वीमन, डिस्कवरी हाउस, नई दिल्ली - 110002
- अग्रवाल, जे.सी. माडर्न इन्डियन ऐज्यूकेशन शिप्रा पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- शर्मा, निर्मला, (2006) बूमेन एण्ड ऐज्यूकेशन इटयूज एण्ड एम्परोचिज, अल्फा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।
- शर्मा उषा, बी.एम.वर्मा (1995) पूनम इन मॉडर्न इन्डिया वूमन एण्ड एज्यूकेशन डिस्लप्मेन्ट सीरीज-5 कामन वेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
- गोयल, अरूणा (2004) ’’ऐज्यूकेशन एण्ड साषियों- इक्नोमिक परस्पेक्टिव आफ वीमन डवलपमेन्ट एण्ड एम्पावरमेन्ट, दीप पब्लिकेषन्स, नई दिल्ली।
- सारस्वत स्वप्निल, महिला विकास: एक परिदृश्य, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली।
- सेन, एम.बी. प्रोगेस आफ वीमेन ऐजूकेशन इन फ्री इण्डिया, न्यू बुक सोसायटी आफ इण्डिया, नई दिल्ली।

इकाई – 7

लैंगिक परिपेक्ष्य (सैद्धांतिक आधार)

Gender Perspective (Theoretical Basis)

इकाई की रुपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 लैगिक परिप्रेक्ष्य में नारीवाद
7.4 नारीवादी दृष्टि कोण की परिभाषा
7.5 लिंग की परिभाषा एवं अर्थ
7.6 लिंग असमानता के कारण
7.7 लिंग भेद के सिद्धान्त
7.8 सारांश
7.9 अभ्यास प्रश्न
7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.1 प्रस्तावना

नारीवादी दृष्टिकोण के सम्बन्ध में जब हम विस्तृत चर्चा करने जा रहे हैं। इससे पूर्व एक घटना याद आती हैं। 1993 में जब नारीवादी आंदोलन अपने चरम पर था। राजस्थान के उदयपुर जिले के सराड़ा ब्लॉक का गांव चावण्ड में महिला सम्मेलन हो रहा था। वहाँ पर उपस्थित महिलाएँ नारे लगा रही थीं- ‘‘मेला (महिला) मांगे आजादी" बेना मांगे आजादी, हम सब मांगे आजादी, मेला (महिला) मांगे काम समान” आदि मै! संचालक था। मैंने पूछा, "बहनों। माताओं आप सब बोल रहे हो "महिला मांगे आजादी" और "काम समान’’ का अर्थ क्या है? वे चुप थीं। केवल नारा लगाना जानती थीं। वे न तो इन शब्दों का अर्थ जानतीं थीं और न ही उपयोग। वे अपने विचार, अभिव्यक्त नहीं कर पा रही थीं, लेकिन हजारों की संख्या में उपस्थित हर उस की महिला समूह जो अपने घर से येन, केन प्रकरेण, सारी घरेलू प्रबन्धन की व्यवस्था -कर इस सम्मेलन में आई थीं। शायद यही उनकी अपनी आजादी थी।

आजादी एवं समानता के इन्ही अर्थो में नारीवादी दृष्टिकोण को समझे तो हम पाएंगे- नारीवादी दृष्टिकोण प्रारम्भ से लेकर आज तक पश्चिमी और पूर्वी देशों में आजादी और समानता मूल अवधारणा के लिए आन्दोलित है। अपने संघर्ष में पूर्व में समाज में पुरूष प्रधानता, शोषण, अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाई। कालान्तर में यह आंदोलन स्व निर्भरता स्व जागरूकता व स्वावलंबन मूल मंत्र बन गया। नारीवादी का मूल आधार है- ऐतिहासिक और सांस्कृतिक यथार्थ का ठोस, जागरूकता उपलब्धियाँ और उसका क्रियान्वयन स्तर। जैसा पात्र होता है वैसा ही पानी आकार कर लेता है। नारीवाद का अपना

स्वरूप समय, काल व स्थानीय परिस्थितियों व मुद्दों के आधार पर बदलाव करता रहा। 17 वीं शताब्दी से 21 वीं शताब्दी की संरचना में नारीवादी सोच विकसित हुआ। विश्व के विभिन्न भागों में, देशों में वहाँ की काल परिस्थितियों के आधार पर यह आंदोलन सशक्त भी हुआ तो कमजोर भी ! आइये ! इसी पृष्ठ भूमि में एक दृष्टि नारीवादी विचारधारा, परिभाषा, विशेषताओं, लिंग भेद की अवधारणा व सिद्धान्त पर डालें।

7.2 उद्देश्य

- लैंगिक परिप्रेक्ष्य में नारीवाद की परिभाषा व विशेषताओं को जान सकेंगे।
- लिंग भेद की अवधारणा जेण्डर की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- नारीवाद के विभिन्न सिद्धान्त यथा-उदारवादी सिद्धान्त आमूल परिवर्तनवादी (रेडिकल थ्योरी) समाजवादी-सिद्धान्त की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आज की परिस्थितियों में उसकी उपयोगिता व व्यावहारिकता को समझ पाएंगे।
- पाश्चात्य व पूर्वी नारीवाद के संदर्भ में तुलनात्मक समझ पैदा कर पाएंगे।

7.3 लैंगिक परिप्रेक्ष्य में नारीवाद

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के बराबर स्त्रियों के अधिकारों के समर्थन को नारीवाद या महिलावाद कानून दिया गया है। इस विचारधारा की उत्पत्ति मूलत: पितृसतामकत अर्थात पुरूष प्रभुत्व की प्रतिक्रिया स्वरूप हुई है। इसकी व्याख्या दो रूपों में की जा सकती है एक विचारधारा के संकुचित अर्थ में, तथा दूसरी महिलाओं का समानता के लिये किया गया एक सामाजिक आंदोलन के रूप में यह लिंगवादी सिद्धान्त अर्थात् पुरूष प्रभुत्वता और सामाजिक शोषण की प्रथा की समाप्ति पर बल देता है। महिलावाद कई भिन्न-भिन्न किंतु अर्न्तसम्बन्धित संकल्पनाओं का एक पुंज है, प्रयोग लिंग की सामाजिक यथार्थता तथा लिंग असमानता की उत्पति, प्रभाव एवं परिणामों के अध्ययन एवं विवेचन में किया जाता है।

एक आंदोलन के रूप में महिलावाद का जन्म कब और कैसे हुआ संबंधमें निश्चितता नहीं है। यही नहीं इन आंदोलन के उद्देश्य तथा संचालन में काफी भिन्नता देखने को मिली है। ऐसा अनुमान है कि इसका जन्म अठारहवीं शताब्दी के अंतिम काल में यूरोप, फ्रांस और ब्रिटेन हुआ और आज यह नारीवादी आंदोलन लगभग सभी देशों (विकसित एवं विकासशील) में न्यूनाधिक रूप में फैल गया है। यह आंदोलन लैंगिक समानता का पक्षधर है तथा इस समानता को प्राप्त करने के लिये सभी स्तरों पर महिलाओं के अधिकारों में वृद्धि की मांग करता है।

महिलावादी आंदोलन के इतिहास की शुरूआत मूलत: फ्रांस की क्रांति के आदर्शो में छुपी है इस क्रांति में महिलावाद की प्रथम लहर को उत्पन्न किया और महिलाओं की क्रान्ति में भाग लेने की प्रेरणा दी'

ब्रिटेन में सन् 1792 में प्रकाशित मेरी बूलस्टोन क्राफ्ट की पुस्तक "एविनडिकेशन ऑफ द राइटस ऑफ वूमेन ने महिलावाद की प्रथम लहर को जागृत किया। समान शिक्षा के महिला अधिकारों का समर्थन किया गया ! उन्नीसवीं सदी में कई महिला समर्थक इसके लिए लड़े तथा स्त्रियों के लिए विद्यालय की स्थापना की लड़की के महाविद्यालयों तथा पुरूषों के व्यवसायों में स्त्रियों को प्रवेश दिलवाया। बाद में कानूनी सुधारों द्वारा स्त्रियों के संपत्ति सम्बन्धी वैयक्तिक अधिकारों तथा तलाक देने की स्वीकृति ने स्त्रियों की प्रस्थिति में भारी परिवर्तन ला दिया। महिला वादियों ने लैंगिकता संबंधीस्त्रियों की समस्याओं पर भी ध्यान दिया और वेश्यावृत्ति तथा बलात्कार जैसे कुकृत्यों के लिए समुचित कानून पारित करवाकर स्त्रियों को सुरक्षा प्रदान की।

भारत में भी उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ समाज सुधारकों द्वारा महिलाओं की प्रस्थिति में सुधार लाने का प्रयत्न किया । राजा राम मोहनराय केशव चन्द्र सेन, देवेन्द्र नाथ ठाकुर, स्वामी दयानन्द, श्रीमती एनीबिसेन्ट के अतिरिक्त थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन जैसे अनेक संस्थाओं ने स्त्री शिक्षा तथा महिलाओं की अन्य समस्याओं के समाधान में योगदान दिया।

महिलावादी आंदोलन की द्वितीय लहर की शुरूआत बैरी फ्रेडन की पुस्तक "फेमिनिन मिस्टिक (1963) से होती है जिसमें तथा कथित सुखी उच्च मध्यम वर्ग की एक अनाम पूर्णकालिक गृहिणी एवं मां अपने दुःखी एवं नैराश्य की कहानी कहती है। ब्रिटेन तथा अमेरिका में महिलावाद को प्रश्रय नव-वामवाद में भाग लेने वाली स्त्रियों द्वारा भी मिला जिन्होंने अपने पुरूष साथियों द्वारा उनके साथ किए गए व्यवहार से प्रताड़ित होकर विद्रोह का झण्डा गाड़ दिया। ब्रिटेन में कार्यरत महिलाओं द्वारा समान वेतन के लिए हडताल की गई । महिलावादी आंदोलन की इस द्वितीय लहर में ही वास्तव में आधुनिक नारी मुक्ति आन्दोलन की नींव रखी। यह आन्दोलन न तो संस्तरणात्मक ही था और नहीं पूर्णत: संगठित यह एक ढीले ढाले प्रकार का आंदोलन रहा है । जो अनेक समूह, राजनीतिक सिद्धान्त और कार्यक्रमों का समन्वित रूप था। नारी मुक्ति आंदोलन स्त्रियों को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं अन्य क्षेत्रों में पुरूषों के समकक्ष प्रस्थिति, अधिकार, सम्मान और उन्नति के अवसर उपलब्ध करवाने हेतु सक्रिय संघर्ष में विश्वास करता है।

महिलावाद की व्याख्या तीन ढंग से की गई है यथा- उदारवादी, मार्क्सवादी और उग्रवादी, उदारवादी परिप्रेक्ष्य के अनुसार लिंग असमानता मुख्यत: सामाजीकरण का परिणाम है जो पुरूषों और स्त्रियों के संबंध में व्यक्तियों के विकृत एवं हानिकारक विचारों की उत्पन्न करता है । इसके साथ-साथ कुछ सांस्कृतिक प्रथाएं भी है जो लैंगिक असमानता के लिए उत्तरदायी है, मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य महिलावाद को सीधे पूंजीवादी तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था से जोडता है। रेडिकल परिप्रेक्ष्य के अनुसार लिंग असमानता अज्ञान तथा स्वतंत्रता के अभाव के कारण और न ही पूंजीवाद के कारण है अपितु यह तो पुरूषों द्वारा स्त्रियों पर प्रभुत्व, नियंत्रण और शोषण के उनके सामूहिक प्रयासों का प्रतिफल है।

महिलावाद ने समाजशास्त्र को भी महत्त्वपूर्ण रूप में प्रभावित किया है। अनेकानेक महिलाओं को अब उन्हे अपने शैक्षणिक कार्य के लिए सम्मान दिया जाने लगा है । यही नही बल्कि पुरूष केन्द्रित समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में महिलावादी आलोचनाओं को भी स्थान दिया जाता है । उदाहरणार्थ- अपराध के सिद्धान्त में महिलाओं की दृष्टि से ही अध्ययन विश्लेषण किया जाने लगा है। महिलाओं के

जीवन से संबंधितशोध में पिछले वर्षो में काफी वृद्धि हुई है। लैंगिक असमानता को लेकर कई सिद्धान्त। विकसित हुए जिनमें यौनभेद, लिंगभेद, पितृसत्तात्मकता और लैंगिक भूमिकाओं जैसी अवधारणाओं का प्रचुरमात्रा में प्रयोग किया गया है। यही नहीं महिलावादी आंदोलनों को संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1975-85 के दशक को महिलाओं के नाम समर्पित करने के लिये प्रेरित कर महिलाओं की समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

7.4 नारीवादी दृष्टि कोण की परिभाषा

नारीवाद ऐतिहासिक सांस्कृतिक वास्तविकताओं की जागरूकता, पूर्णता क्रियान्वित के स्तर पर आधारित है। नारीवाद स्थानीय परिस्थिति और मुद्दो पर निर्भर करता है। 17वीं शताब्दी की स्थिति और मुद्दे और 20 सदी की स्थिति और मुद्दो में अन्तर है। दूसरा, विश्व के प्रत्येक भाग प स्थिति और मुद्दे, प्रत्येक काल में अलग-अलग होते हैं। प्रत्येक देश में महिला वर्ग में दूसरों पर निर्भरता। उसकी पृष्ठ भूमि, शिक्षा का स्तर, जागरूकता अलग-अलग है। ऐसे मे नारीवाद उनके समान मुद्दों को बहस करता है, सोचता है पितृसत्तात्मक के अस्तित्व, पुरूष प्रधानता के विरूद्ध शोषण विहिन समाज, की कल्पना के लिए जागरूकता लाना चाहता है, विशेषकर जाति वर्ग, नस्ल और लिंग के आधार पर।

परिभाषा -

समाज कार्यस्थल और परिवार में व्याप्त शोषण के विरूद्ध महिलाओं में लाने और इन परिस्थितियों में बदलाव लाने के लिए सक्रिय आंदोलन ही नारीवाद है।

पितृसत्तात्मक नियंत्रण, शोषण और मातृत्व के विरूद्ध और महिला श्रमिक, और लैंगिकता के प्रति वैचारिक स्तर के दृष्टिकोण से पारिवारिक दृष्टि से, कार्य स्थल और में सामान्य और वर्तमान परिस्थितियों में महिला और पुरूषों के मध्य रिश्तों में जागरूकता लाने का करना ही नारीवाद है।

सामान्य अर्थो में लैंगिकवाद के अस्तित्व में विश्वास करना, पुरूष प्रधानत्व और अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाना ही नारीवाद हैं। सम्पूर्ण विश्व में महिला के प्रति पोषाहार,भोजन, स्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा रोजगार एवं सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक व आर्थिक संस्थाओं के निर्णयों में भागीदारी करने मे असमानता का अनुभव किया गया है। इसके विरूद्ध आवाज उठाने के रूप नारीवाद को जाना जाता है।

प्रश्न यह नही है कि पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं के साथ हो रहे दुर्व्यवहार के प्रति कैसे संघर्ष किया जाये? महिला स्वयं अपने शिक्षित होने का निर्णय लें। वे अपने जीवन को सुधारने, अपने लिए राह ढूंढने, मानवीय अत्याचारों से बचने, पर्दे से निकलने को प्रयास करें, यही एक समन्वित प्रयास हो सकता है। यही यह प्रयास करना होगा कि पुरूष महिलाओं का मददगार हो।

आज के नारीवाद और प्रारम्भ के नारीवाद में सबसे बड़ा अंतर अपने लोकतांत्रिक अधिकारो की प्राप्ति के लिए संघर्ष करना है। जिसमें शिक्षा के अधिकार, रोजगार का अधिकार, सम्पति का अधिकार वोट का अधिकार, संसद में प्रवेश का अधिकार, जन्म नियंत्रण का अधिकार, तलाक का अधिकार आदि। अभी तक नारीवाद अपने कानूनी सुधार, समाज में समान कानूनी स्थिति परिवार के अंदर, या बाहर के

लिए संघर्ष से सम्बन्धित था। आज नारीवाद महिलाओं का मुक्तिवाद उद्धार एवं कल्याण के रूप में कार्य कर रहा है । नारीवाद का उद्देश्य परिवार में पुरूषों की अधिनस्थता, शोषण, धार्मिक सभा, देश व सांस्कृतिक, दृष्टि से कमजोर स्तर होने के विरूद्ध तथा उत्पाद और पुर्नउत्पाद के क्षेत्र में दोहरे भार के विरूद्ध संघर्ष करना है। साथ ही नारीत्व और शारीरिक शक्ति तथा जैवकीय वर्ग के आधार पर भी बताने के विरूद्ध चुनौतियों को स्वीकारना है। आज नारीवाद समानता, प्रतिष्ठा, महिलाओं के इच्छा की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत है। नारीवाद सामाजिक, राजनीतिक अधिकारों के क्षेत्र में समानता की पैरवी करता है।

डच नारीवादी ससिका वेरिगा ने कहा है- "नारीवाद महिलाओं को लैंगिक प्रतिनिधित्व के रूप मे पहचान दिलाने की प्रक्रिया है।" इस आधार पर कह सकते है नारीवाद आलोचना न ही अपितु कई स्तर पर, राजनीतिक और नैतिक व्यवहारों का रूपान्तरण है।

आक्सफोर्ड डिक्शनरी एण्ड यूजेज गाइड टू द इंग्लिश लेग्वेज- (न्यूर्याक प्रेस 1945) में परिभाषित किया है "महिलाओं के अधिकार एवं लैंगिक समानता के सिद्धान्त से सहमत विचारधारा की वकालत करने वाले एवं उनका समर्थन, अनुकरण करने वाले नारीवादी कहलाए। द न्यू पेंग्युइन इंग्लिश डिक्शनरी (न्यू दिल्ली) में नारीवाद महिलाओं के अधिकार, अभिरूचि एवं पुरूष के बराबर विशेषकर राजनैतिक आर्थिक और सामाजिक सहभागिता के क्षेत्र में समर्थन करता है। इस आधार पर हम कह सकते है- नारीवाद अधिकार एव लैंगिक समानता की वकालत करता है।

आईये! जाने लिंग भेद क्या है?

लिंग भेद

समाज की संरचना, संगठन और व्यवस्था में लिंग की समानता और असमानता का विशेष महत्त्व हैं। लिंग की असमानता पर समाज के संरचनात्मक संस्थागत और संगठनात्मक ढ़ाचे का प्रभाव पड़ता हैं। लिंग की असमानता भी समाज के सन्तुलन व्यवस्था और विकास को प्रभावित करती है। लिंग की असमानता किसे कहते हैं? इस समानता के कारण कौन-कौन से हैं? लिंग की असमानता के कारण स्त्री और पुरूष में किसका शोषण हो रहा है। असमानता का शिकार कौनसा वर्ग (स्त्री वर्ग या पुरूष वर्ग) है।लिंग के अनुसार समाज की धारणाएं क्या है? भेद भाव के क्षेत्र कौन-कौन से है? संवैधानिक अधिकारों और उनके व्यवहारों में कितना अन्तर है?

7.5 लिंग की परिभाषा एवं अर्थ

लिंग और यौन अवधारणाएं एक दूसरे से सम्बधित हैं इसलिए लिंग और लिंग भेद को यौन और यौन भेद की परिभाषा के रूप में कह सकते हैं- "प्राकृतिक विज्ञान में विशेष रूप प्राणी विज्ञान में स्त्री पुरूष के जैविक लक्षणों का वैज्ञानिक अध्ययन करते है। इनका जैविक और पुर्नजन्म कार्यो पर ही ध्यान केन्द्रित रहता है। सामाजिक विज्ञान में विशेष रूप से समाज शास्त्र में स्त्री पुरूषों का अध्ययन लिंग भेद के आधार पर किया जाता है। जिसका तात्पर्य है कि उन्हें सामाजिक अर्थ प्रदान किया जाता है। स्त्री और पुरूष का अध्ययन सामाजिक सम्बन्धो को गहराई से समझने के लिए किया जाता है। योनि भेद जैविक सामाजिक

है और लिंगभेद सामाजिक सांस्कृतिक हैं। यौनि भेद शीर्षक से अर्थ स्त्री-पुरूष का नर मादा के बीच विभिन्नताओं तथा लिंग भेद से अर्थ है- "स्त्री और पुरूष के बीच सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक सांस्कृतिक व शैक्षणिक असमानता का होना।

स्त्रियों का समाज में स्थान - किसी भी संस्कृति में महिलाओं की प्रस्थिति क्या रही, उन्हे क्या-क्या अधिकार दिये गये और उनसे किन-किन भूमिकाओं की अपेक्षा की जाती है? भारत की 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में स्त्रियों की संख्या 49,5738,169 है जबकि पुरूषों की संख्या 53,12,77,078 है अर्थात् पुरूषों की तुलना में वे जनसंख्या में कम है, 2001 के अनुसार पुरूष साक्षरता दर 75.96 प्रतिशत और महिला साक्षरता दर 54.28 प्रतिशत है। भारतीय विशेषत: हिन्दू समाज में स्त्रियों की स्थिति कॉफी उच्च रही है। उन्हे शक्तिशाली और सम्पत्ति का प्रतीक माना जाता रहा है, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती के रूप में उनकी पूजा होती है। ऐतिहासिक काल पर दृष्टि डाले तो वैदिक और उत्तर वैदिक काल में स्त्री की स्थिति पुरूषों के बराबर "यंत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' की मानी गई पुरूषों के समान उन्हे अधिकार दिये गए। धीर-धीरे स्मृति काल, धर्म काल, मध्यकाल में उनकी स्थिति में बदलाव आया उसके अधिकार। छिनते गए और स्त्री को तुरन्त निर्बल और निस्सहाय मान लिया गया। अंग्रेजी शासन में उन पर ध्यान दिया गया समाज सुधारकों ने सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्र में उसे सबल बनाने के अनेक प्रयास किए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्त्रियों की दशा में काफी सुधार हुआ है, किन्तु अमीर भी इस दिशा में पूर्ण सफलता नही मिली।

7.6 लिंग असमानता के कारण

जैसा कि हम खण्ड के प्रथम इकाई में पड़ चुके है कि ईसा से 300 वर्ष पूर्व लेकर 1947 तक स्त्रियों की स्थिति निम्न से निम्नतम होती चली गयी जिसके कारण उसमें असन्तोष व्याप्त हो गया। जैसे स्त्री शिक्षा की उपेक्षा, बाल विवाह, कन्यादान, वैवाहिक, कुरीतियाँ पुरूषों पर निर्भरता, संयुक्त परिवार व्यवस्था ब्राहामणवाद मुसलमानों के आक्रमण आदि के कारण अनेक पारिवारिक और वैवाहिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई। विधवा पुनर्विवाह पर रोक, दहेज, विवाह विच्छेद पर निषेध, बेमेल विवाह, अन्तर्जातीय विवाह पर रोक, बहुपत्नी विवाह, पर्दा प्रथा जैसी समस्याएँ थी। कुछ पारिवारिक समस्याओं ने भी असन्तोष व्याप्त किया स्त्री की सम्पत्ति में अधिकार न देना परिवार में पुरूष प्रधानता परिवार में स्थिति न होना असन्तोष का कारण बनें।

भेद अवधारणा

विभिन्न लिंगियों के बीच संबंधों के सामाजिक पक्ष के संदर्भ में लिंग एक ऐसी अवधारणा है जो जैविकीय यौन भेद से अलग की जाती है। पिछले कुछ वर्षो में सामाजिक विज्ञानों में लिंग के सामाजिक पक्ष का उसके जैविकीय पक्ष से अलग कर जेण्डर के रूप में उसे समझने अध्ययन करने की एक नई शुरूआत हुई है। अन्न ओकले (सेक्स जेण्डर एण्ड सोसाइटी- 1972) समाजशास्त्र में सेक्स शब्द को महत्त्व दिया, के अनुसार सेक्स का तात्पर्य पुरूषों एवं स्त्रियों का विभाजन से है तथा जेण्डर का अर्थ स्त्रीत्व एवं पुरूषत्व के रूप में समानान्तर और सामाजिक रूप में विभाजन से है। अत: जेन्डर की अवधारणा स्त्रियों और पुरूषों के बीच सामाजिक रूप में निर्मित भिन्नता के पहलुओं का ध्यान आकर्षित

करती है । किन्तु आजकल जेन्डर का प्रयोग व्यक्तिगत पहचान और। व्यक्तित्व को इंगित करने के लिए ही नहीं किया जाता, अपितु प्रतीकात्मक स्तर पर इसका प्रयोग सांस्कृतिक आदर्शो तथा पुरूष एवं स्त्रीत्व संबंधीरूढ़िबद्ध धारणाओं और संरचनात्मक अर्थो में संस्थाओं और संगठनों में लैंगिक श्रम विभाजन के रूप में भी किया जाता है।

सन् 1970 के आसपास लिंग भेद के अध्ययन में समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक रूझान पैदा हुआ। अभी तक लिंग भेद को मात्र स्त्री एवं पुरूष में जैविकीय भित्रता के रूप में ही देखा जाता था तथा पुरूषत्व और स्त्रीत्व के बारे में महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक विचार रूढि बद्धता से ग्रस्त थे जिनकी यथार्थता से बहुत दूरी थी। बाद में लिंग भेद तथा स्त्रियों और पुरूषों की भूमिका संबंधी विचारो में भिन्न संस्कृति के कारण भारी अंतर आया संरचनात्मक स्तर पर घरेलू श्रम विभाजन संबंधी वितरण बडी असमानता प्रदर्शित हुई। विभिन्न समाजों में लैंगिक संबंधोंके भिन्न स्वरूप है। ऐतिहासिक काल प्रजातांत्रिक और जातीय समूहों, सामाजिक वर्ग और पीढ़ीयों में ! फिर भी, पुरूषों और स्त्रियों के बीच अंतर के मामले में सभी समाजों में समानता है यद्यपि यह अंतर की प्रकृति में काफी सामाजिक मित्रताएं है। लिंग भेद से संबंधित एक सर्वाधिक समान विशेषता लिंग असमानता की है। सामाजिक जीवन के कई क्षेत्रों में लिंग भेद की विचारधारा और तार्किक धारणाओं तक ही सीमित नहीं है। बल्कि घर, लैगिंक श्रम विभाजन से लेकर श्रम बाजार तक राज्य की व्यवस्था में, काम भावना में, हिंसा की रचना में और सामाजिक संगठन के कई पक्षों मैं, लैगिंक सम्बन्धों की रचना होती है।

7.7 लिंग भेद के सिद्धान्त

विश्वस्तर पर लिंग भेद के निम्न सिद्धान्त उभर कर आये हैं-

1. उदारवादी नारीवाद सिद्धान्त
2. आमूल परिवर्तनवादी नारीवाद सिद्धान्त
3. समाजवादी मार्क्सवादी नारीवाद सिद्धान्त.

अन्य सिद्धान्त में -

1. रूढ़िवाद सामाजिक जीववादी
2. काली अश्वेत महिलाओं के विचार
3. उत्तर आधुनिकतावाद
4. द्वि व्यवस्थावादी सिद्धान्त
5. आर्थिक महिलावाद
6. भौतिकवादी महिलावाद

आईये इन सिद्धान्तों का स्वरूप देखें-

लैंगिक सम्बन्धों में कठोर व अत्याचार क्यों व कैसे पनप रहे है? शिक्षा में लैंगिक भेद सिद्धान्तों द्वारा इस बात को विश्लेषित किया गया है। इन्हे वापस सुधारने के लिए विद्यालय अपने स्तर पर क्या भूमिका निभा सकते हैं। इन कृत्यों में सुधार लाने के लिए वो कौनसी व्यूह रचना हो जिसे अपनाने से लैंगिक सम्बन्धों में सामान्य रिश्ते बन सकें। विश्लेषण करने पर पाया जाता है कि उदारवादी परिवर्तनवादी समाजवादी, उत्तर संरचनावादी आदि सिद्धान्तों के द्वारा समाज में महिलाओं के दोयम दर्जे एवं पुरूष महिला सम्बन्धों में आ रही कटुता को दूर करने के लिए समन्वित प्रयास किए जा सकते है। इन सिद्धान्तों के द्वारा ऐतिहासिक दृष्टिकोण बने हैं। इन सिद्धान्तों का निर्माण समायानुसार हुआ। सामाजिक व्यवस्था सिद्धान्तों के प्रतिरोधात्मक तरीके व सैद्धान्तिक -वैचारिक एवं व्यावहारिक धाराओं में 1990 तक संघर्ष चलता रहा तथा अस्तित्व के लिए संघर्ष करते रहे। फिर भी यह सिद्धान्त आज भी शिक्षकों के समाजीकरण में प्रभावी भूमिका निभा रहे है।

लिंग भेद: नारीवादी शिक्षा

लिंग के आधार पर शिक्षा में विभेद शिक्षा के प्रारम्भ स्तर से हो जाता है एवं सम्पूर्ण शिक्षा प्रक्रिया में चलता रहता हैं, अधिकांश देशों में पुरूष एवं स्त्री में विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर विभिन्न विषयों में उपलब्धि पृथक्क होती है। यद्यपि माना जाता है कि लिंग विभेद का जन्म बाल्यावस्था के दौरान परिवार में ही प्रारम्भ हो जाता है किंतु विद्यालय ही वह मुख्य संस्था हो जाता है जो असमान शैक्षिक उपलब्धियों के लिए जिम्मेदार है। कोनिल व अन्य (1982) ने बताया कि विद्यालय लिंग संबंधी विचारों का निर्माण व पुननिर्माण करता है। जिससे कि स्त्रियों में अधीनस्थ स्तर के बारे में निरंतर सुदृढ़ है। यह तथ्य कि अनेक देशों में स्त्री अब विद्यालयों में अधिक वर्षो तक रूक सकती है। इसका अर्थ यह नही है कि लिंग भेद समाप्त हो गया है।

पाठ्यक्रम निर्माण विद्यालय संगठन एवं प्रत्येक विद्यालयी स्तर पर लिंग सम्बन्धों में रिश्तों में सुधार विश्वास पैदा करने के लिए इस सिद्धान्तों में निरन्तरता सामूहिक एवं निजीगत की आवश्यकता महसूस की गई है। शिक्षा में समानता लाने के लिए लिंग संवेदी पाठ्य चर्चा का एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है !

उदारवादी नारीवाद सिद्धान्त

उदारवादी नारीवाद एक विचारधारा है जो व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा कल्याण महत्त्व में विश्वास करते है तथा जो इस बात पर बल देती है कि सामाजिक संगठन में परिवर्तन तथा द्वारा सम्भव है। उदारवाद का विकास 16 वीं व 19 वीं शताब्दी में जीवन के विभिन्न पक्षों राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक स्तर पर व्यक्तिगत स्वतंत्रता हेतु आंदोलन के स्वरूप मैं हुआ। इस विचार धारा प्रजातंत्र के विकास सार्वभौमिक मताधिकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, दास प्रथा की समाप्ति तथा नागरिक अधिकारों में वृद्धि का समर्थन किया। यह विचारधारा सरकार अथवा समृद्ध वर्ग द्वारा व्यक्तियों पर प्रभुत्व प्रतिकार करती है।

शिक्षा के दृष्टिकोण से उदारवादी नारीवाद अभी शुरूआती अवस्था में है जो राजनैतिक व वैधानिक रूप से कानूनों में परिवर्तन के लिए संघर्ष कर रहा हैं। उदारवादी इस बात पर बल देते है कि सभी बालकों को समान अवसर दिए जाए, इनके लिए समान दक्षताएं व उद्देश्य हों इनका विचार हैं कि ये विभिन्न विशेष रूप से महिलाओं के समूहों की उपलब्धि और सफलताओं में वृद्धि हो। पाठ्यक्रम को इसका माध्यम

मानते हैं। ये समाजवादी नारीवादियों की तरह पाठ्यचर्चा को पुरूष प्रधान नही मानते हुए एक समान पाठ्यक्रम पर बल देते हैं। वे वर्तमान में स्थापित संरचनाओं को ही उपलब्धि प्राप्त करने का माध्यम मानते हैं। शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश को प्राथमिकता का आधार देने के लिए विधि निर्माण संरचना एव व्यावहारिकता में वित्तीय व्यवस्थाओं के संदर्भ में प्रक्रिया के संबंधमें बात कहते हैं। इसके लिए संघर्ष पर जोर देते हैं। वह यह भी मानते है कि अधिकतर "शक्ति'' संघर्ष पर लग रही है। इसके लिए सोच में बदलाव की बात की है।

प्राथमिक से उच्च माध्यमिक शिक्षा तक तो ज्यादा अंतर नही पाया गया, विश्वविद्यालयी शिक्षा में अंतर बढ़ गया है। उन्होनें विषयों के निर्धारण पर भी कानूनी दावपेच को स्वीकारा कई विषय चयन प्रवेश में लिंग भेद दिखाई दिया है। उन्होने व्यावसायिक प्रेक्टिस करने पर भी जोर दिया है तथा साथ ही इनके अवसर मिलने की बात कही है।

उदारवादियों की सबसे बड़ी समस्या वैचारिक और व्यावहारिक तौर पर महिलाओं की विश्व में पहचान बनाने में पुरूषों के हस्तक्षेप व प्रधानता बताई है। वे पुरूषों की शक्ति की तुलना में महिलाओं को कमजोर मानते हुए उनके संबलन की बात स्वीकारते हैं। (वाकडाउन 1989)।

नारीवादी विचारधारा में लिंग विभेद

'लिंग' और 'जेंडर' के भेद को स्पष्ट करना नारीवादी चिन्तन का एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। सैक्स शब्द पुरूष और स्त्री के बीच एक जैविक अर्थ की तरफ इशारा करता है जबकि जंडर का ताल्लुक उसके साथ गुंथे सांस्कृतिक अर्थों से है। नारीवादी विमर्श के लिहाज से इस फर्क को स्पष्ट करना बहुत महत्त्वपुर्ण है, क्योंकि महिलाओं की अधिनता को मोटे तौर पर स्त्री-पुरूष के बीच जैविक फर्क के आधार पर ही ठहराया जाता है। ऐसे दार्शनिक तर्क मौजूद हैं जो तमाम तरह के उत्पीड़नों को कुदरती या प्राकृतिक कहकर जायज ठहराते हैं। इस तर्क के अनुसार जो कुदरती है वह अपरिवर्तनीय भी है, लिहाजा जायज है। ऐसे तर्क को जैविक निर्धारणवाद कहा जाता है।

जति व्यवस्था और नस्लवाद इस प्रवृत्ति के दो बढ़िया उदाहरण हैं, क्योंकि दोनों विचारधाराएँ इसी मान्यता पर आधारित हैं कि व्यक्तियों के कुछ समूह पैदाहशी तौर पर श्रेष्ठ हैं, और यह कि उनकी बौद्धिक क्षनता और निपुणताएँ शेष लोगों से अधिक विकसित हैं इसलिए समाज में उनकी उच्चतर हैसियत और सत्ता जायज है। जैविक निर्धारणवाद ही महिला उत्पीड़न को भी सदियों से वैधता प्रदान करता है। इसलिए जैविक निर्धारणवाद को चुनौती देना नारीवादी राजनीति के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण है।

मार्गरेट मीड जैसी अग्रणी नारीवादी मानवशास्त्रियों ने दिखाया है कि पुरूषत्व और नारीत्व की अवधारणाएं विभिन्न संस्कृतियों से अलग-अलग हैं। दुसरे शब्दों में, न केवल अलग-अलग समाज कुछ खास विशिष्टताओं को पुरूषत्व और कुछ दूसरी विशिष्टताओं को नारीत्व के साथ जोड़कर देखते हैं, बल्कि विभिन्न संस्कृतियों में भी ये विशिष्टताएँ अलग-अलग होती हैं। इसलिए नारीवादियों का मानना है कि स्त्री-पुरूष की जैविक संरचना और पुरूषत्व व नारित्व के साथ जोड़कर दिखाए जाने वाले लक्षणों के बीच कोई अनिवार्य सहसम्बन्ध नहीं है। बल्कि यह बच्चों के लालन-पालन की प्रक्रिया है जो लिंगों के बीच कुछ विशेष विभिन्नताओं को स्थापित और पुष्ट करता है। यानी, बचपन से ही, लड़कों और

लड़कियों को जेंडर भेद के अनुरूप व्यवहार करना, कपड़े पहनना, खेलना आदि सिखाया जाता है। यह प्रशिक्षण निरन्तर और अधिकांशत: बेहद सूक्ष्म होता है, लेकिन जरूरत पड़ने पर बच्चों को विशेष जेंडर के अनुरूप् साँचे में ढ़ालने के लिए सजा भी दी जा सकती है। इसलिए नारीवादीयों का तर्क है कि सेक्स विशिष्ट लक्षण(मसलन बहादुरी और आत्मविश्वास को ''पौरूष'' और संवेदनशीलता और शर्मीलेपन को 'नारीत्व' के रूप में देखाना) और उनके साथ समाज द्वारा जोड़े जाने वाले मूल्य उन संस्थाओं और विश्वासों के अमल से पैदा होते हैं जो लड़कों और लड़कियों का अलग-अलग तरीके से समाजीकरण द्वारा उन्हें अपनी-अपनी भूमिकाओं के लिए तैयार करते हैं। जैसा कि सिमॉन द बुआ ने कहा है, औरत पेदा नहीं होती है, बना दी जाती है।

इसके अतिरिक्त, विभिन्न समाज आमतौर पर 'पौरूष' की विशिष्टताओं को नारीत्व की तुलना में कहीं अधिक सम्मान देते हैं, और इसके साथ-साथ यह भी सुनिश्चित करते हैं कि जो स्त्री-पुरूष इन सब मानकों पर पूरी तरह खरे नही उतरते हैं उन्हें निरन्तर 'उचित' व्यवहार के साँचे में ढ़ालने की प्रक्रिया चलती रहे। मिसाल के तौर पर यदि कोई पुरूष तमाम लोगों के सामने रोकर अपना दुख अभिव्यक्त करता है तो उसे ताने दिए जाते हैं कि, 'औरतों की तरह रो राह है?' और भला सुभद्र कुमरी चौहान की वे झकझोरने वाली पंक्तियाँ किसे याद नहीं होंगी, 'खुब लड़ी मर्दानी वो तो झाँसी वाली रानी थी'। इस पंक्ति का क्या अर्थ निकलता है? वास्तविकता में यह उस सूरत में भी जबकि एक औरत ऐसे अपरिमित शौर्य और वीरता का प्रदर्शन कर रहीं है, उसके इस गुण को 'नारी सुलभ' गुण नहीं माना जा रहा है - यानी कुल मिलाकर बहादुरी का गुण पुरूषों की ही विशेषता कहलाता है, फिर भले ही कितनी भी औरतें बहादुरी का प्रदर्शन करती रहें और कितने ही पुरूष पीठ दिखाकर भाग खड़े होते रहें।

इसलिए लिंग के आधार पर श्रम-विभाजन में 'प्राकृतिक' कुछ भी नहीं हैं। परिवार के भीतर और बाहर स्त्री और पुरूष अलग-अलग तरह के काम करते हैं, इस तथ्य का उनकी जैविक संरचना से कोई लेना-देना नहीं है। केवल गर्भधारण की प्रक्रिया ही प्राकृतिक है जो वास्तविक है। इसके अलावा घर के भीतर के सभी काम जो औरतों के ही जिम्मे माने जाते हैं।-

खाना बनाना, साफ-सफाई, बच्चों की देखभाल (यानी, वे तमाम काम जिन्हें हम अपनी सुविधा के लिए 'घरेलू का' कह सकते हैं) वगैरह को पुरूष भी उतनी ही दक्षता से कर कसते हैं। लेकिन इन कामों को 'ओरतों का काम' कहा जाता है। लिंग के आधार पर श्रम विभाजन वेतनभोगी कामों के 'सार्वजनिक'दायरे तक भी फैला हुआ है, और यहाँ भी इसका 'सेक्स' (जैविक संरचना) से कोई सम्बन्ध नहीं है बल्कि यह महज 'जेंडर' (संस्कृति) पर आधारित हैं कुछ किस्म के कामों को 'औरतों का काम' माना जाता है, और दूसरे किस्से का कामों का मर्दो का, लेकिन इससे भी ज्यादा अहम बात यह है कि औरतें जो भी काम करती हैं वह उसके लिए कम वेतन पाती हैं और उस काम की अहमियत भी कम मानी जाती है। मिसाल के तौर पर, नर्सिंग और अध्यापन (विशेषकरत निचले स्तरों पर) को कुल मिलाकर स्त्रियों का पेशा माना जाता है और इसके लिए उन्हें ज्यादातर मध्यमवर्ग द्वारा हथियाए जाने वाले सफेदपोश रोजगारों के मुकाबलें कम वेतन दिया जाता है। नारीवादी विचारक संकेत करती हैं कि अध्यापन और नसिर्ंग जैसे कार्यो का यह महिलाकरण इसलिए कर दिया गया है, क्योकि इन कामों को

मोटे तौर पर उनके द्वारा घर के भीतर किए जाने वाले लालन-पालन जैसे कार्यों के ही विस्तार के रूप में देखा जाता है।

तथ्य यह है कि लिंग के आधार पर श्रम विभाजन के पीछे 'प्राकृतिक' या 'जैविक' असमानताएँ नहीं हैं बल्कि इसकी जड़ में कुछ विचारधारात्मक मान्यताएँ हैं। इसीलिए एक तारफ तो औरतों को शारीरिक रूप् से कमजोर और भारी शारीरिक श्रम के लिए अनुपयुक्त माना जाता हैं औरतों को शारीरिक रूप् से कमजोर और भारी शारीरिक श्रम के लिए अनुपयुक्त माना जाता है वहीं दूसरी तरफ घर के भीतर और बाहर सबसे भारी काम वही करती हैं जैसे कि पानी और जलावन के बड़े-बड़े गट्ठर ढ़ोना, चक्की में अनाज पीसना, धान की रोपाई, खदानों और निमार्ण कार्यों के ईंट-गारे और दूसरे वजनों को सिर पर ढ़ोना वगैरह। लेकिन, इसके साथ ही, जब औरतों द्वारा किए जाने वाले कामों का मशीनीकरण हो जाता है जिससे वह काम आसान भी हो जाते है और उनके लिए पारिश्रमिक भी बढ़ जाता है, तब उस नई मशीनरी के इस्तेमाल करने का प्रशिक्षण पुरूषों को दिया जाता है और औरतें हाशिये पर धकेल दी जाती हैं। ऐसा सिर्फ फैक्ट्रियों में ही नहीं होता है बल्कि समुदाय के भीतर पारम्परिक रूप् से औरतों द्वारा किए जाने वाले कामों में भी ऐसा ही होता है। मसलन जब हाथ की चक्की की जगह बिजली की चक्की लेती है, या जब मछली पकड़ने के लिए औरतों द्वारा हाथ से बनाए जाने वाले जालों की जगह मशीन निर्मित नाइलॉन के जाल ले लेते हैं तो इन कामों को सँभालने के लिए पुरूषों को प्रशिक्षित किया जाता है और औरतों और भी कम पारिश्रमिक वाले और कहीं ज्यादा थकाऊ शारीरिक कामों में धकेल दी जाती है।

दूसरे शब्दों में, औरतों की मौजूदा अधीनता, अपरिवर्तनीय जैविक असमानताओं से नही पैदा होती हैं बल्कि यह ऐसे सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों, विचारधाराओं और संस्थाओं की देन है जो महिलाओं की वैचारिक तथा भौतिक अधीनता को सुनिश्चित करती हैं। इसलिए नारीवादी विचारक लिंग भेद आधारित काम यानी लिंग के आधार पर श्रम विभाजन, और उससे भी ज्यादा आधारभूत स्तर पर, यौनिकता और प्रजनन के प्रश्न को एक ऐसे विषय के रूप् में देखती हैं जिसे 'जैविक संरचना' जो प्राकृतिक और इसलिए अपरिवर्तनीय मानी जाती है, के दायरे से बाहर रहकर देखा जाना चाहिए। नारीवादी एजेंड़ा इन मुद्दों को 'राजनीतिक' दायरे में स्थापित करने का है, जो संकेत करता है कि उन्हें बदला जाना चाहिए।

आमूल परिवर्तनवादी (अतिवादी) समाजशास्त्र

1960 के आसपास समाजशास्त्र के क्षेत्र में एक नवीन परिप्रेक्ष्य का उदय हुआ । होर्टन 1969, सिजमन्सकी (1970),डियुच (1970), कोलेफक्स मेक्डॉनल्ड, जेकरोच ने इस कहा है । इसी परिप्रेक्ष्य के एक भिन्न रूप को हौटेल (1967), ग्लास एवं स्ट्रास 1972 तथा 1973 ने लूमनिष्ट सोसिआलोजी का नाम दिया । एल्विन गोल्डनर 1970 मे इसे रेफ्लेक्सि व सोसिआलॉजी का नाम दिया तथा बिनरबॉम ने 1971 तथा एण्डरसन ने क्रिटिकल सोसिअलॉजी के नाम से पुकारा ।

आमूल परिवर्तनवादी समाजशास्त्री सी.डी. मिल्स ने इसे बलवान के विरूद्ध कमजोर, शोषक के विरूद्ध शोषित तथा वर्गो के अधिकार के विरूद्ध जनता के अधिकारों को समर्थन कर ने वाला बताया । इससे - संघर्ष सिद्धान्त माना गया है । इसका जन्म संरचना प्रकार्यवादी सिद्धान्त की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ है । उनका मानना है कि संरचना प्रकार्यवाद ने परिप्रेक्ष्य यथास्थिति वाद का द्योतक तथा परिवर्तन को

नकारता है । यह सिद्धान्त समाज में राजनीतिक साधनों द्वारा वृहद संरचनात्मक परिवर्तनों की आवश्यकता है और इन परिवर्तनों के लिए हिंसात्मक एवं क्रांतिकारी कदमों को भी उठाने की आवश्यकता पड़ती है तो उनका प्रयोग किया जाना चाहिए। समाज शास्त्रीय ज्ञान का प्रयोग समाज में आवश्यक परिवर्तन लाने तथा समाज के नव निर्माण के लिए किया जा सकता हैं। यह शाखा उन वर्गो के अध्ययन पर ज्यादा जोर देती है जो शोषित एवं उपेक्षित रहे हैं। वे न समाज को वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग से सुधार सम्भव मानते और न ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में संतुलन एवं निरंतरता की धारणा में विश्वास करते हैं। वे समतावादी समाज की रचना हेतु अतिवादिता तथा जन सहयोग की आवश्यकता पर विश्वास करते हैं।

पुरूषों के अस्तित्व की तुलना महिलाओं के पक्ष के तर्क को अनुसुना किए जाने की बात कहता है। वे सामाजिक संरचना के कथनी और करनी में अन्तर पाते हैं। मोई (1985 पृ 29) बताते है कि समाज में पुरूषों का भय क्यों ? स्वतंत्रता यदि तर्क के आधार पर जागरूकता के साथ संघर्ष किया जाए तो दूर नहीं है। नारीवाद यह महसूस करता हैं कि प्रभुता व नस्ल आधारित नारीवाद मानवीय मनोविज्ञान का सोच है। हमे इस सोच से आगे सोचना होगा।

महिलाओं को कुछ पाने के लिए, अपने अस्तित्व के लिए स्वयं हो करना होगा। हाँ, प्रकृति आधारित विभिन्नताओं को स्वीकारते हुए अभिव्यक्ति, स्वतंत्रता व समानता की बात करनी होगी। पुरूष-महिला के मध्य गुणात्मक विभिन्नताओं को देखते हुए अच्छे गुणों की साम्यता होनी चाहिए।

बेकर व डेविस (1989) ने माना है कि लक्ष्य के लिए लड़के-लड़कियाँ सैद्धान्तिक पढ़ाई एक सी करते हैं। एक सा पाठ्यक्रम पढ़ते है, लेकिन व्यावहारिक पक्ष के आधार पर समाज विद्यालय में लैंगिक आधार पर विभिन्नता उत्पति लगती है, बदलाव की मूल आवश्यकता यहीं है। कन्टेन्ट, कोर्स में बदल विधि के आधार पर, कौशल विकास, शिक्षा के प्रति समान पैदा करने से तथा स्वयं के ऊर्जावान होने से ही बदलाव आएगा वे गणित, विज्ञान व तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ पाएगी। वे गणित विज्ञान व तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र उपलब्धि प्राप्त करेंगी। आमूल परिवर्तनवादियों ने सोच को बदल की बात कही व्यक्तिगत और सामूहिक संघर्ष के माध्यम से तथा विभित्र स्तरों के अनुभवों के आधार पर व सतत् अनुभव पर पुरूषों को संकेतात्मक मानते हुए दोनों ध्रुवों की तरह माना वे दोनों में वैचारिक जुड़ाव व संघर्ष की बात कही (डेविस 1990 बी)। इन्होने अपने आंदोलनों को वैचारिक आधार पर पुरूष-नारी के समेकित प्रयास पर जोर दिया। व्यक्तिगत जीवन जीने के तरीके को केन्द्रित करते हुए बहस जारी रखने पर जोर दिया।

रेडिकल फेमिनिज्म एवं शिक्षा

ये पाठ्यचर्चा पर नियंत्रण करने एवं सैद्धानिक रूप से लिंग विरोधी सिद्धान्तों पर आधारित बताया। लेखन नवाचार पर अधिक बल देते हुए रूढिवादी व परम्परागत तरीकों का विरोध किया। उन्होने पाठ्यक्रम में नारीवादी विषय वस्तु को सम्मिलित करने पर जोर दिया। जिसमें स्वतंत्रता समानता व अधिकारों की पाठ सामग्री पर जोर दिया। 1990 में केन वे और वेलिस द्वारा आपसी अन्त: किया व सम्पर्क पर जोर देने, बड़े पदों पर महिलाओं की उपस्थिति विशेषतया अधिकतम प्रवेश पर जोर दिया।

मार्क्सवादी समाजशास्त्रीय सिद्धान्त

मार्क्स राजनीतिक अर्थव्यवस्था की एक समीक्षा के आधार पर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त को देखता है। सर्वप्रथम निकोलई बुखारिन ने अपनी पुस्तक "हिस्टोरिकल मटेरियलिज'' (1921) में और बाद में मैक्स एडलर ने मार्क्स के विचारों में अन्र्त निहित सामान्य समाजशास्त्र की खोज की। मार्क्स ने तत्कालीन सामाजिक विज्ञानों में समाज की उत्पत्ति विकास एवं पतन की व्याख्या के लिए नवीन अवधारणाओं तथा गवेषणा की विधि को विकसित किया उनका बाद में इतिहास, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र पर काफी प्रभाव पड़ा। मार्क्स ने अपने सामाजिक विश्लेषण में प्रणाली, उत्पादन के साधन, आर्थिक सरंचना, अधिसंरचना, वर्ग,वर्ग-चेतना वर्ग-संघर्ष, भौतिकवाद अनेक अवधारणाओं का प्रयोग कर उन्हे नया अर्थ प्रदान किया।

समाज की यथास्थितिवादी विश्लेषण का विरोधी है सामंजस्य एवं ' की अपेक्षा संघर्ष की प्रक्रिया इसका दार्शनिक आधार है। यही कारण है कि सामाजिक व्यवस्था की विशेषता के रूप में यह विचार धारा स्थायित्व की अपेक्षा परिवर्तन को अधिक महत्त्व देती है। इनकी मुख्यत: सामाजिक घटनाओं की खोज एवं व्याख्या करने, आर्थिक कारकों की भूमिका, वर्गो के आपसी सम्बन्धो और अन्तर सामूहिक संघर्ष जैसी विषय रहे है।

मार्क्सवादी समाजशास्त्र का भौतिकवादी आयाम आर्थिक निर्धारणवाद प्रश्रय देता है। इसके अनुसार किसी भी समाज की आर्थिक संस्थाएँ अन्य सामाजिक संस्थाओं तथा की अन्तर्वस्तु का निर्धारण करती है। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या बहुधा आदर्शवादी दर्शन की है। इसके अनुसार विचार अथवा मानसिक स्थितियाँ इतिहास के प्रमुख तत्व है। द्वन्द्वात्मक आयाम का मूल यही हैं। सामाजिक परिवर्तन क्रांतिकारी तथा दोआयामों के द्वन्द्व के, फलस्वरूप उत्पन्न होता है।

नारीवादीमूलक सामाजिक सिद्धान्त

बीसवीं शताब्दी के नारीवादी मूलक सामाजिक सिद्धान्त को एक सामाजिक" के रूप में शुरू हुए महिलावाद से न अलग किया जा सकता है और न ही पृथक्क रूप में समझा सकता है, नारीवादी आंदोलन की शुरूआत सन् 1920 में समान मताधिकार के मुद्दे को लेकर हुई थी जो बाद में संवैतनिक (नौकरी) कार्य के क्षेत्र और घरेलू कार्यकलापों कानूनी संबंधीऔर सांस्कृतिक प्रथाओं में मूलभूत लैंगिक समानता (जेण्डर इक्यिलिटी) के एक आमूल परिवर्तन वादी आंदोलन में बदल अत: नारी वादी मूलक सामाजिक सिद्धान्त का उदभव भी कई भिन्न रूपों में- उदारवाद, मार्क्सवाद और "आधुनिकतावाद में हुआ सामान्य रूप में नारीमूलक सामाजिक सिद्धान्त का उद्देश्य लैगिक भिन्नताओं और विशिष्ट रूप में पितृ सत्तात्मक सिद्धान्त के सन्दर्भ में समाज में महिलाओं की मातहत की स्थिति का समझना है। अमेरिका में महिलावाद को काले लोगो के नागरिक अधिकारों के संघर्ष के साथ जोड़ दिया गया?। इस राजनैतिक संघर्ष के द्वारा इस विचार का उदभव हुआ कि महिलाओं की अधीनस्थ स्थिति बहुत स्वरूप में साम्राज्यवादी शासन की दशाओं में काले लोगो और महिला मुक्ति समस्या का उपचार न केवल आर्थिक और राजनैतिक आधार पर अपितु मनोविज्ञान और संस्कृति के स्तर पर भी किये जाने की आवश्यकता है। पितृसतात्मकता के विरूद्ध इस महिलावादी आन्दोलन को सैनिकवाद के विरोध और

इस धरा के पर्यावरण विनाश सम्बंधी पारिस्थितिकीय समस्या के साथ भी जोड़ दिया गया। सामाजिक संस्तरण, प्रजातिवाद युद्ध, हिंसा और पर्यावरण विनाश को पुरूष की प्रभुत्व स्थापित करने की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता तथा पितृसतात्मक सामाजिक संगठन के प्रभावों के रूप मे देखा गया। सामाजिक सिद्धान्त के स्तर पर महिलावाद की कई शाखाओं के साथ जोड़ने के प्रयोग किये गये। एस.द.बुआ की द सेकिन्ड सैक्स (1949) एस.फायरस्टोल की द डायलेक्टिक्स ऑफ सेक्स. (1970) जी. गीट्र की द फिमेलयून्च (1970) जे. मिचैल की वुमने द लागेस्ट रिवोल्यूशन (1974)। सन् 1980 और 1990 के दशक में महिला मूलक सामाजिक सिद्धांत पर उत्तर संरचनावादी और आधुनिकतावादी विश्लेषण का प्रभाव पडा। उत्तर का अनुसरण करते हुए महिलामूलक सिद्धान्तकारों ने कहा है कि पारम्परिक महिलामूलक विश्लेषण उत्तरी अमेरिका और पश्चिमी यूरोप की श्वेत मध्यम वर्ग की महिलाओं से भरा पड़ा है। इसमें निम्न वर्ग ओर काली महिलाओं का नाममात्र का कहीं-कहीं जिक्र है। महिलावाद की तृतीय लहर ने सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य की अवहेलना करते हुए स्थानीय महिलाओं की समस्याओं को उजागर किया। इस संबंधमें एल. चोडसे की फेमिनिज्म एण्ड साइकोऐनेलेटिक थ्योरी(1989), वी हूक्स की फेमिनिस्ट थिऑरि (1984) और सी. वेडॉन की फेमिनिस्ट प्रेक्टिस एण्ड पोस्ट स्ट्रक्चरलिस्ट थिऑरि (1987) प्रमुख प्रकाशन है। कुछ उत्तर आधुनिक महिलावादी मानते है कि महिला उत्पीडन का पारम्परिक स्वरूप आज भी आधुनिक समाज में विधमान है।

महिलामूलक सामाजिक सिद्धान्त ने यौन भेद और लिंग भेद (जेण्डर), पितृसत्तात्मक शक्ति के विश्लेषण और सामाजिक वर्ग की अवधारणाओं के रूप में समाजशास्त्र पर एक सामान्य प्रभाव डाला है। इस सिद्धान्त ने पिछले वर्षो में पद्धति शास्त्र को भी प्रभावित किया है।

पश्च संरचना नारीवाद

सिद्धान्त और व्यवहार में सम्बन्धों को नया आधार दिया पाश्च संरचना नारीवाद, व्यक्तिगत मनोविचार में परिवर्तन स्वयं को अलग रखने के दोहराव की द्वैध की मानसिकता से परे विषय सामग्री की रचना में बदलाव, शारीरिक विभिन्नता को नहीं अपितु मानसिक समानता पर बल देते हैं। वे पुरूष और महिलाओं के रिश्तों में बदलाव की बात कही। वे व्यक्तिगत मनोरूप में तथा लैगिंग रिश्तों की इच्छा पर छोड़ते हैं।(डेविस 1990) वे अपनी इच्छा शक्ति, कार्यक्षमता व व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं को साकार करने के लिए आंदोलन के महत्वाकांक्षाओं को साकार करने के लिए आंदोलन के महत्त्व को मानते है। साहित्य, भाषा, अध्ययन सामग्री के माध्यम से चुनौती को स्वीकारने की बात करते है। 1980-1990 के मध्य प्रसिद्धि पायी। अधिकतर नारिवादियों ने इनका समर्थन नहीं किया।

सेक्स-जेंडर विभेद पर नारीवादी सोच में नए विकास

'सेक्स' और 'जेंडर' के बीच भेद करने के इस खास तरीके को पिछले सालों में नारीवादी विराकों ने पहले से कहं ज्यादा जटिल बना दिया है। हालांकि इस विभेद के बारे में ज्यादातर नारीवादियों के बीच मोटी-मोटी सहमति है लेकिन इस समझ को काफी हद तक संशोधित किया जा चुका है कि 'सेक्स' का सम्बन्ध प्रकृति से और 'जेंडर' का संस्कृति से है। मोटे तौर पर, नारीवादी सिद्धान्त के अन्तर्गत सेक्स/जंडर विभेद्र का जिस प्रकार विकास हुआ है, उसमें हम चार प्रमुख धाराएँ देख सकते हैं-

(क) एलिसन जैग्गर आदि विचारकों का मानना है कि 'सेक्स' और 'जेंडर' एक-दूसरे के साथ द्वन्द्वात्मक और अविभाज्य रूप् से सम्बन्धित हैं और नारीवादियों द्वारा शुरूआत में जो वैचारिक परिभाषा दी गई थी कि वह एक खास बिन्दु के बाद नहीं टिक पाती हैं। इस सोच में, मानव जीव विज्ञान का निर्माण शरीर, भौतिक वातावरण और प्रौद्योगिकी तथा समाज के विकास की अवस्था के बीच बेहद जटिल अंतर्सम्बन्ध से होता है। इसलिए जैसा कि जैग्गर कहती हैं, ''इंसान का हाथ श्रम का औजार ही नहीं, श्रम की उपज भी है।'' यहॉ इसका अर्थ है कि दोनों प्रक्रियाएँ एक-दुसरे से जुड़ी हुई हैं : मानवीय हस्तक्षेप बाहरी वातावरण को परिवर्तित करता है, और साथ ही, बाहरी वातावरण में होने वाले परिवर्तनों से मानव शरीर मे परिवर्तन और उसका स्वरूप् निर्धारित होता है। दो मायनों में यह बिलकुल सही है। एक, दीर्घकालिक उद्भव या विकास प्रक्रिया के सन्दर्भ में, जो हजारों साल तक अनवरत चलती रहती है यानी, दुनिया के विभिन्न हिस्सों में मानव शरीर-आहार, मौसम और किए जाने वाले कामों की विशिष्टता और विभिन्नताओं के चलते अलग-अलग रूपों और अलग-अलग तरीकों से विकसित हुए हैं।

दो, थोड़ा ज्यादा अल्पकालिक सन्दर्भ में, यानी एक जीवनकाल में। अब इस बात को तथ्य के रूप् में स्वीकार किया जा चुका हैं कि व्यक्ति के मनोमस्तिष्क और हॉर्मोन सन्तुलन में उद्विग्नता, शारीरिक श्रम और सामाजिक अन्तर्संबंधों के स्तर और स्वरूप् के कारण उसी प्रकार परिवर्तन आते हैं जिस प्रकार व्यक्ति के मनोमस्तिष्क और हॉर्मोन सन्तुलन के कारण सामाजिक व्यवहार और क्रियाओं में परिवर्तन आते हैं। मिसाल के तौर पर शरीर में कुछ खास रासयनिक परिवर्तनों से तनाव के विशिष्ट लक्षण दिखने लगते हैं, जिन्हें दवाइयों से सामान्य किया जा सकता है। लेकिन, इसी प्रकार, उच्च तनाव उच्च रासयनिक असन्तुलन का कारण हो सकता है और हो सकता है कि शरीर का सन्तुलन वापस पाने के लिए उसके वातावरण में ही बदलाव करना पड़े।

जैविक बनावट और संस्कृति के अंतर्संबंधों की इस समझ को अगर हम सेक्स/जेंडर विभेद पर लागू करें तो निष्कर्ष यही निकलता है कि महिलाओं के शरीर की बनावट भी सामाजिक बंधनों और सौन्दर्य के मानकों द्वारा निर्धारित की गई हैं। यानी 'शरीर' का स्वरूप् जिस हद तक 'प्रकृति' से निर्धारित हुआ है उतना ही 'संस्कृति' से भी। मसलन, पिछले दो दशकों के दौरान महिलाओं के एथलेटिक रिकार्डों में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। यह तथ्य अपने आप में इसी बात के संकेत है कि महिलाओं की शारीरिक बनावट को सामाजिक बन्धनों से बांध रखा था जिससे महिलाओं का शारीरिक विकास अवरूद्ध हो रहा था। नारीवादी मानवशास्त्रियों ने यह तथ्य भी उजागर किया है कि कुछ नृजातीय समूहों में औरत और मर्द के बीच शारीरिक असमानताएँ बेहद मामूली हैं। संक्षेप में, हमें इस तथ्य पर विचार करना चाहिए कि हमारे ऊपर दो समान रूप् से शक्तिशाली कारका प्रभाव डालती हैं- पहला, कई अन्तर्संबंधित प्रक्रियाओं के जरिए समाज सेक्स विभेद पेदा करता है और दूसरे सेक्स विभेदों के कारण समाज का एक खास ढाँचा पैदा होता है।

'सेक्स' कोई स्थायी, अपरिवर्तनशील आकार नहीं है जिस पर समाज जेंडर का निर्माण करता है, बल्कि सेक्स स्वयं ही कई बाहरी कारकों से प्रभावित होता है-प्रकृति और संस्कृति के बीच कोई साफ और अपरिवर्तनीय रेखा मौजूद नहीं है।

डस सन्दर्भ में डोरीथी डिन्नर्एटीन का यह कथन बहुत सटीक रहेगा-

''मनुष्य प्राकृतिक रूप् से ही अप्राकृतिक है। हम अभी भी, मिसाल के तौर पर, अपनी पिछली टाँगों पर 'प्राकृतिक रूप् से' चल नहीं पाते हैं। झुकी हुई पीठ, कमर दर्द और हर्निया जैसी व्याधियाँ इसी बात का सबूत हैं कि हम लम्बवत् शरीर मुद्रा के अभी भी अनुकूल नहीं हो पाए हैं। इसके बावजूद, उपकरणों के प्रयोग की लालसा के कारण अनिच्छुक शरीर पर थोप दी गई यह शरीर तत्व है जिसने हमारी 'प्रकृति' के महत्त्वपूर्ण आयामों - हाथ और मस्तिष्क और निपुणताओं की जटिल व्यवस्था, भाषा एवं सामाजिक व्यवस्था जो हाथ और मस्तिष्क की उपज और कारण दोनों है- का विकास किया है। इस प्रकार मानवनिर्मित और शरीर रचना सम्बन्धी बनावटं बेहद स्पष्ट रूप् से बताती हैं कि हम जो आज हैं वह स्वनिर्मित हैं और जब तक हमारा कुछ भी अस्तित्व शेष रहता है तब तक हमें इसी प्रकार आगे बढ़ते रहना होगा।''

(ख) सेक्स/जेंडर के बारे में दूसरे मत हमें रेडिकल नारीवादियों का हैं। वह आगाह करती हैं कि नारीवादीयों को अलग-अलग लिंगों के बीच जीव वैज्ञानिक भेद को कम करके नहीं आँकना चाहिए, और सारी असमनताओं को महज 'संस्कृति' के ही मत्थे मढ़ देना ठीक नही है। ऐसा करने का मतलब होगा पुरूष सभ्यता द्वारा स्त्री की प्रजनन भूमिका को कम करके आंकने की प्रवृति को स्वीकार कर लेना। यह उस उदारवादी नारीवादी समझ की आलोचना है जिसके अनुसार, एक आदर्श विश्व में पुरूष और स्त्री मोटे तौर पर एकसमान होंगे। रेडिकल नारीवादियों का दावा इसके उलट जाता है। उनकी दलील है कि पितृसत्तामक सामाजिक मूल्यों ने स्त्रीत्व के गुणों का अवमूल्यन किया है और नारीवाद की यह जिम्मेदारी है कि वह इन गुणों को वापस प्रतिष्ठित करे, क्योंकि उनके अनुसार स्त्री और पुरूष में यह असमानता बहुमूल्य है। सेक्स/जेंडर के सवाल पर रेडिकल नारीवादी सोच यह है कि पुरूष और स्त्री के बीच विशेष असमानताएं हैं जो उनके भिन्न जैविक प्रजन्न क्षमताओं के कारण पैदा हाती हैं, और इसीलिए स्त्रियाँ ज्यादा संवेदनशील, सहज और प्रकृतिक के निकट होती हैं। मिसाल के तौर पर रेडिकल नारीवादी सुजेन ग्रिफिन और एंड्रीया ड्वॉर्किन मानती हैं कि स्त्री का प्रजनन जीव-विज्ञान, यानी गर्भधारण की प्रक्रिया और मातृत्व का अनुभव, बाहरी दुनिया के साथ उनके सम्बन्ध को गहरे स्तर पर प्रभावित करता है। इसलिए, इस समझ के हिसाब से, महिलाएँ प्रकृति के नजदीक हैं और दुलार, पालन-पोषण और संवेदनशीलता के सन्दर्भ में प्रकृति के गुणों की वाहक हैं। पितृसत्तामक समाज इन गुणों को खारिज करता रहा है लेकिन नारीवादीयों को इन गुणों को स्वीकार करना चाहिए और इन्हें प्रतिष्ठा देनी चाहिए।

कैंरोल गिलिगन की पुस्तक 'इन ए डिफरेंस वोइस' इस दृष्टिकोण का एक बढ़िया उदाहरण है। एक मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का प्रयोग करते हुए वह तर्क देती हैं कि प्रारम्भिक दुलार देने वाली इकाई एक स्त्री (माँ) ही होती है (लिंग के आधार पर श्रम विभाजन के चलते) इसलिए स्त्री और पुरूष जिस प्रक्रिया से होकर वयस्कता तक पहुँचते हैं वह भिन्न होती है। लड़के वयस्कता की तरफ बढ़ते हुए अपनी माँ से भिन्नता की दिशा में विकसित होते हैं जबकि लड़कियाँ अपनी पहचान अपनी माँ के सन्दर्भ में ही देखती हैं। यानी, एक लिंगभेद आधारित समाज में, जहाँ सभी शिशु अपने आपको अपनी माँ के साथ जोड़कर देखते हैं, वहीं धीरे-धीरे लड़के यह महसूस करने लगते हैं की वह अपनी माँ से 'भिन्न' हैं जबकि लड़कियाँ महसूस करती हैं वह 'वैसी' ही जैसी माँ है। गिलिगन की दलील है कि इसका नतीजा यह होता है कि दुनिया के साथ स्त्रियों का जुड़ने का तरीका ज्यादा मनोगत, भावनात्मक और

सम्बन्धपरक होता है, जबकि पूरूषों का तरीका ज्यादा वस्तुपरक या भौतिक होता है। स्त्रियाँ दूसरे के साथ सम्बन्धों में स्वयं को देखती हैं जबकि पुरूष स्वयं को अलग देखते हैं। मिसाल के तौर पर, पुरूष और स्त्री मित्रताओं के स्वरूप् में भिन्नता को इस तथ्य के आधार पर समझा जा सकता है।

इस किताब में गिलिगन के शोध का मुख्य विषय स्त्रियों और पुरूषों द्वारा नैतिक निर्णय लेने के तरीकों में फर्क पर केन्द्रित है। उसका निष्कर्ष है कि महिलएँ सही और गलत के तार्किक कारकों से उतना प्रभावित नहीं होती हैं, जितना वह प्यार, सहानुभूति, चिन्ता या संवेदशीलता जैसे कारकों से होती हैं। दूसरी तरफ, पुरूषों का नैतिक निर्णय लेने का तरीका, इस बात पर आधारित होता है कि समाज किसे सही और किसे गलत मानता है। इस प्रकार गिलियन निष्कर्ष देती हैं कि पश्चिमी नैतिक दर्शन की आधारभूत श्रेणियाँ- तार्किकता, स्वायत्ता और न्याय आदि, (विश्व के) पुरूषों की दृष्टि से प्राप्त किए गए अनुभवों का प्रतिबिम्ब हैं और उनसे ही निकली हैं। यहाँ नारी अनुभव अदृश्य है। इस फर्क को न मानने का अर्थ है पितृसत्ता की मान्यताओं को मान लेना कि नारीत्व मूल्यहीन है।

इस सन्दर्भ में नोट करने लायक एक दिलचस्प बात यह है कि कुछ विद्वानों का मनना है कि पुरूषत्व/नारीत्व का संकीर्ण द्विध्रुवीय मॉडल और नारीत्व का अवमूल्यन आधुनिक पश्चिमी सभ्यता की विशिष्ट है। प्राक् आधूनिक भारतीय संस्कृतिक में विभिन्न प्रकार की यौन पहचानों के लिए कहीं अधिक व्यापक स्थान उलब्ध था -मसलन, उस काल में हिजड़ो के पास भी एक सामाजिक स्वीकार्यता मौजूद थी जो समकालन समाज में नहीं है। और सूफी और भक्ति परम्पराएँ उभयलैंगिकता पर आधारित थीं और वह अकसर द्विलिंगी मॉडल को खारिज करते थे। मिसाल के तौर पर बारहवीं सदी के कन्नड़ शैव मतावलम्बी कवि बासवत्रा की इन पंक्तियों को देखा जा सकता है :

यहाँ देखो, मेरे हमसफर

मैंने यह पुरूषों के कपड़े धारण किए हैं, सिर्फ तुम्हारे लिए।

कभी मैं पुरूष हूँ।

कभी मैं स्त्री हूँ......

दो शताब्दी पहले शिवभक्त कवि देवरा दासीमय्या ने लिखा था :

यदि स्तन और लम्बे बालों को देखते हैं,

ते वह उसे स्त्री कहते है,

अगर उन्हें ढ़ाढी मूँछ दिखाते हैं,

तो वह उसे पुरूष कहते हैं।

लेकिन भीतर देखा

इन दोनों के बीच जो आत्मा है

वह न स्त्री है, न पुरूष है.....।

ऐसे उदाहरण सभी भारतीय भाषाओं में पाए जा सकते हैं। एक विचार उत्तेजक तर्क आशीष नन्दी ने दिया है कि उपनिवेशवाद से पहले की भारतीय संस्कृतियों में नारीत्व को कहीं अधिक महत्त्व दिया जाता था। यह उपनिवेशवाद के आने के बाद ही हुआ कि पुरूषत्व की पश्चिमी प्रकार की समझ भारतीय समाज की भी पहचान बनने लगी। इस चाल से राष्ट्रवादी खेमा भी बचा नहीं रह सका। भारतीय संस्कृतिक को 'जनाना' या स्त्रैण' घोषित करने की कोशिशों के विरोध में उन्होंने भी घोषित करना शुरू कर दिया कि भारतीय संस्कृति भी उतनी ही 'मर्दाना' है जितना कि उनके विदेशी शासकों की थी। मिसाल के तौर पर, क्रान्तिकारियों की विचारधारा बेहद पुरूषत्वपूर्ण थी। नन्दी के अनुसार गाँधी के पूरे प्रयास की यह एक विशिष्ट बात थी कि उन्होंने 'पुरूषत्व' के बजाय 'नारीत्व' के गुणों को प्रतिष्ठा दी। उनके अनुसार यही वह गुण थे जिनमें उपनिवेशवाद का प्रतिरोध करने की शक्ति है-यानी उन्होंने आक्रामकता और हिंसा के ऊपर आध्यात्मिक और नैतिक साहस को महत्त्व दिया।

(ग) राज्य की एक अन्य नारीवादी आवधारणा रेडिकल नारीवाद के विपरीत दृष्टिकोण रखती है। जहाँ एक तरफ रेडिकल नारीवादीयों का मानना है कि सेक्स/जेंडर विभेद लिंग भेदों को कम महत्त्वपूर्ण बना देता है, वहीं उत्तर आधुनिक नारीवादियों का एक खेमा मानता है कि यह विभेद जैविक शरीर पर जरूरत से ज्यादा जोर देता है। उदाहरण के लिए जडिथ बटलर दलील देती हैं कि यदि 'जेंडर' सांस्कृतिक अर्थों का वह लबादा है जो एक 'सेक्स' जिस्म ओढ़ लेता है, तो ऐसा नहीं माना जा सकता है कि जेंडर किसी एक रूप् में 'सेक्स' जिस्म ओढ़ लेता है, तो ऐसा नहीं माना जाता सकता है कि जेंडर किसी एक रूप् में 'सेक्स' से निकलता है। वह कहती हैं कि 'जेंडर' एक पहले से दिए गए 'सेक्स' को प्रदान कर दिया गया सांस्कृतिक अर्थ या सन्दर्भ नहीं है, बल्कि, सोचने के एक तरीके और अवधारणा के रूप् में जेंडर जैविक सेक्स की श्रेणी को जन्म देता है। इस प्रकार बटलर, जैविक शरीरों और सांस्कृतिक रूप् से निर्मित जेंडरों के बीच एक 'तीव्र सम्बन्ध विच्छेद' का दृष्टिकोण देती हैं।

इस अवधारणा की विशिष्टता यह है कि इसके अनुसार 'स्त्री' नामक श्रेणी का तब तक कोई अस्तित्व नहीं है जब तक उसके बारे में कल्पना न की जाए या सोचा न जाए। जेंडर एक ऐसा अर्थ है जो सत्ता सम्बन्धों के माध्यम से निर्मित होता है और विशेष कायदे-कानूनों और प्रतिबन्धों के जरिए कई प्रकार की शरीरिक भिन्नताओंका गायब या अदृश्य कर दिया जाता है। ऐसे कायदे-कानूनों के जरिए कई प्रकार की शारीरिक विन्नताओं को गायब या अदृश्य कर दिया जाता है। मसलन, ऐसे शिशु जिनके में ऐसे विशिष्ट लक्षण नहीं होते हैं जिनके आधार पर उनके पुरूष या स्त्री होने के बारे में फैसला किया जा सकता है, या हिजड़े या ऐसे स्त्री-पुरूष जो अपने जेंडर के लिए स्वीकार्य वेशभूषा से इतर अलग वेशभूषा धारण करने लगते हैं। इन सभी को या तो हाशिये पर धकेल दिया जाता है या उन्हें पहले से मोजूद द्विलिंगी खाके में किसी-न- किसी तरीके से ढ़ाल लिया जाता है। ज्यादातर आधुनिक भाषओं में ऐसे मनुष्ययों के बारे में बोलने के लिए पर्याप्त व्यवस्था नहीं है जो दोनों में से किसी भी सेक्स के खाके में फिट नहीं हो पाते हैं। इसका अर्थ है कि भाषा 'वास्तविकता' को पहले से दिए गए खाके में स्थापित कर देता है और कई सम्भावनाओं को जन्म लेने से रोक देती है।

अमेरीका में अंतर्लिंगी शिशुओं (ऐसे शिशु जिनके शरीर में या डिंब ग्रन्थि ओर वृषण ग्रन्थि दोनों होती हैं या जिनके जननांग अस्पष्ट होते हैं) पर किए गए एक अध्ययन ने चौंकाने वाला निष्कर्ष दिया है। अध्ययन

के अनुसार ऐसे शिशुओं को इस या उस सेक्स के अनुरूप् बनाने के लिए जो चिकित्सकीय निर्णय लिए जाते हैं वह किसी मौजूदा जैविक लक्षणों के बजाय सांस्कृतिक मान्यताओं के आधार पर लिए जाते हैं। इस प्रकार एक शिशु को 'स्त्री' बना दिया जाता है, लेकिन इसके बाद उसे आजीवन 'स्त्री' ही बनाए रखने के लिए लगातार हॉर्मोन थैरेपी की भी जरूरत बनी रहती है। दूसरे शब्दों में, पुरूषत्व और नारीत्व न केवल सांस्कृतिक रूप् से भिन्न हैं बल्कि वे सदा जैविक रूप् में स्थिर रहने वाले पहलू भी नहीं है।

एलीसन जैग्गर भी ऐसे बच्चों पर किए गए एक अध्ययन की चर्चा करती हैं जिनके जन्म के समय उपरोक्त अस्पष्टता के कारण उनका सेक्स गलत निर्धारण कर दिया गया। जब उम्र पढ़ने पर बच्चे का वास्तविक 'सेक्स' उभरकर सामने आया तो अभिभावकों और डॉक्टरों ने आमतौर पर बचपन में बच्चें पर थोप दिए गए सेक्स को ही स्थापित करने के लिए सर्जरी करने को प्राथमिकता दी। बच्चे को बचपन में जो सेक्स दिया गया था, बच्चे का सेक्स उससे भिन्न है, इस तथ्य को सीधे-सीधे स्वीकार कर लेने के बजाय, तमाम मामलों में उपरोक्त समाधान को ही प्राथमिकता दी गई। दूसरे शब्दों में सालों तक दुरूह सांस्कृतिक 'जंडर' अनुकूलन से मुक्ति के स्थान पर 'सेक्स' बदलने के लिए सर्जिकल छेड़छाड़ को ज्यादा प्राथमिकता दी गई। मान लीजिए कि आपका तीन साल का एक बेटा है जिसे किसी वजह से आप डॉक्टर के पास ले जाते हैं और डॉक्टर जाँच-पड़ताल के बाद फैसला देता है कि आपका बेटा नर से ज्यादा स्त्री है। ऐसे में क्या आप इस तथ्य को स्वीकार कर पाएँगे कि आपके बेटा नहीं बेटी है। क्या आप सबको बताएँगे कि असलियत क्या है, क्या आप अपने बच्चे के बारे में जैसा सोचते हैं, जो वेशभूषा पहनाते हैं उसमें बदलाव कर पाएँगे, या अपने 'बेटा बनाए रखने के लिए सर्जरी को प्राथमिकता देंगे तथ्य यह है कि हमसें से कोई भी, बाद वाले विकल्प को ही चुनेंगे। इस सबसे अपरिवर्तनशील मानी जाने वाली 'प्राकृतिक' जैविक श्रेणी और परिवर्तनशील मानी जाने वाली' सांस्कृतिक' श्रेणी के बारे में हमें क्या पता चलता है? क्या ऐसा नहीं लगता कि कई बार संस्कृति जीव विज्ञान से ज्यादा ठोस है?

रूथ ब्लियर और एवेलिन फॉक्स केलर जैसी नारीवादी वैज्ञानिकों ने दलील दी है कि एक कठोर सेक्स/जेंडर विभेद जैविक सेक्स-यानी वह सेक्स जो शरीर विज्ञान, हारमोन या क्रोमोसोम के आधार पर तय हो जाता है-के अध्ययन को सीमित कर देता है। मानो इस श्रेणीयों का अध्ययन तो जैव चिकित्सकीय वैज्ञानिकों का काम है जबकि जेंडर का अध्ययन समाजविज्ञान का। ऐसी सोच के अन्तर्गत इस बात को दिया हुआ मान लिया जाता है कि जहाँ एक तरफ जेंडर के सांस्कृतिक आयाम परिवर्तित हो सकते हैं, वही शरीर एक अपरिवर्तित जैविक वास्तविकता के रूप् में बनी रहती है जिसे और आगे व्याख्या की कोई आवश्यकता नहीं है। ये नारीवादी वैज्ञानिक तर्क देती हैं कि इसके विपरीत, शरीर के विषय में हमारे विचार और अवधारणाएँ भाषा के माध्यम से बनते हैं और जैव चिकित्सा इस भाषा के प्रमुख उद्गम के रूप् में कार्य करता है।

नेली उड्शूर्न का शोध दिखाता है कि विभिन्न शताब्दियों में वैज्ञानिकों ने 'सेक्स' को भिन्न-भिन्न तरीकों से समझा है। प्राचीन ग्रीक वैज्ञानिकों से लेकर 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक, चिकित्सा शास्त्र में पुरूष और स्त्री शरीर को मूलत: समान हालाँकि कमतर ही माना जाता रहा है। स्त्री को पुरूष का कमतर रूप् मानने वाले, मानवता को इस 'एकलिंगी' मॉडल का चिकित्सा शास्त्र में हजारों साल तक पूरा बोलबाला रहा। 18 वीं सदी में जैव चिकित्सकीय विमर्श में सेक्सों के बीच समानता के बजाय असमानता पर जोर

दिया जाने लगा। मानव शरीर के प्रत्येक भाग को लिंग की पहचानों से जोड़ दिया गया, और शरीर विज्ञान के 'तथ्यों' (जैसे मस्तिष्क का छोटा होना) का प्रयोग करते हुए, महिलाओं को कम बुद्धिमान, निष्क्रिय वगैरह साबित किया जाने लगा। नारीत्व के 'मूलाधार', जिसके आधार पर स्त्री को पुरूष से भिन्न दिखाया जाता है, को अलग-अलग समय पर शरीर के अलग-अलग भागों में स्थित बताया जाता रहा है- मसलन 18 वीं सदी में गर्भाशय को स्त्रीत्व का केन्द्रबिन्दु माना गया, 19वीं सदी में डिम्ब ग्रन्थि को इसी सन्दर्भ मे सामने रखा गया। बीसवीं सदी तक आते-आते नारीत्व का मूल हॉर्मोन नामक पदार्थ में स्थापित माना जाने लगा।

सेक्स भेद की जड़ के बारे में सोचने के लिए अब शरीर की हॉर्मोन सम्बन्धी अवधारणा का सबसे ज्यादा प्रचलन है। उड्शूर्न जिस तरफ इशारा कर रही हैं वह यह है कि शरीर की हॉर्मोन आधारित अवधारणा में मौजूदा द्विलिंगी मॉडल से बच निकलने का रास्ता मिल सकता है। यदि शरीर में पुरूष और स्त्री दोनों के हॉर्मोन मौजूद हैं तो स्पष्ट है कि पुरूषत्व और नारीत्व के गुण सिर्फ किसी एक प्रकार के शरीर तक सीमित नहीं है। लेकिन जैव चिकित्सा विज्ञानों में ऐसा दर्शाने की प्रवृति बढ़ती जा रही है कि पुरूष के बजाय स्त्री शरीर ही पूरी तरह हॉर्मोनों से नियन्त्रित होते हैं। इस प्रक्रिया में चिकित्सा व्यवसाय और अरबों डॉलर के दवाई उद्योग के बीच साँठ-गाँठ साफ उभरकर सामने आने लगी है। महिलाओं के जीवन में दिखाई पड़ने वाले तमाम'विकारों' जैसे किझुरियाँ पड़ना, अवसाद, मासिक धर्म सम्बन्धी अनियमितताओं आदि के लिए हॉर्मोन थैरेपी की सलाह दी जाती है। ऐसी दवाइयाँ खर्चीली तो हैं ही, मगर उससे भी ज्यादा परेशान करने वाला तथ्य यह है कि यह दवाई उद्योग के लिए बेहद फायदेमंद है कि उम्र बढ़ने पर झुरियाँ पड़ने जैसी अवस्थाओं को भी बीमारी माना जाने लगे और अवसाद, जिसके कारण सामाजिक संरचना में मौजूद हैं, को भी दवाइयों से ठीक करने की कोशिशें की जाती हैं माना वह विशुद्ध शारीरिक समस्या हो। यदि औरतों को यह अहसास दिला दिया जाए कि बुढ़ापा 'नारीत्वहीनता' है, कि उनका अवसाद उनको दुत्कारे जाने या बेहताशा काम के बोझ से नहीं बल्कि उनके भीतर की ही किसी विकृति की देन है तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मुनाफे में कमी का कोई खतरा नहीं रहेगा।

ऐसी नारीवादी प्रस्थापना इस विचार को खारिज करती है कि शरीर के बारे में तथ्यों को सिर्फ खोज निकाला जाना है। इसके बजाए, यह समझना जरूरी है कि वैज्ञानिक तथ्य समाज और सेस्कृति में गहरे तक पैठे हुए है। स्वयं सेक्स भी मानव व्यवहार की निर्मिति है।

(घ) सेक्स/जेंडर विभेद के बारे में एक चौथी किस्म की अवधारणा 'जेंडर'को विभिन्न पहचानों-जाति, वर्ग, नस्ल, धर्म आदि-में स्थिर करने पर आधारित है। इसका अर्थ होगा 'स्त्री'की जैविक श्रेणी के हित, जीवन परिस्थितियाँ या लक्ष्य साझा हों, ऐसा होना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार की समझ दुनिया भर में महिला आन्दोलन के राजनीतिक व्यवहार से उपजी है जिसने लगातार दिखाया है कि 'स्त्रियाँ' एक पहले से मौजूद समूह नहीं हैं, जिन्हें महिला आन्दोलन अपने बूते पर सीधे-सीधे संगठित कर सकता हो। इसका अर्थ है कि महिलाएँ स्वयं को सिर्फ और यहाँ तक कि सिर्फ प्राथमिक रूप् से भी जेंडर के सन्दर्भ में ही नहीं देखती हैं बल्कि श्वेत-अश्वेत, मुस्लिम या दलित या किसान के रूप् में भी देखती हैं। इसलिए अनेक मामलों में औरतों को महिला आन्दोलन की तुलना में अन्य आन्दोलनों के जरिए कहीं ज्यादा आसानी

से संगठित किया जा सकता है। ऐसे आन्दोलनों के उदाहरण के तौर पर धार्मिक आन्दोलन को लिया जा सकता है।

भारत के सन्दर्भ में समान आचार संहिता पर बहस इसका एक बढ़िया उदाहरण है। सभी धार्मिक समुदायों के निजी कानून हैं जो विवाह, तलाक, उत्तराधिकार और बच्चों के अभिभावकत्व जैसे मुद्दों पर महिलाओं के साथ भेदभाव करते हैं। इसलिए, महिलाओं को नागरिक के रूप् में समान अधिकार प्रदान करने वाली समान आचार संहिता की माँग महिला आन्दोलन द्वारा 1937 में उठाई जाती रही है। मगर 80 के दशक से बढ़ती साम्प्रदायिकता और धार्मिक अल्पसंख्यकों में बढ़ती असुरक्षा के चलते महिला आन्दोलन के अधिकांश हिस्सों में इस राय पर सहमति बनती जा रही है कि समुदायों को राज्य द्वारा पारित किए गए कानूनों का अनुसरण करने के लिए बाध्य करने के बजाय महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं रही हैं जैसी स्वतन्त्रता के फौरन बाद थी। साम्प्रदायिक हिंसा में उसकी भूमिका को भी शक की नजर से देखा जाने लगा है, और अब उसे महज प्रगतिशील पविर्तन का वाहक या माध्यम नही माना जा सकता है।

इसके अलावा राजनीतिक रूप् से सक्रिय सभी महिलाएँ नारीवादी हों, यह जरूरी नहीं है। हो सकता है उनमें से अनेक, उसी सत्ता संरचना के हितों का प्रतिनिधत्व करती हों जिनके विरूद्ध भारत का महिला आन्दोलन जन्मकाल से संघर्ष करता रहा है। इस प्रकार, हमें हिन्दु दक्षिणपंथी राजनीति और निम्न जातियों के विरूद्ध चलने वाले मंडल कमीशन विरोधी आन्दोलनों जैसे आन्दोलनों में भी कई महिलाएँ सक्रिय दिख सकती हैं। दूसरे शब्दों में, इस समझ में, नारीवादी सेक्स/जेंडर विभेद में पहचान के अन्य तरीकों को भी शामील किया जाना चाहिए।

सन्दर्भानुसार, हम नारीवादीयों को कुछ मामलों में जातिय या वर्गीय पहचान को लैंगिक पहचान से ऊपर रखना पड़ सकता है, ठीक उसी तरह जैसे कि हम मार्क्सवादियों या दलित राजनैतिक कार्यकर्ताओं से उम्मीद करते हैं कि कुछ सन्दभोर् में वे लिंगीय पहचान को वर्गीय या जातीय पहचान से ऊपर रखें।

इस तरह, नारीवादियों द्वारा किया गया मूल सेक्स/जेंडर विभोद नारीवादी राजनीति के चलते लगातार जटिलतर होता गया है। बहरहाल, इसके बावजूद, महिलाओं के अधीनीकरण की किसी भी नारीवादी समझ के लिए, इस विभेद का केन्द्रीय महत्त्व बना रहेगा।

नारीवादी सिद्धान्त : तुलना

नारीवादी ने जेंडर पहचान के निर्माण के विषय में अनेकानेक विचार प्रदान किए हैं और महिलाओं की शक्तिहीनता, उत्पीड़न तथा अधीनीकरण की व्यवस्थित सैद्धान्तिक व्याख्या दी है। हाल के वर्षों में नारीवाद ने कई नई अवधारणाओं को उठाया है जिसके चलते उसके मूल उद्देश्य के विषय में आसानी से गलतफहमियाँ पैदा हो सकती हैं। इन वर्षों में नारीवाद कई विचारधाराओं में बँटता गया और बिलकुल अलग-अलग परिकल्पनाओं और पहलूओं को प्रतिबिम्बित करता है।

उदारवादी नारीवाद, मार्क्सवादी-समाजवादी नारीवाद और उग्र नारीवाद तीन उल्लेखनीय विचारधाराएँ हैं जिनकी ज्यादा चर्चा की जाती है। इनके अतिरिक्त, अश्वेत नारीवादी भी हैं जो इन विचाराधाराओं से व्यापक सवायत्तता का दावा करती हैं, जिसका वास्तविक आशय यही हैं कि वे विचारधाराएँ नस्ल

आधारित शोषण को नजरअन्दाज करती हैं। अराजकतावादी नारीवादियों ने भी अपनी विशिष्ट भिन्नता बनाए रखी हैं, और वे अराजकतावाद के अधिनायकवाद विरोधी तर्क में आस्थ रखती हैं। इसी प्रकार पर्यावरणीय नारीवादी, महिलाओं को प्रकृति, पर्यावरण और पृथ्वी के प्रति चिन्ताओं के साथ जोड़ते है।

नारीवाद महिला उत्पीड़न के विभिन्न पहलुओं को समझने की दिशा में प्रयासरत एक गतिशील और निरन्तर परिवर्तन होने वाली विचारधारा है जिनमें व्यक्गित, राजनीतिक और दार्शनिक पहलू भी शामिल हैं, लेकिन, जो एक विचार इन सभी नारीवादी दुष्टिकोणों में समान है, वह यह है कि यह सभी मौजूद स्त्री-पुरूष सम्बन्धों को बदलने की दिशा में केन्द्रित हैं। दूसरे शब्दों में, ये सभी विचारधाराएँ इस तथ्य से पैदा होती हैं कि न्याय के लिए महिलाओं को स्वतंत्रता व समानता दी जानी आवश्यक है। लेकिन कई दार्शनिक प्रश्नों पर इनके बीच गहरे मतभेद भी हैं, मसलन, स्वतंत्रता व समानता का स्वयप् कैसा हो, राज्य के कार्य कौन से हैं, मावन स्वभाव (विशेषकर महिलाओं के विषय में) का निर्माण कैसे होता है, जिसे या तो सामाजिक ऐतिहासिक परिस्थितियों की उपज माना जाता है या जीव वैज्ञानिक रूप् से निर्धारित माना जाता है। इसलिए नारीवाद की राजनीतिक रूप् से प्रभावी शाखाएँ बदलाव के लिए अलग-अलग रणनीतियों में विश्वास रखती है: क्योंकि महिला उत्पीड़न के कारणों के विषय में उनका दृष्टिकोण अलग-अलग है।

एक महत्त्वपूर्ण मुद्दे को सभी नारीवादी विचारधाराओं ने सम्बोधित किया है, ‘सार्वजनिक निजी’का भेद, जिसे पश्चिमी दर्शन में मुख्य धारा का स्ािािन प्राप्त है, परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्तों ने मानव अस्तित्व के निजी और सार्वजनिक दायरों के बीच हमेशा फर्क किया है। यौनिकता, बच्चा पैदा करना और बच्चों का पालन-पोषण ‘निजी’दायरे में आते हैं, क्योंकि इन कामों को प्राकृतिक माना जाता है। इसलिए, इस दृष्टिकोण के अनुसार, परिवार जैसी सेंस्थओं को राज्य हस्तक्षेप के कार्यक्षेत्र से बाहर माना जाता है। नारीवादी इस समझ पर सवाल खड़ा करते हुए तर्क देती हैं कि मूलत: परिवार ही वह स्थान है जहाँ स्त्री का उत्पीड़न सबसे अधिक होता है। सार्वजनिक निजी विभाजन को स्वीकार करने के कारण समाज से उत्पीड़न को वैधता मिल जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि इस ‘निजी’क्षेत्र को भी न्याय, समानता और स्वतन्त्रता के उन्हीं मूल्यों की कसौटी पर कसा जाना चाहिए जिन्हें सार्वजनिक दायरे में लागू किया जाता है।

विभिन्न नारीवादी परम्पराओं में इस विभाजन को अलग-अलग रूपों में जगह दी गई है लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि यह विभाजन उन सभी में समान रूप् से महत्त्वपूर्ण है। उदारवादी नारीवाद ने जेंडर विभेदीकरण को समाजीकरण की उपज के रूप् में देखा है, और इसलिए उन्होंने महिला समानता के लिए सफल अभियान चलाया है, हालाँकि उनकी माँगें कानूनी सुधारों और समान अवसरों की उपलब्धता के प्रश्न तक सीमित दिखाई देती हैं। वह मौजूद जेंडर असमानता, जिसके कारण महिलाओं के सामने उपलब्ध विकल्प सीमित हो जाते हैं कि गहनतर संरचनाओं में विफल रही हैं। यह परम्परा विभिन्न नरमपंथी समूहों में आज भी कायम है। अमेरिका में नेशनल ऑर्गेनाइजेशन फॉर विमेन इसी परम्परा का वाहक है, और उसकी राजनीति महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए कानूनी सुधारों की लड़ाई तक सीमित है।

उदारवादी नारीवादी दूसरी दोनों नारीवादी विचाराधाओं यानी मार्क्सवादी समाजवादी और रेडिकल नारीवदी दोनो की ही आलोचना की शिकार रही हैं। मार्क्सवादी समाजवादी और रेडिकल नारीवादियों की नजर में उदार नारीवादियों की समस्या यह है कि वह मौजूदा परिवार व्यवस्था का पर्याप्त प्रतिरोध नहीं करती हैं और केवल औपचारिक समानता से सन्तुष्ट हैं। इस तरह, उदारवादी नारीवादी पूँजीवाद और पितृसत्ता की भौतिक और गहरे पैठी असमानताओं की अनदेखी करता है। दूसरे शब्दों में, उदारवादी नारीवादी समाज में जेंडर उत्पीड़न की गहरी जड़ों को प्र्याप्त रूप् से समझने में विफल रही हैं। दूसरी तरफ मानवता के मार्क्सवादी और रेडिकल नारीवादी संस्करणों में स्त्री के वास्तविक स्वभाव के दमन या अस्वीकार्यता के लिए पूँजीवादी और पितृसत्तात्मक समाज की संरचनाओंको जिम्मेदार माना जाता है।

पितृसत्ता को समझने के अपने प्रयासों में रेडिकल नारीवादियों ने 'व्यक्गित और राजनीतिक'आलोचना का काफी प्रयोग किया है। वह सत्ता के पूरे प्रश्न को व्यक्तिगत क्षेत्र में स्थापित करती हैं और निजी/सार्वजनिक विभाजन को पूरी तरह खारिज करती हैं। 'व्यक्तिगत ही राजनीतिक है'का नारा रेडिकल नारीवादियों का एक बहुचर्चित नारा है।

मार्क्सवादी नारीवादी भी मानती हैं कि महिलाओं का उत्पीड़न मूलत: परिवार में उनकी परंपरागत स्थिति के कारण होता है। लेकिन, रेडिकल नारीवादीयों से भिन्न उनका जोर श्रम पर रहता है। यानी कि महिलाओ को सार्वजनिक उत्पादन से बाहर कर दिया जाता है जिसके कारण वह घर की निजी दुनिया में घरेलू कामों में बंधकर रह जाती हैं। उदारवाद की मार्क्सवादी आलोचना के समान अवसरों के सतही वायदे पर आधारित महिलाओं की असमानता की जड़ों को पहचानने का अवसर उपलब्ध कराती प्रतीत होती है।

यहाँ तक कि सार्वजनिक जीवन में भी महिलाएँ एक निम्न वर्ग का निर्माण करती है-

डनके वेतन कम होते हैं, हैसियत कमजोर होती है और प्रभाव का अभाव होता है। लेकिन पूँजीवाद की आलोचना के तौर पर, मार्क्सवाद भी प्रजनन और लिंग के आधार पर श्रम विभाजन को उतनी गम्भीरता से नहीं लेता है और महिलाओं को मुख्त: श्रम प्रक्रिया के सन्दर्भ में ही देखता है। इस प्रकार मार्क्सवादी भी पितृसत्ता को पूँजीवादी व्यवस्था के लिए लाभकारी से अधिक नहीं मानते हैं। मार्क्सवादी नारीवादी इससे परे भी जाती हैं, और हालांकि वह यह दावा नहीं करती हैं कि महिला उत्पीड़न पूँजीवाद की उपज है, लेकिन वह यह जरूर मानती हैं कि पूँजीवाद महिलाओं के उत्पीड़न को सघनता देता है, और पूँजीवाद के बने रहने के लिए इस उत्पीड़न में इजाफा जरूरी हैं। दूसरे शब्दों में, मार्क्सवादी नारीवादीयों के अनुसार, पूँजीवाद और पुरूष वर्चस्व एक-दूसरे को पुष्ट करते हैं। 'पूँजीवादी पितृसत्ता'शब्द जिल्लाह आईज़न्सटीन ने दिया था। मार्क्सवादी/समाजवादी नारीवादी मानती है कि मार्क्सवादी आलोचना अपने सैद्धान्तीकरण में सीमित है, क्योंकि पूरा विमर्श पुरूष द्वारा स्त्री के यौन उत्पीड़न की तुलना में पूँजी को ही ज्यादा उत्पीड़क और दोषि मानता है जो कि इतना उचित नहीं है।

सत्तर के दशक में समाजवादी नारीवादीयों ने पारिवारिक श्रम पर बहस की शुरूआत की और परम्परागत मार्क्सवाद की यह कहते हुए आलोचना की कि उन्होंने पूँजीवाद को बनाए रखने में महिलाओं के पारिवारिक श्रम की भूमिका की अनदेखी की है। सार्वजनिक उत्पादन पर ध्यान केन्द्रित करने के जरिए,

घर के भीतर किए जाने वाले श्रम के महत्त्व और आर्थिक मूल्य को नकार दिया गया था। समाजवादी नारीवादीयों ने कहा कि स्त्री के घरेलू श्रम ने पुरूष और पूँजीवाद दोनों को लाभ पहुँचाया है। घर के भीतर, स्त्री का अवैतनिक श्रम दो चीजें कराता है-

(क) देखभाल और भोजन आदि बनाने के कारण पुरूष श्रमिकों को दैनिक श्रम, और

(ख) बच्चा जनने और उसके लालन-पालन के जरिए भविष्य की श्रमशक्ति। यहाँ वह सन्दर्भ था जिसमें मारिया रोजाइ, डाला कास्टा और सलमा जेम्स जैसी नारीवादीयों ने घरेलू श्रम के लिए वतेन का प्रश्न उठाया था।

इस बहस ने सपष्ट कर दिया कि परम्परागत मार्क्सवाद को इसलिए अपर्यापत कहा जा सकता है। कि इसने सामाजिक तथा सांस्कृतिक या यौन उत्पीड़न का महज आर्थिक शोषण का प्रतिबिम्ब माना था। इससे भी बढ़कर स्वयं अर्थव्यवस्था के विषय में उसका सैद्धान्तीकरण भी काफी संकीर्ण था। इसलिए मार्क्सवाद को परिवार में महिला के श्रम के विषय में विश्लेषण करना चाहिए। उसे इस प्रश्न का उत्तर खोजना चाहिए कि पारिवारिक श्रम से किसको लाभ होता है। लिंग के आधार पर श्रम विभाजन में स्त्री पूँजीवाद और पुरूष दोनों की सेवा करती है।

उदारवादी और मार्क्सवादी सोच के बरकस रेडिकल नारीवाद सैद्धान्तिक दृष्टि से कापी अभिनव रहा है। उसने राजनीतिक और सिद्धान्त दोनों की परम्परागत परिभाषाओं को खारिज किया है जबकि सभी पिछले राजनीतिक सिद्धान्तों की पितृसत्तात्त्मक कहते हुए निन्दा की है। मार्क्सवादी सोच से भिन्न, इसने स्त्री को पहले से मौजूद राजनीतिक फ्रेमवर्क में स्थित करने के प्रयास न करके, समाज के विषय में हमारे पूरे दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास किया है जिससे उसे स्त्री केन्द्रित अर्थो के बिलकुल नए साँचे में पुनर्संयोजित किया जा सके। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत पहचानों को पुन: परिभाषित करना, भाषा और संस्कृतिक को उनके वर्तमान स्वरूप् से बाहर निकालना, राजनीतिक सत्ता को विस्थापित करना, मानव स्वभाव का पुनर्मूल्यांकन करना और परम्परागत मूल्यों को चुनौती देना रहा है। रेडिकल नारीवादियों ने स्त्रीत्व (जिसे पितृसत्ता निम्नता मानती है) को पुरूषों से अलगाव में सामाजिक संगठन के एक वैकल्पिक आधार के रूप् में एक नया मूल्य प्रदान किया है।

रेडिकल नारीवादी उदारपंथी नारीवादियों की इस दलील को खारिज करती हैं कि महिलाओं के उत्पीड़न का आधार उनके राजनीतिक नागरिक अधिकारों के अभाव में निहित है। इसी प्रकार वह इस क्लासिकल मार्क्सवादी विश्वास को भी अस्वीकार करती हैं कि महिलाएँ इसलिए उत्पीड़ित हैं, क्योंकि वह एक वर्ग समाज में रहती हैं। रेडिकल नारीवादी मानती हैं कि महिलाओं के उत्पीड़न की जड़ में जैवकीय कारण प्रमुख हैं, और पुरूषों द्वारा स्त्री का शारीरिक अधीनीकरण ऐतिहासिक रूप् से, निजी सम्पत्ति और उससे सम्बन्धित वर्ग उत्पीड़न के उदय से पहले, उत्पीड़न का मूल रूप् रहा है। हालाँकि रेडिकल नारीवादी मानती हैं कि जेंडर विभेदीकरण की जड़े जैविक रूप् से निर्धारित हैं मगर वह यह तर्क भी देती हैं कि दोनों की स्थितियों में फर्क सामाजिक संरचना की देन है और यह फर्क पितृसत्ता के तहत असामान्य रूप् से बढ़ जाता है। केवल पितृसत्ता को नष्ट करके ही उत्पीड़न के अन्य रूपों को समाप्त किया जा सकता है। इस प्रकार रेडिकल नारीवाद ने वोट और कानूनी सुधारों के लिए उदार नारीवादी संघर्ष के साथ-साथ

पूँजीवाद के विरूद्ध मार्क्सवादी संधर्ष को भी एक पूर्ण यौन क्रान्ति (जो परम्परागत यौन पहचानों को नष्ट कर देगी) की माँग से विस्थापित कर दिया है।

उदारपंथी और समाजवादी/मार्क्सवादी दोनों नारीवादी विचारधाराओं ने रेडिकल नारीवाद की समलैंगिकतावाद और अलगाववाद (पुरूषों से अलगाववाद) जैसे उसके अत्यन्त उग्र प्रस्तावों के लिए आलोचना की है। इसके अलावा, सामाजवादी/मार्क्सवादी नारीवादी यह दलील भी देती हैं कि रेडिकल नारीवाद पितृसत्ता के ऐतिहासिक, आर्थिक और भौतिक आधार की अनदेखी करता है और फलस्वरूप् एक गैर-ऐतिहासिक जैविक निर्धारिणवाद के तर्क में फँसकर रह जाता है।

इस प्रकार, आज नारीवाद को एक तेजी से विकसित होती प्रमुख स्वायत्ता आलोचनात्मक विचारधारा या विचार श्रृंखला के रूप् मे देखा जाना चाहिए। इस अवधारणा में विचारों का एक विस्तृत फलक समाहित है और इसके सामने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक सम्भावनाएँ हैं। नारी के लेखन ने दूसरे विषयों को कड़ी चूनौति दी है और सामाजिक जीवन की व्याख्या और उस पर प्रश्न खड़ा करने के नए रास्ते खोले हैं। नारीवाद एक ऐसी अवधारणा के रूप् में उभर रहा हैं जो अपने भीतर, किसी भी दिए गए समाज में पुरूष विशेषाधिकार और स्त्री अधीनीकरण के आलोचनात्मक विश्लेषण के आधार पर सामाजिक राजनीतिक बदलाव के लिए विचारधारा और आन्दोलन को समाहित कर सकती है। आज की नारीवादी सोच पुरूषवादी सत्ता को समाप्त करने का लक्ष्य रखती है।

मोटे तौर पर समकालीन नारीवादी आन्दोलन ने महिला समानता के लिए उसी प्रकार योगदान दिया है जिस प्रकार 19 वीं सदीं के पूर्वार्द्ध के नारीवादी आन्दोलन ने दिया था। लेकिन, स्त्री-पुरूष के बीच जीव वैज्ञानिक असमानता के स्वयप् से सम्बन्धित मूल तर्क के सन्दर्भ में दोनों में उल्लेखनीय फर्क है। आज की नारीवादियों की तुलना में 19 वी सदी की नारीवादी 'पुरूष'और 'स्त्री'स्वभाव के बीच काफी भिन्नताएँ देखती थी। पितृसत्तात्मक इतिहासकारों की नारीवादी आलोचना में उत्तर पुनर्जागरण काल में विज्ञान और सामाजिक विमर्श के क्षेत्र में महिलाओं की अनुपस्थिति पर भी प्रश्न खड़े किए गए हैं। इन इतिहासकारों के लेखन में मुख्य स्थान पुरूषों को ही दिया गया है जबकि स्त्रियों को या तो ध्यान देने के योग्य ही न मानते हुए बेदखल कर दिया गया है या बाद के समय में एक जेंडर आधारित समाज में पुरूषों के साथ महिलाओं के लिए भी बोलने का दावा किया जाने लगा है।

नारीवाद भी पुरूष प्रभुता के लिए एक विषम राजनीतिक चुनौति बना हुआ है, लेकिन आज का सिद्धान्त अपने अन्तिम उद्देश्य का उल्लेख करने के लिए 'संक्रमणात्मक'के बजाय 'क्रान्तिकारी'शब्द को ज्यादा प्राथमिकता देते हैं। नारीवादी एक ऐसे समतानूलक समाज की कल्पना करते हैं जिसमें स्त्री और पुरूष समान और भिन्न हो सकेंगें।

7.8 सारांश

लिंग भेद के सिद्धान्तों के आधार पर नारीवाद के प्रर्वतक प्रणेताओं ने विश्व में लम्बे समय से पुरूष और स्त्री के मध्य असमानता के प्रसंगो को उठाया व आंदोलन किए। पश्चिमी व पूर्वी देशों के आंदोलनों ने नारी की स्वतन्त्रता, समानता, काम के अवसरों कीं समान समानता व उपलब्धता का समर्थन एवं नारी के प्रति पुरूष प्रधानता शोषण का विरोध किया।

विश्व में पश्चिमी देशों व पूर्वी देशों में व्याप्त बुराईयों, रूढ़िवादी का विरोध करते हुए शिक्षा के उन्नयन एवं की भावना जागरूकता व स्वावलंबन का समर्थन किया। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, अफ्रीका, भारत आदि देशों में सदियों से संघर्ष किया गया। 17वीं शताब्दी से हमने देखा व पढ़ा है।

भारत में 19 वीं शताब्दी में राजा राम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, एम.जी. रानाडे, महर्षि कर्वे आदि ने स्त्रियों की स्थिति व दशा को सुधारने का संकल्प लेकर ऊँचा उठाने का प्रयास किया।

20वीं शताब्दी में महात्मा गांधी, डी. राम मनोहर लोहिया, जय प्रकाश नारायण ने स्त्रियों की समस्या को समझा। स्वतंत्रता पश्चात् संविधान निर्माण हुआ जिससे देश के सभी नागरिकों को समानता तथा सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय का आश्वासन दिया। कानून के सम्मुख स्त्री पुरूष को समान घोषित किया गया और उनकी असमानता हीनता और पक्षपात की समस्या पर अंकुश लगाया। सरोजनी नायडू, कमला देवी चट्टोपाध्याय, विजयलक्ष्मी पंडित, रेणु चक्रवती, सुभद्रा कुमारी चौहान ने राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया। **लिंग भेद के प्रमुख सिद्धान्त-**उदारवादी नारीवाद, आमूल परिवर्तन नारीवाद, समाजवादी मार्क्सिस्ट नारीवाद, पश्च संरचनावादी जैसे नारीवाद समर्थकों ने समाज में व्याप्त लिंग भेद को समाप्त करने में अपना अथक योगदान दिया।

7.9 अभ्यास प्रश्न

1. नारीवादी दृष्टिकोण से आप क्या समझते हैं?
2. लिंग भेद की परिभाषा बतलाते हुए इसकी सामाजिक व्याख्या कीजिए !
3. लिंग भेद के निम्न प्रकार सिद्धान्तों पर टिप्पणी लिखें।

   1 उदारवादी नारीवाद, 2. आमूल परिवर्तनवादी नारीवाद

   3. समाजवादी नारीवाद।
4. पश्च संरचनावाद से आप क्या समझते है? वर्तमान परिवेश इसकी सार्थकता बतलाइये।
5. आप परिवार समाज, आर्थिक व राजनीतिक आधार पर अपने आस किस प्रकार से लिंग भेद पाते हैं? समझाईये।

7.10 सन्दर्भ ग्रंथ

- Some Questions on Feminism and its relevance in South Asia. Writer: kamala bhasin, Night Said khad. Pub. Kali for Women. B1/8 hauz khas. ND-110012.Edi.1986.
- शिक्षा एवं उदीयमान भारतीय समाज, डी. सरोज शर्मा, श्याम प्रकाशन, जयपुर।
- सप्त क्रांति, डी. राम मनोहर लोहिया प्रकाशक. लोहिया विचार प्रकाशन 50/172 F नौघड़ा, कानपुर।

- अगर राम मनोहर लोहिया होते - डॉ. ओम प्रकाश मिश्रा प्रकाशक समय -प्रकाशन आई 1/16, शांतिमोहन हाऊस, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 110002.
- 'भारत में नारी शिक्षा जेसी अग्रवाल, विद्या विहार नई दिल्ली।
- नारी सशक्तिकरण विमर्श एवं यथार्थ, आशा कोशिक, पोईन्टर पब्लिशर्स जयपुर 302003
- नारी सशक्तिकरण, हरिदास राम जी शेण्डे ग्रंथ विकास, सी-37 पंचवटी, राजा पार्क, आदर्श नगर, जयपुर।
- भारतीय नारी वर्तमान समस्याओं और भारी समाधान डॉ. द्वारा पी तिवारी एवं डॉ. डी.पी शुक्ला, ए.पी.एच. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन 5, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 10002.
- समाज ओर नारी मानचन्द खण्डेला, अरिहंत पब्लिशिंग हाउस, राज. विश्व विद्यालय के सामने, ज. ला.ने. मार्ग, जयपुर
- समाजशारत्र विश्व कोश (Encyclopaedia Sociology) : हरिकृष्ण रावत, रावत पब्लिकेशन,जयपुर पी.ओ नई दिल्ली।

इकाई - 8

समाजीकरण की प्रक्रिया, जैण्डर की पहचान का निर्माण विविध संस्थाओं (जैसे परिवार, जाति, धर्म, संस्कृति) मीडिया और प्रचलित मीडिया (जैसे सिनेमा, विज्ञापन, गाने आदि) कानून और राज्य सेक्सुआलेटी की ओर सकारात्मक रवैया का निर्माण

Process of socialisation, gender identity construction (at home, schools, peers, teachers, curriculum and textbooks, etc., and influenced by media and popular culture (films, advertisements, songs etc.), law and the state, formulation of positive notion of sexuality

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 समाजीकरण का अर्थ तथा परिभाषा

8.3.1 समाजीकरण की प्रक्रिया

8.4 जैण्डर की पहचान का निर्माण विविध संस्थाओं द्वारा

8.5 जैण्डर की पहचान मीडिया एवं प्रचलित मीडिया द्वारा

8.6 सेक्सुआलटी की ओर सकारात्मक रवैया का निर्माण

8.7 सारांश

8.8 अभ्यास प्रश्न
8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

8.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज पुरूष प्रधान समाज है। आरंभ से लेकर अन्त तक स्त्री का जीवन पुरूष पर निर्भर रहता है। बाल्यावस्था में वह पिता के संरक्षण से तत्पश्चात भाई के संरक्षण में, विवाह के पश्चात पति के संरक्षण में और वृद्धावस्था से पुत्रों के संरक्षण मे जीवन व्यतीत करती है। उसकी अपनी अलग कोई पहचान नहीं होती है वह आज भी किसी की पुत्री किसी की बहिन- किसी की पत्नी या मां के नाम से जानी जाती है। आज भ्भी अपनी अस्मिता के लिए वह जूझ रही है। पहचान बनाने के लिए उसे खुद अपनी मंजिल तो करनी पड़ती है जो आसान कार्य नहीं है। पुरूष प्रधान समाज के नारी का स्थान सदैव दोयम दर्जे रहा है। भारतीय समजा मे आरंभ से ही लड़के व लड़कियों में फर्क किया जाता रहा है। लड़के के जन्म पर अधिक खुशियाँ मनाई जाती है। पुत्रियाँ होने के पश्चात भी पुत्र प्राप्ति के लिए प्रयत्न किये जाते है। परिवार में लड़की एवं लड़के के पालन पोषण में भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया जाता है। परिवार में बालकों को बालिकाओं की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है। बालिकायें ये देखते हुए बड़ी होती है कि हमारे घरों रीति -रिवाजों, त्यौहारो आदि मे अतिमहत्त्वपूर्ण पुरूष ही होते है। इस भेदभाव पूर्ण व्यवहार के कारण बालिकाओं के सर्वागीण विकास में बाध्य पहुँचती है। पुरूष प्रधान समाज के सर्वागीण विकास में बाधा पहुँचती है। पुरूष प्रधान समाज होने से स्त्रियाँ अपने निर्णय स्वयं नहीं ले पाती है। स्त्रियों में बचपन से ही असुरक्षा एवं हीन भावना का विकास हो जाता है। शिक्षा के अभाव व भेदभाव के कारण हीनता की भावना उनके स्वभाव का स्थायी लक्षण बन जाती है।

पिछले कुछ वर्षो में सामाजिक विज्ञानो में लिंग के सामाजिक पक्षों को उसके जैविकीय पक्षों से अलग कर जेण्डर के रूप में समझने और अध्ययन करने की एक नई शुरूआत हुई है। जेण्डर सम्प्रत्यय स्त्रियों और पुरूषों के बीच सामाजिक रूप से निर्मित भिन्नता के पहलुओं का ध्यान आकर्षित करता है। किन्तु आजकल जेण्डर का प्रयोग व्यक्तिगत पहचान और व्यक्तित्व को इंगित करने के लिए ही नहीं किया जाता, अपितु, प्रतीकात्मक स्तर पर इसका प्रयोग सांस्कृतिक आदर्शों तथा पुरूषत्व एवं स्त्रीत्व संबंधी रूढिबद्ध धारणाअें और संरचनात्मक अर्थो में संस्थाअें और संगठनों में लिंगभेद के रूप में किया जाता है।

अत: वर्तमान में आवश्यकता है कि लिंग भेद को समाप्त कर स्त्रियों के अन्दर स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता एवं अपने अधिकारों के प्रति सजगता की भावना का विकास किया जाये। यह कार्य शिक्षा में व्याप्त असमानता को दूर कर तथा परिवार व समाज द्वारा सकारात्मक सोच रखते हुए किया जाना चाएिह। महिला की सुदृढ़ व सम्मानजनक स्थिति एक अत्यन्त तथा समृद्ध समाज की द्योतक होती है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययरन के बाद आप -

- समाजीकरण की प्रक्रिया को समझ सकेंगे

- जेण्डर की पहचान विभिन्न संसथाओं द्वारा कैसे हो स्पष्ट कर सकेंगे।
- मीडिया में महिला की छवि को समझ सकेंगे
- मीडिया में नारी छवि के सुधार के लिए किये गये प्रयासों को जानना तथा अन्य सुझाव देना।

8.3 समाजीकरण का अर्थ तथा परिभाषा

समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समाज मे जीवन शैली सीखता है और समाज में समायोजन करता है। मनुष्य जिस समाज के बीच जन्म लेता है और रहता है उसे उस समाज की भाषा, रहन सहन, खान पान एवं आचरण की विधियाँ और रीति रिवाज सीखने होते है। बिना उन्हें सीखे वह उस समाज मे समायोजन नहीं कर सकता। यह सब कार्य एकदिन में नहीं सीखता, वह सब सीखने में काफी समय लगता है। जन्म से कुछ दिन बाद वह अपने समाज के रीति रिवाज सीखने लगता है। और तदनुकूल आचरण कर अपने समाज मे समायोजन करता है संक्षेप में समाजीकरण की प्रक्रिया के आधार अन्त: प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में समाजीकरण का अर्थ उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से अन्त: प्रक्रिया करता हुआ समाजिक और विश्वासों, रीति रिवाजों तथा परम्पराओं एवं अभिवृत्तियों को सीखता है। इस प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति जन कल्याण की भावना प्रेरित होते हुए अपने आपको अपने परिवार, पडोस तथा अन्य सामाजिक गुणों के अनुकूल बनाने का प्रयास करता है। जिससे वह समाज का एक श्रेष्ठ, उपयोगी तथा उत्तरदायी सदस्य बन जाये तथा उक्त सभी सामाजिक संस्थायें एवं वर्ग उसकी प्रशंसा करते रहे। इस प्रकार समाजीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया अन्त: प्रक्रिया अथवा सामाजिक कार्य के अन्तर्गत आती है। व्यक्ति को सामाजिक स्वरूप देने वाली प्रक्रिया के समाजीकरण की संज्ञा दी जाती है।

- गिलिन और गिलिन - ‘‘ समाजीकरण से हमारा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति समूह का एक क्रियात्मक सदस्य बनता है। तथा उसी के स्तर के अनुसार कार्य करता है। उसके लोकाचार, परम्परा तथा सामाजिक परिस्थितियों के साथ अपना समन्वय स्थापित करता है।

हैपिधस्ट - ‘‘समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यक से बालक अपने समाज के स्वीकृत ढंगों को सीखते है तथा इन ढंगों को अपने व्यक्तित्व का एक अंग बना लेते है।’’

बोगार्डस - ‘‘सामाजिकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानव कल्याण, के लिए एक दूसरे पर निर्भर होकर व्यवहार करता है सीखते है और ऐसा करने में सामाजिक आत्म नियंत्रण, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा संतुलित व्यक्तित्व का अनुभव करते है।’’

8.2.1 समाजीकरण की प्रक्रिया

समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा बालक को सामाजिक बनाया जाता है। इस प्रक्रिया के विभिन्न कारक है, जिनमें से महत्त्वपूर्ण कारक निम्नलिखित है।

1 **पालप पोषण -** बालक के समाजीकरण में पालन-पोषण का गहरा प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार का वातावरण बालक को प्रारंभिक जीवन से मिलता है। तथा जिस प्रकार के माता पिता बालक

का लालन पोषण करते है उसी के अनुसार बालक में भावनायें तथा अनुभूतियाँ विकसित की जाती है। इसका अर्थ यह है कि जिस बालक की देख भाल उचित ढंग से नहीं होती उसमें समाज विरोधी आचरण या हीन भावना उत्पन्न हो जाती है। दूसरे शब्दों में बालक समाज के साथ व्यवसथपन नहीं कर पाता। समाज में बालक और बालिकाओं का लालन पोषण में अंतर देखा जाता है। बहुत से जगह देखा जाता है लड़कों को अधिक महत्त्व एवं अच्छा भोजन एवं सीख दी जाती है। जबकि लड़कियों को कम महत्त्व एवं भाई की बराबरी नहीं करने को कहा जाता है। इस दृष्टि से उचित समाजीकरण के लिए आवश्यक है कि लड़के एवं लड़कियों का पालन पोषण उचित प्रकार से किया जाये।

2 **सहानुभूति-** पालन पोषण की भांति सहानुभूति का भी बालक को समाजीकरण में गहरा प्रभाव पड़ता है ध्यान देने के बात है कि शैशव अवस्था में बालक अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिवार के अन्य सदस्यों पर निर्भर रहता है।

दूसरू शब्दों में, अन्य व्यक्तियों, द्वारा बालकों की आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। यहां इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि बालक की सभी आवश्यकताओं को पूरा करना ही सब कुछ नहीं है वरन् उसके साथ सहानुभूति की आवश्यकता भी है। इस कारण यह है कि सहानुभूति के द्वारा बालक में अपनत्व की भावना विकसित होती है। जिसके परिणामस्वरूप वह एक दूसरे में भेदभाव करना सीख जाता है। वह उस व्यक्ति को अधिक प्यार करने लगता है जिसका व्यवहार उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण होता है।

3 **सहकारिता -** व्यक्ति को सामाजिक, सूमाज बनाता है। दूसरे शब्दों में समाज की सहकारिता बालक को सामाजिक बनाने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। जैसे जैसे बालक अपने साथ अन्य व्यक्तियों का सहयोग पाता जाता है। वैसे वैसे वह दूसरे लोगों के साथ् अपना सहयोग भी प्रदान करना आरंभ कर देता है। इससे उसकी सामाजिक प्रवृत्तियाँ संगठित हो जाती है।

4 **निर्देश -** सामाजिक निर्देशें का बालक के समाजीकरण में गहरा हाथ होात है। ध्यान देने की बात है कि बालक जिस कार्य को करता है। उसक संबंध में वह दूसरे व्यक्तियों से निर्देश प्राप्त करता है। दूसरे शब्दों में वह उसी कार्य को करता है जिसको करने के लिए उसे निर्देश दिया जाता है। इस प्रकार हम देखते है कि निर्देश समाजिक व्यवहार की दिशा निर्धारित करता है।

5 **आत्मीकरण** - माता-पिता, परिवार तथा पड़ोस की सहानुभूति द्वारा बालक में आत्मीकरण की भावना का विकास होता है। जो लोग बालके के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते है उन्हीं को बालक अपना समझने लगता है तथा उन्हीं के रहन सहन, भाषा तथा आदर्शों के अनुसार व्यवहार करने लगता है।

6 **अनुकरण -** सामाजिकरण की आधारभूत तत्व् अनुकरण है। ध्यान देने की बात है कि बालक में अनुकरण का विकास परिवार तथा पड़ोस में रहते हुए होता है। दूसरे शब्दों में, बालक परिवार तथा पडोस के लोगों की जिस प्रकार का व्यवहार करते देखता है उसी का अनुकरण करने लगता है।

7 **सामाजिक शिक्षण -** अनुकरण के अतिरिक्त सामाजिक शिक्षण का बालक के सामाजिकरण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ध्यान देने की बात है कि सामाजिक शिक्षण का आरंभ परिवार से होता है। जहां पर बालक माता पिता, भाई बहिन, तथा अन्य सदस्यें से खान पान तथा रहन सहन आदि के बारे में शिक्षा ग्रहण करता रहता है।

8 **पुरूस्कार का दण्ड -** बालक के समाजीकरण में पुरूस्कार एवं दण्ड का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। जब बालक समाज के आदर्शों तथा मान्यताओं के अनुसार व्यवहार करता है तो लोग उसकी प्रशंसा करते है। साथ ही वह समाज के हित को दृष्टि में रखते हुए जब कोई विशिष्ट व्यवहार करता है तो उसे पुरूस्कार भी मिलता है।

इसके विपरित जब बालक असामाजिक व्यवहार करता है तो उसे दण्ड दिया जाता है जिसके भय से वह ऐसा कार्य फिर दुबारा नहीं करता।

8.4 जैण्डर की पहचान का निर्माण विविध संस्थाओं द्वारा

सामाजिक भेदभाव के प्रमुख तत्वों में जाति, वर्ग आदि के साथ जेण्डर भी एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण कारक है। इसके बीच संबंधोंमें सामाजिक पक्ष के संदर्भ में जेण्डर ऐसी आवधारणा है जो जैवकीय यौन भेद से अलग की जाती है। जेण्डर की अवधारणा स्त्रियाँ और पुरूषो के बीच सामाजिक रूप से निर्मित अन्तर के पहलुओं पर ध्यान आकर्षित करती है। वर्तमान में जेण्डर का प्रोग व्यक्तिगत पहचान और व्यक्तित्व को इंगित करने के लिए भी नहीं किया जाता है, बल्कि इससे बढ़कर प्रतीकात्मक स्तर पर इसका प्रयोग सांस्कृतिक आदर्शों तथा पुरूषत्व एवं स्त्रीत्व संबंधीरूढ़िवादी धारणाओं और संगठनों में जेण्डर श्रम विभाजन में किया जाता है। परिवार एक ऐसा समूह है जो पर्याप्त रूप से लैंगिक संबंधपर आधारित होता है तथा जो इतना स्थायी होता है कि इसके द्वारा बालकों के जन्म तथा पालन पोषण की व्यवस्था की जाती है। बालक अपने सामाजिक जीवन का पहला पाठ परिवार के सदस्यों से ही सीखता है। परिवार एक ऐसी आधारभूत संस्था है। जिसका बालक की शिक्षा के अब भी महत्त्व कम नहीं हुआ है। इसका कारण यह है कि नवजात शिशु अपने जीवन की यात्रा को परिवार से ही आरंभ करता है तथा इसी संस्था में रहते हुए उसे विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्राप्त होती है। जैसे जैसे बालक की आयु में वृद्धि होती जाती है , वैसे वैसे परिवार द्वारा उसमें उन सभी मानवीय गुणों का विकास होता जाता है। जिनकी आवश्यकता उसे आगे चलकर एक सुयोग्य एवं सच्चरित्र नागरिक के रूप में पड़ती है। ज्यादातर यह उम्मीद की जाती है कि बालक भविष्य में माता पिता की भूमिका अदा करेंगे।

पारम्परिक तौर से लड़के और लड़कियों के पालन पोषण के क्रम में यह मान्यता उनके मन में बैठा दी जाती है कि औरतां की मुख्य जिम्मेदारी गृहस्थी चलाने और बच्चों के पालन पोशण करने की है। यह चीज कई परिवारों को झलकती है। महिलाओं की पहचान घर के काम काज करने से है जैसे खाना बनाना, सफाई करना कपड़े धोना और बच्चों की देखभाल करना आदि। जबकि पुरूष घर के बाहर का काम करते है। प्राय: परिवार का मुखिया भी पुरूष सदस्य ही होता है। अत: यह कहा जा सकता है कि परिवार में पुरूष सदस्यों की तुलना में स्त्री सदस्यों को कम महत्त्व दिया जाता है। महिलाओं को विकास के कम अवसर मिल ते है। परिवार से संबंधितमहत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में भी उनकी भूमिका गौण होती है।

परिवार में उनके द्वारा किये गये कार्यो का कोई अध्का मूल्य नहीं समझा जाता है। परम्परागत रूप से पुरूष को कमाऊ पुत कहा जाता है और स्त्रियों को घर की चारदीवारी के अन्दर की जिम्मेदारी दी जाती है। बालकों को खेल और पढ़ाई के लिए प्रोत्साहिज किया जाता है जिससे वे बुद्धिमान और मजबूत बने। बालिकाओं को घर में रहने के लिए ही कहा जाता है। परिवार के सदस्य यह पहचान बनाने में बार बार जोर देते है कि यह लड़की है और वो लड़का।

महिलाओं में बचपन से ही असुरक्षा एवं हीन भावना का विकास हो जाता है। उकने मनमस्तिष्क मे यह बात स्थाई रूप से बैठ जाती है कि वे पुरूषों से हीन है। शिक्षा का अभाव एवं भेदभाव के कारण हीनता की भावना उनके स्वभाव का स्थाई लक्षण बन जाती है।

भारतीय समाज एक परम्परावादी समाज है। भारतीय से विधान अन्तर्गत महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार व स्वतंत्रता प्राप्त होने के उपरान्त भी अधिकांश पुरूष व महिलाएँ भी महिलाओं की परम्परावादी घरेलू छवि को ही अधिक पक्षधार है, लिंग भेद हमारी व्यवस्थ्ज्ञा का एक प्रमुख अंग है। परिवार में लड़की एवं लड़के पालन पोशण में भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया जाता है इससे उसकेसर्वतोमुखी विकास में बाधा पहुँचती है। सेक्य या लिंगभेद स्त्री और पुरूष की शारीरिक बनावट के जैविक अंतर है। जो प्राकृतिक होने के कारण सभी जगह और सभी समय एक समान होता है। लेकिन जेण्डर का संबंधउन भूमिकाओं या कार्यो से है समाज में स्त्रियों और पुरूषों का अलग अलग पहचन कराती है। वस्तुत: जेण्डर की अवधारणा एक सामाजिक सांस्कृतिक निर्माण है जो समय और स्थान के साथ बदलती रहती है। यह एक प्रकार की सामाजिक असमानता की परिचालक है। आशय यह है कि स्त्रीत्व लिंग है जबकि स्त्रीत्व जेण्डर है। जैसे नवजात शिशु को मां द्वारा अपना दूध पिलाना स्त्रीत्व है जबकि इस शिशु का शौचादि साफ केवल मां ही कर से यह स्त्रीत्व है। इसी अर्थ में प्रसिद्ध नारीवादी विचारक सिमो व बुआंर ने कहा था कि - ''स्त्री पैदा नहीं होती , स्त्री बनाई जाती है। भारत में हम ऐसे अनेक उदाहरण देख सकते है जैसे बचपन में लड़कियों को इससोच के कारण स्कूल नहीं भेजा जाता है कि वे स्कूल जाकर क्या करेगी। लड़कियों को पढ़ाना इसलिए भी उचित नहीं समझा जाता कि वे विवाह होने के बाद दूसरे परिवार की सदस्या बनेगी। सोच बदलनी होगी परिवार के सदस्यों के संस्कारित करते समय बेटा या बेटी की सोच न रखे।

जेण्डर निर्माण में धर्म, जाति का भी बहुत बड़ा हाथ है। सभी धमोर्ं का पालन पोषण रीति रिवाज बालक और बालिकाओं के लिए अपने धर्म के अनुसार है जिसे परिवार और समाज द्वारा माना जाता है। लड़की का धर्म उसके सुसराल पक्ष से जोड़ा जाता है जिसे उसे जीवन भर निभाना होता है उसी से उसकी पहचान बनती है।

मनुष्य को सभी प्राणियों से श्रेष्ठ माना जाता है। श्रेष्ठ इसलिए माना जाता है क्योंकि उसकेपास अपनी एकसंस्कृति है। किसी समाज के सदस्यों द्वारा अपनाई जाने वाली सम्पूर्ण जीवन शैली को संस्कृति कहते है। संस्कृति से व्यवहार संबंधित सभी मानदण्ड होते है। इसी कारण संस्कृति को सामाजिक विरासत कहते है। अन्य कारणों की तरह संस्कृति भी यह संकेत देती है कि किसी परिस्थति विशेष में कोई व्यक्ति क्या और कैसे व्यवहार करेगा। यह संस्कृति का ही प्रभाव है कि संस्कृति विशेष के लोगों में खानपान वेशभूषा, भाषा आदि मेंसमानता पाई जाती है। जबकि दो भिन्न संस्कृतियों के लोगों में काफी विभिन्नता

देखने को मिलती है। संस्कृति मात्र मानव समाज मे पाई जाती है। सभी प्राणियों में मानव श्रेष्ठ माना जाता है। क्योंकि उसकेपास भाषा जैसा एक सशक्त माध्यम है वह भाषा प्रतीकों एवं लोकज्ञान से अपने ज्ञान एवं संस्कृति को सम्प्रेषित करता है। संस्कृति शिशु को अपने माता पिता द्वारा वंशानुक्रम में प्राप्त नहीं होती हमें वंशानुक्रम में मात्र शरीर प्राप्त होता है। संस्कृति एक सीखा हुआ व्यवहार प्रतिमान का योग है। मानव अपनी संस्कृति के साथ पैदा नहीं होता है। वरन् जिस समाज मे रहता है उसकी संस्कृति धीरे धीरे समाजीकरण के द्वारा सीखता है। धार्मिक आचरण के द्वारा पूजा अर्चना सरखता है। संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार है। समाज में जेण्डर निर्माण में सहायता करती है। जिसे परिवार या समुदाय की जैसी संस्कृति होगी उसके सदस्य वैसा ही व्यवहार प्रदर्शित करेगे। प्रत्येक संस्कृति अपनी ही पहचान उसके अनुसार कार्य व व्यवहार करना संस्कृति को दर्शाती है। संस्कृति प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में लड़के व लडकियों के व्यक्तित्व का विकसित करती है। संस्कृति व्यक्ति में उत्तरदायित्व की भावना विकसित करती है। उदाहरण जैसे भारतीय संयुक्त परिवारों को पूरा करने के लिए तरह तरह के अनुशासन में रखा जाता है। इसी के परिणामस्वरूप भारत में अपने माता पिता, भाई बहिनों या पारिवारिक सदस्यों के संदर्भ में उत्तरदायित्व की भावना जितनी अधिक पाई जाती है वह अन्य देशों के लोगों में देखने को नहीं मिलती है। महिलाओं में सहनशीलता अधिक मिलती है।

व्यक्ति की एक प्रमुख विशेषता अन्य लोगों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना है प्रत्येक संस्कृति अपने समूह या समाज के लोगों को दूसरों का सम्मान करना सीखाती है। जैसे भारतीय संस्कृति पैर छूकर हाथ जोड़कर अथवा हाथ जोड़कर दूसरो का सम्मान सीखाती है। कोई व्यक्ति घर में बेटा, भाई, पिता पति हो सकता है। कार्यालय में उसकी भूमिका कर्मचारी की हो सकती है। अलग अलग परिस्थितियों में तरह तरह का व्यवहार करना संस्कृति ही सीखाती है। कि पिता को पुत्र या पुत्री से कैसा व्यवहार करना चाहिए। ये तमाम तरह की भूमिकाएं व्यक्तित्व के व्यवहार का निर्धारण करते हुए उसके विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

जैण्डर की पहचान का निर्माण मीडिया एवं प्रचलित मीडिया द्वारा मीडिया एवं प्रचलित मीडिया वर्तमान समाज में समाजीकरण एक शक्तिशाली स्त्रोत है। तथा समजा पर दीर्घकालीन प्रभाव डालने में सक्षम है। मीडिया और सामाजिक वास्तविकता में दो तरफा संबंधहै। एक और मीडिया वास्तविकता को प्रर्दशित करता है। और दूसरी ओर वह सामाजिक वास्तविकता का प्रदर्शित करता है। मीडिया ने समय समय पर समाज की सही दिशा में ले जाने में सफल प्रयास किये है। समूचे विश्व का इतिहास इस प्रकार के उदाहरणो से भरा पड़ा है।

परन्तु मीडिया ने पुरूष सत्तात्मक समाज के मूल्यों और विचारों को यथोचित मानते हुए स्त्री की प्रस्थिति एवं भूमिका को द्वितीयक भी सिद्ध किया है। उद्देश्यपूर्ण चुनाव के माध्यम से मीडिया स्वयं अपनी सामाजिक वास्तविकता का निर्माण एवं विकास करता है। यही कारण है कि आधुनिक समाज तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से श्रेष्ठ होते हुए भी महिलाओं को समुचित सम्मान एवं प्रस्थिति नहीं दे सका है। वर्तमान प्रजातांत्रिक समाज में मीडिया की भूमिका एक ऐसे मंच की है। जहां विभिन्न समूहों के हितों एवं मूल्यों का एक साथ प्रतिनिधित्व हो सके। समजा को प्रभावित करने वाले साधन के रूप में मीडिया एवं प्रचलित मीडिया शक्ति स्त्रोत है जो कि सामाजिक वास्तविकता को परिभाषित करते हैं। मीडिया जनता

के विचारो एवं आवाज के संवाहक है। रेडियो, टेलिविजन, फिल्म एवं प्रिंट साधनों के माध्यम से मीडिया समाज के हर वर्ग के सदस्यों को संपर्क एवं सूचना तंत्र में बांधता है। परन्तु वर्तमान समाज में सूचना एवं संचार का यह सबसे बड़ा साधन सामान्य जन को सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों रूप में प्रभावित कर रहा है। मीडिया में प्रस्तुत छवियाँ अनेक बार पूर्वाग्रहो, मतभेद एवं पक्षपातपूर्ण प्रतिनिधित्व से प्रेरित होती है। मीडिया के विभिन्न माध्यमों में नारी छवि का निरीक्षण किया जाये तो यह कथन शब्दश: उचित प्रतीत होता है। संचार क्रांति के इस 'सूचन युग' में नारी छवि का नकारात्मक प्रतिबिम्बन भारतीय समाज के नारी की स्थिति के अवमूल्यन का महत्त्वपूर्ण कारण रहा है।

स्वतंत्रता के पश्चात कुछ दशकों तक भारत में मीडिया या श्रवण-दृश्य स्वरूप ही प्रभुत्वशाली रहा जिसके माध्यम से नारी छवि और लैगिक विषयों पर विचार प्रस्तुत किये जा रहे थे। ब्रांडकास्टिग राज्य नियंत्रण में था और सिनेमा निजी क्षेत्र के आधिपत्य में था। यद्यपि सेंसर बोर्ड के माध्यम से राज्य का भी उस पर थोड़ा नियंत्रण था। दूरदर्शन के माध्यम से टी.वी. का प्रसारण राज्य के पूर्ण नियंत्रण में 60 के दशक के अंत में प्रारंभ हुआ। दूरदर्शन वर्तमान में भी राज्य द्वारा नियंत्रित है। परन्तु निजी एवं अन्तर्राष्ट्रीय आधिपत्य वाले बहुत से सेटेलाइट चैनल टी.वी. पर प्रस्तारित हो रहे है। वैश्वीकरण के युग मे इलेक्ट्रोनिक एवं प्रिंट मीडिया दोनों पर गहरा असर पड़ा है। और उनका स्वामित्व स्वरूप, सामग्री और यहां तक कि मीडिया के उद्देश्य भी प्रभावित हुए है। यही कारण है कि मीडिया में नारी छवि का प्रदर्शन भी नकारात्मक ढंग से प्रभावित हुआ है। एक ओर देश के युवाओं के मनोरंजन के लिए नारी शरीर का अश्लील प्रदर्शन किया जा रहा है, तो दूसरी ओर भारतीय परम्पराओं के नाम से शिक्षित सक्षम, स्वाभिमानी एवं साथ ही सुशील तथा संवेदनशील प्राणी के रूप में नारी की छवि को प्रिन्ट एवं इलेक्ट्रोनिक मीडिया में कहीं समुचित स्थान नहीं मिल सका है। इसका एक प्रमुख कारण मीडिया में लेखक, निर्देशक, प्रकाशक, कलाकार, पत्रकार आदि सभी सृजनात्मक पदों पर अधिकांशत पुरूषों का अधिपत्य होना है। यही कारण है जो मीडिया नारी सशक्तीकरण में एक सक्रिय एवं सार्थक भूमिका निभा सकता था, महिलाओं से जुड़ी समस्याओ को जनसामान्य के सामने लाकर उनके समाधान ढूंढ सकता था तथा विभिन्न क्षेत्रो जैसे शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, न्याय आदि ने महिलओं के लिए एक सकारात्मक वातावरण बना सकता था। वह आज सिर्फ महिलओं के अंग प्रदर्शन कर उत्पाद बेच रहा है। अथवा सास-बहु के नाम पर महिला विरोधी धारावाहिकों से धन कमा रहा है। वर्तमान समय मे यह नितांत आवश्यक है कि महिलओं स्वयं आकर मीडिया से जुड़े विभिन्न क्षेत्रो में बागडोर संभाले और जनसंचार साधनों के माध्यम से नारी को बिड़ी हुई छवि सुधारे तथा इन साधनों का प्रयोग नारी उत्थान एवं सशक्तिकरण के लिए करें, कई मायनों में प्रयास हो भी रहे है। सिनेमा के माध्यम से भी अच्छी छवि या सफल और शक्तिशाली महिलाअें को रोल मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। जिससे समाज की अन्य महिलाओं में आत्मविश्वास का तीव्र संचार उत्पन्न होता है कि अगर अमुक महिला एक महिला होते हुए सफलता का परचम लहरा सकती है तो वह क्यों नहीं। वस्तुत: यही वह वैचारिक है जो महिलाओं को अंदर सेइतना मजबूत बना देती है कि वह ना केवल अपने को इस वर्ग का हिस्सा होने में गर्वान्वित महसूस करती है बल्कि आत्मविश्वास से भरकर अबला कमजोर, आश्रित के बेरी को तोडकर सामान्य से असामान्य लक्ष्य भेद की ओर अग्रसर होकर अन्तत: उसमें सफलता प्राप्त करती है।

मीडिया के माध्यमों द्वारा महिलओं को विचार स्वतंत्रता हेतु मंच प्रदान किया जा रहा है जो उनसे संबंधितमुद्दों पर न्याय पाने और न्याय नहीं मिलने जैसी दोनों ही स्थिति में व्यवस्था पर दबाव समूह के रूप में कार्य करतीह है, मीडिया चैनलों में समाचार संवादाता, समाचार एंकर और समाचार निर्माता जैसे चुनौतिपूर्ण उत्तरदायित्व द्वारा सम्पूर्ण समाज के अनेक सक्षम नेतृत्व और प्रतिनिधित्व के प्रति एक सकारात्मक माहौल का निर्माण कर समाज के समाने अनुक्ररणीय आदर्श उपस्थित कर रहा है।

जनसंचार माध्यमों द्वारा महिला अधिकार संबंधितयोजनाओं एवं कानून की जानकारी प्रदान करना।

समाज मे किसी वर्ग के सशक्तिकरण के लिए मात्र कानून या योजना बना देना अपने आप मेंउस वर्ग की भलाई या कानून की सफलता का पैमाना नहीं हो सकता। बल्कि इसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि जनता तक उस कानून या योजना के बारे में सही और समुचित जानकारी समय पर पहुँचती है कि नहीं। सही जानकारी जनता का जहां अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाती है वहां जब कोई उसके अधिकारों का हनन करता है तो वह उसके विरोध में एकजुट खड़ा होने का प्रयास करता है। अगर उसे अपने अधिकारों का भीपता हीं होता तो वह किस अधिकार को प्राप्त करने का प्रयास करेगा। शायद यही कारण है कि Knowledge is power वाली बात Information is power में बदल गयी है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं प्रिंट मिडिया में कानूनों, सरकारी व गैर सरकारी योजनाओं एवं इससे संबंधित विस्तृत सूचनाओं को अपने विभिन्न कार्यक्रमों एवं ऐड कपेन माध्यमों से महिलाओं तक पहुंचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस क्रम में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रचार अभियान जिससे जनसंचार माध्यमों की सक्रिय भागीदारी निरंतर देखी जा सकती है, वे है - सर्व शिक्षा अभियान के तहत शिक्षा का प्रचार, महिलाओं को छात्रवृत्ति योजना, जननी सुरक्षा के तहत शिक्षा का जच्चा बच्चा का सुरक्षा उपाय, राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन प्रधानमंत्री निधि, शिशु सुरक्षा योजना, जन्म के समय बच्चों को पीला दूध पिलाओं अभियान, राष्ट्रीय आरोग्य निधि जिसमें तहत 15 साल से कम उम्र के बच्चों को मुक्त इलाज, मेरा वोट मेरा अधिकार वाई.बी. एन 7 का अभियान, जिन्दगी लाइव, टाटा टी का जागो रे जागों एवं महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति 2000 इत्यादि प्रमुख है। महिलाओं से संबंधित कानून और कल्याणकारी योजनाओं की जानकारी महिलाओं तक पहुंचाने, उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और शैक्षणिक अधिकारों की बात करने, उनका समर्थन करने, महिला सशक्तिकरण को अपनी मूल्यवान, सक्रिय और प्रतिभाशाली भूमिका और समाज में अपनी पहचान सालों के आधार पर नहीं बल्कि, हर घंटे के आधार पर दिये जा रहे अंजाम के रूप में देखा, सुना और पढ़ा जा सकता है।

8.5 सेक्सुअलिटी की ओर सकारात्मक रवैया का निर्माण

महिला वह है जिसके बिना सृष्टि की रचना ही संभवनहीं है। समाज में महिला एक उत्पादक की भूमिका निभाती है। महिला बिना एक नये जीव की कल्पना भी नहीं कर सकते अर्थात महिला एक सर्जक है, रचनाकार है, वह कुल जनसंख्या का 48.46 प्रतिशत है।फिर भी भारतीय समाज जैसे पितृसत्तात्मक समाज में उसे हीन दृष्टि से देखा जाता है, पुत्र जन्म पर हर्ष एवं पुत्री जन्म पर संवेदना व्यक्त की जाती है। आज भी घर परिवार के दायित्वों से मुक्त नहीं किया है। फिर भी पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महिलाओं के कार्य क्षेत्र तथा उसकी भूमिकाओं में व्यापक बदलाव देखने को मिलते है। वर्तमान में स्त्री

का बाजार भी वस्तु के रूप में प्रस्तुतीकरण होने गला है। विशेषकर पिछले दो दशकों में ऐसा प्रचलन बढ़ा है। सेक्स एवं खुलापन का प्रदर्शन बढ़ता ही जा रहा है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में महिलाओं की सोच एवं व्यवहार में बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ता है। ''द रिवाइल्ड कामसूत्र'' के लेखक रिचर्ड क्रास्टा के अनुसार भारत के शहरों में रहने वाले लोगों मे सेक्स के प्रति खुलापन आया है। पवन शर्मा ने अपनी पुस्तक ''भारतीयता की ओर में लिखा है कि ''भूमण्डलीकरण स्त्री को समान लाभ के अवसर देता है। वैश्वीकरण में यौन व्यवहार एवं प्रदर्शन में पश्चिमी तथा अमेरिका मूल्यों के प्रभाव को बढ़ावा दिया। सुधीर कक्कड़ कहते हैं '6हां बदलाव आ रहा है और वह मध्यवर्ग लेकर आ रहा है। मध्यवर्ग सेक्सुलिटी के आधुनिक पश्चात्य विचारों का अनुकरण करना चाहता है। जहां सेक्सुरलिटी के आधुनिक पाश्चात्य विचारां का अनुकरण करना चाहता है । जहां सेक्सुलिटी को नैतिकता और अनैतिकता के बंधन से मुक्त रखा है। आज भी युवी पीढ़ी यौन वर्जनाओं को नाराना चाहती है वह समस्त मिथकों को तोड़ते हुए उन्मुक्त होकर यौन भावनाओं एवं यौन आवश्यकताओं को प्रकट करना प्रारंभ कर रही है। नये दौर की स्थितियों ने सारे अंकुश हटा दिये है। एक लड़की किसी मनचाहे लड़के का कांलर पकड़कर उसे यौन संबंधोंके लिए आमंत्रण दे सकती है। (फिल्म डेल्ही बेली, दिल कबड्डी) नई पीढ़ी की लडकियों ने यौन शुचितावादी नैतिकता को अपवस्थ कर दिया है। संभवत: इन्होंने वात्यायन को नहीं पढ़ा है फिर भी उनकी पंक्तियों को आत्मसात कर लिया है। अब प्रेम में जान देने वाली पीढ़ी के स्थान पर शुद्ध आनन्दवादी मानसिकता की पीढ़ी आगे बढ़ रही है।

वैश्वीकरण ने स्त्री जीवन से संबंधितप्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया है। यौनिकता एवं कामुकता भला कैसे अनछुए रह सकते हैं। पश्चिमी प्रभाव ने औरत की अन्तमुर्खी स्थिति को बदलकर बर्हिमुखी करने के उत्प्रेरक का काम किया है। जैसा कि उर्वशी बुटानिलया (जुबान प्रकाशन की प्रमुख) कहती है, हमें यौनिकता एवं कामुकता को समझने की जरूरत है, वास्तव में यौनिकता शरीर की चाहत है और कामुकता इंन्द्रियों को प्रकटीकरण है। स्त्री की सोच में बदलाव आ रहा है। अपनी पहचान वह शिक्षित कर आर्थिक रूप से स्वावंलम्बी बनते देखना चाहती है। वैश्वीकरण का उज्जवल पद जिसमें महिलाओं ने अपनी स्वतंत्र तथा सकारात्मक पहचान बनाई, पांवर वूमेन की छवि गढ़ी। वहीं इसका अंधकारमय पक्ष भी है जिमें स्त्रियों की छवि नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है, इन्हें बार बालाएं बनना पड़ा। दलाओं के माध्यम से खरीदी बेची जाने लगी।

8.6 सारांश

स्माजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समाज की जीवन शैली सीखता है और समजा मे समायोजन करता है। जेण्डर की पहचान निर्माण करने में कई संस्थायें अपनी तरफ से सहयोग करती है। भारतीय समाज में यहां की संस्कृति द्वारा भी व्यक्तित्व विकास पर बल मिलता है। विगत अनेक वर्षो मे सामजिक विज्ञानों एवं शिक्षा में लिंग के सामाजिक पक्ष को उसके जैवकीय पक्ष से अलग एक 'जेण्डर' के रूप में समझने और अध्ययन करने की एक नई शुरूआत हुई है। जेण्डर की अवधारणा स्त्रियों और पुरूषां के बीच सामाजिक रूप मे निर्मित अन्तर के पहलुओं पर ध्यान आकर्षित करती है। वर्तमान में जेण्डर का प्रयोग व्यक्तिगत पहचाना और व्यक्तित्व की इंगित करने के लिए नहीं किया जाता है, बल्कि

इससे बढ़कर प्रतीकारात्मक स्तर पर इसका प्रयोग सांस्कृतिक आदर्शों तथा पुरूषत्व एवं स्त्रीत्व संबंधी रूढिबद्ध धारणाओं और माध्यम महिलाओं के सशक्तिकरण को एकपक्षीय नहीं अपितु संपूर्णता में प्रभावित कर रहे है।

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 संस्कृति वास्तव में सामूहिक जीवन का ढंग है।

2 महिला के बिना भी सृष्टि की रचना संभव है।

3 जेण्डर के अर्थ का आधार सामाजिक और सांस्कृतिक होता है।

4 भूमण्डलीकरण स्त्री को समान लाभ के अवसर देता है।

5 मीडिया के द्वारा महिलाओं को स्वतंत्र मंच प्रदान किया जा रहा है।

8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1 . समाजीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट करें।

2. मीडिया में नारी की छवि को किस प्रकार सुधारा जा सकता है। सुझाव दीजिए।

3. विभिन्न संस्थाअें द्वारा जेण्डर निर्माण कें सहयोग? स्पष्ट कीजिए।

8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

- Pandey A.K., Emerging Issues in Empowerment of women, Anmol Publication, New Delhi.
- ओकले, अत्र, सेक्स, जेण्डर और सोसायटी, द यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिंगन, एरिया, पब्लिराड, एसोशिएशन विद यू सोसायटी
- अग्रवाल उमेश, भारत में महिला समानता और सशक्तिकरण के प्रयास, योजना नई दिल्ली।

इकाई - 9

सुग्राहयी शिक्षा मे जीवन कौशल आधारित विषयाँ का महत्त्व-समूह शिक्षण (बौद्धिक मंथन) ब्रेन स्टारमिन, एवं दृष्य श्रव्य सांमग्री के संदर्भ में। अध्यापक, परामर्श कर्ता, अभिभावक, समाज (एन.जी.ओ.) के सहयोग एवं भूमिका

Importance of Life skill courses in schools to deal with the issues of gender identity roles, gender just education through group work, brainstorming, audio-visual engagements, and co-participation of school (teachers, counsellors and other resources), home (parents and siblings) and society (NGOs, other expert groups, etc).

इकाई की रूपरेखा -

9.0 प्रस्तावना - जीवन कौशल अर्थ एवं प्रकृति

9.1 जीवन कौशल के प्रकार

9.2 जीवन कौशल शिक्षा के उद्देश्य

9.3 जीवन कौशल शिक्षा की आवश्यकता

9.4 लैंगिंक सुग्राहयी शिक्षा एवं जीवन कौशल

9.5 लैंगिक सुग्राहयता शिक्षा विषयगत प्रमुख नीतिगत परिवर्तन

9.6 जीवन कौशल शिक्षा का पाठ्यक्रम में समावेष

9.7 अभिभावक, शिक्षक एवं विद्यालय की भूमिका।

9.8 जीवन कौशल शिक्षा में समाज एवं एन.जी.ओ. की भूमिका

9.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थं सूची।

9.0 जीवन कौशल अर्थ एवं प्रकृति

विद्यार्थी के सर्वागीण विकास हेतु जीवन कौशल शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे सरवाइवल स्किल्स या दैनिक जीवन कौशल के नाम से भी जाना जाता है।जीवन कौशल मानवीय विकास श्रृंखला मे आवश्यक योग्यताओ के निर्माण में और सकारात्मक व्यवहार का निर्धारण कर किषोरों को इस योग्य बनाते है के वे दैनिक जीवन में आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से व सक्षमता से सामना कर सकें। साथ ही जीवन कौशल शिक्षा द्वारा बालक अपने दैनिक जीवन में निर्णय लेने में दक्ष हो सकत है।विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार जीवन कौशल, ‘‘अनुकूलनात्मक और सकारात्मक व्यवहार की वे योग्यताऐं है जो व्यक्तियों को दैनिक जीवन की माँगों और चुनौतियों से प्रभावपूर्ण समायोजन करने योग्य बनाती है।‘‘जीवन कौशलों का निर्माण करने हेतु सूचना एक पूर्ण आवश्यकता है। हालांकि केवल ज्ञान होने इस बात को सुनिश्चित नही करता कि सूचना से परिपूर्ण एक व्यक्ति विवेकपूर्ण व प्रभावी ढंग से व्यवहार करने योग्य होगा। इस परिप्रेक्ष्य से जीवन कौशल वे योग्यताये हैं जो युवाओं में मानसिक हितों व योग्यताओं को बढ़ावा देने में सहायता प्रदान करती हैं और वे जीवन की सच्चाइयों का सामना करते है। जीवन कौशल ज्ञान, अभिव्यक्ति और मूल्यों को वास्तविक योग्यताओं में बदलने योग्य बनाती है। यूनीसेफ के अनुसार, जीवन कौशल केन्द्रीय योग्यताओं का एक संघ है, जिसे कभी-कभी भावात्मक बुद्धि के रूप में वर्णित किया गया है। इसमें मूलभूत कौशल जैसे - स्व-जागरूकता, परानुभूति, प्रभावपूर्ण सम्प्रेषण, चिन्तन, सृजनात्मक चिन्तन निर्णय लेना एवं समस्या-समाधान को सम्मिलित किया जाता है।

9.1 जीवन कौशल के प्रकार

- सामाजिक एवं अन्तवैंयक्तिक कौशल - (सम्प्रेषण, प्रतिबन्ध कौशल, निश्चित बात करने वाला और परानुभूति सहित)
- संज्ञानात्मक कौशल - (निर्णय लेने वाला, आलोचनात्मक चिन्तन व स्व-मूल्यांकन सहित)
- संवेगात्मक कौशल - (दबाव प्रबन्धन, आन्तरिक नियन्त्रण की शक्ति को बढ़ावा देने सहित)

यदि विद्यार्थी जीवन कौशल अपने में विकसित करते है तब उनमें स्व-मूल्यांकन की सकारात्मक भावनायें विकसित होती है। और वे अपने चिन्तन और दैनिक क्रियाकलापों मे नये जीवन कौशलों को विकसित करने मे सक्षम हो सकेंगे। स्वस्थ्य स्व-सम्मान यह दर्षाता है कि बालकों में समस्या-समाधान निर्णय लेने का कौशल, उत्तरदायित्व की भावना का विकास, अपने उत्तम निर्णय पर कार्य करने की

योग्यता, स्वमूल्य की भावना, दूसरों में रूचि लेना, मूल्यों एवं सिद्धान्तों का स्वामित्व आदि इन सब कौशलों के फलस्वरूप बालक इच्छा महसूस करता है। ये दिशा निर्देषक सफलतम जीवन के घनिष्ठ एवं गूढ़तम घटक हैं।

9.2 जीवन कौशल शिक्षा के उद्देश्य

- 'जीवन कौशल शिक्षा' जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने में सहायक होगी।
- जीवन कौशल शिक्षा युवावर्ग को समस्याओं को समझने, सोचने व निर्णय लेने की क्षमता का विकास कर सकेगी।
- जीवन कौशल शिक्षा के माध्यम से युवा स्वंय की शारीरिक संरचना व उनमें होने वाले परिवर्तनो से परिचित हो सकेंगे।
- जीवन कौशल शिक्षा के माध्यम से युवा लैंगिक समानता, विवाह के महत्त्व व परिवार में माता-पिता एवं परिवार के समस्त सदस्यों के साथ अपनी सामंजस्य की भावना का विकास कर सेकेंगे।
- जीवन कौशल शिक्षा के माध्यम से युवा वर्ग में विविध रोगों (एड्स आदि) नशा मुक्ति के प्रति जागृति उत्पन्न कर सकेंगे।
- जीवन कौशल शिक्षा के माध्यम से युवा वर्ग में बढ़ती जनसंख्या क परिणामों के सन्दर्भ मे चेतना जाग्रत हो सकेगी।
- जीवन कौषलो शिक्षा युवा वर्ग को जीवन मे आ सकने वाली विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं से निपटने में समर्थ बना सकेगी।
- जीवन मूल्य शिक्षा की आवश्यकता एवं तनाव रहित जीवन के महत्त्व से परिचित हो सकेंगे।

9.3 जीवन कौशल शिक्षा की आवष्ययकता

जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिये विभिन्न प्रकार के कौशलों की आवश्यकता होती है। जीवन कौशलों का अध्ययन कोई नया उपागम नही है। विश्वभर में विभिन्न जीवन कौशलों का विकास बालकों के कार्यक्रमों का एक अभिन्न हिस्सा है। समाज विरोधी विद्यार्थियों की आक्रामक प्रवृतियों पर रोक लगाने हेतु सम्प्रेषण कौशलों का प्रयोग किया गया है।, उनमें जीवन कौशल उपागम एक प्रभावी अप्रतिम साधन के रूप मे पहचाना गया है।

किशोर बालक अध्ययन के बाद अपने फैसले लेने मे सक्षम नही पाता। विद्यार्थी जीवन की सच्चाईयों व व्यवहारिकता से परिचित नहीं हो पाता है। इसी को ध्यान में रखते हुए संयुक्त राष्ट्र जनंसख्या कोष के अनुदान से देशव्यापी परियोजना के तहत विद्यालय स्तर पर ''जीवन कौशल शिक्षा'' लागू की जा रही है। राजस्थान देश का पहला राज्य है। जहाँ उच्च माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य विषय के रूप में लागू

किया जा रहा है। राजस्थान में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड का इस कार्य के लिये नोडल एजेंसी के रूप् में नियुक्त किया गया है।

शिक्षा में इस प्रकार का बदलाव आवश्यक है कि जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिये विद्यार्थीकाल में उसे विभिन्न ज्ञान से पारंगत किया जाए। शिक्षा प्रत्येक निर्माण के पीछे एक क्रियात्मक शक्ति है। जीवन कौशल शिक्षा के केन्द्र मे शान्ति, सद्भाव तथा अंहिसा की शिक्षा से सामाजिक परिवर्तन के प्रति सकारात्मक सोच विकसित होगी। जीवन कौशल के माध्यम से विद्यार्थियो को स्वयं को जानने, पहचानने का अवसर मिलेगा, जिससें वे जीवन की चुनौतियों को स्वीकार कर सकेंगे तथा उनके सम्बन्ध में एक स्वस्थ समाज के निर्माण में अपनी भूमिका निभा सकेंगे। भविष्य के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ राष्ट्र निर्माण में योगदान कर सकेंगे।

एक शिक्षित व्यक्ति की मूलभूत विशेषता विभिन्न प्रकार से चिन्तन करने की योग्यता है, ताकि वह समाज में जिम्मेदार नागरिक की भूमिका का निर्वाह कर विस्तृत रूप में विभिन्न व्यावसायिक कार्यो मे इसे एक नियोजन योग्यता के रूप मे देख सकें। सम्भवतः आज के सूचना यूग में चिन्तन सम्बन्धी कौशलों को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है। कई शिक्षाविदों का मानना है कि भविष्य में कार्य करने वालों और नागरिकों के लिए विशिष्ट ज्ञान इतना महत्त्वपूर्ण नहीं होगा। जिनती कि उनकी नई सूचना को सीखने और उसका अर्थ ग्रहण करने की योग्यता। चिन्तन सम्बन्धी कौशल शोध बताते है कि सृजनात्मक और विवेचनात्मक चिन्तन की योग्यताये सिखलाने योग्य और सीखने योग्य होती है।

1. स्व-जागरूक अपनी शक्तियों, दुर्बलताओं (कमियो), मूल्यों, आवश्यकताओं, इच्छाओ, आकांक्षाओं और उपलब्ध अवसरों को समझने की योग्यता है।

2. सामाजिक जागरूकता जो सामाजिक विषय एवं मुद्दों जैसे लिंग-भेद, एड्स, बाल-विवाह, शिक्षा को जारी न रख पाना, कन्या भ्रूण हत्या एवं कार्य शक्ति एवं उससे सम्बन्धित कुपोषण की समस्या से जुडे श्रमिक तथ्यों एव कल्पित कथाओं को समझने का चिंतन कौशल है।

3. सामाजिक जागरूकता का सम्बन्ध समस्याओं के समाधान, विवेकपूर्ण, निर्णय लेना, निर्णयो के परिणामों का समझाने से हैं।

4. व्यक्तिगत विकास के लिये सामाजिक कौशल अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण होते है। किशोर जो अपने साथियों के साथ संतोषजनक सम्बन्ध नही बना पातें है, तो उनके अभिभावकों और शिक्षकों को समान रूप से ध्यान देना चाहिये। जो कौशल किषोंरो के सम्पूर्ण जीवन के लिये महत्त्वपूर्ण होते है लेकिन उन्हे सीखने के अवसर नही मिल पाते है। जिससे सामाजिक सम्बन्धों का प्रारम्भ करने और सामाजिक उलझनों को सुलझाने, जिसमें सम्प्रेषण, समझौता और यूक्ति शामिल है, के कौशल सीखना कठिन है।

5. किशोर समवयस्क सहभागिता के अभाव में सामाजिक आत्मविश्वास को विकसित नहीं कर पाते है। किशोर को वयस्कों से सहायता की आवश्यकता होती है। ऐसे में गम्भीर सम्बन्धों की समस्याओं को सुलझाने, सामाजिक कौशलों का प्रशिक्षण, समस्याओं से सम्बन्धित हस्तक्षेपण भयरहित अनुभव और सहयोगात्मक कक्षाकक्ष योजनायें शामिल है।

6. मध्यस्थता सम्बन्धित व्यवहार कौशल - मध्यस्थता सम्बन्धित व्यवहार कौशल चिन्तन और सामाजिक कौशलों का परिणाम है। मध्यस्थता सम्बन्धित व्यवहार कौशल विवेकपूर्ण चिन्तन जो कि सूचना आधारित विकल्पों और प्रभावपूर्ण सम्प्रेषण का प्रतिफल है। अतः विवेकतापूर्ण और प्रभावपूर्ण व्यवहार करने हेतु व्यक्ति को अपने चिन्तन और सामाजिक कौशल में वृद्धि करने की आवश्यकता है।

7. किषोंरो और युवाओं का एक स्वस्थ और सूखी जीवन जीने के ढंग के प्रभावपूर्ण एवं समूह मे निष्पादन सीखना चाहिए।

8. जीवन कौशल शिक्षा किशोरो के अच्छे स्वास्थ्य और सशक्तिकरण प्राप्त करने मे सहायता प्रदान करती है। सशक्तिकरण व्यक्तियों सूचित स्थानों के आधार पर निर्णय लेने के योग्य बनाने और इच्छित परिवर्तन लाने हेतू दूसरों के साथ व्यवहार करने की प्रक्रिया है। किशोरो को उनकी (स्वंय की) शक्तियों, कमियों और उपलब्ध अवसरों को आलोचनात्मक रूप से आँकने योग्य होना चाहिये।

9. आत्मविश्वास और सामाजिक कौशल, अनवरत शिक्षा को चलने देने, अपनी पसंद के व्यावसायिक पाठ्यक्रम को चुनने, विवाह की आयु में देर करने और गत्यात्मकता लाने जैसे महत्त्वपूर्ण निर्णय हो सकते है, जो किशोरो के स्वास्थ्य को प्रभावित करते है।

10. जीवन कौशल और सामाजिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिये उपलब्ध संसाधनों का अधिक से अधिक उपयोग हो।

9.4 लैगिंक सुग्राहयी शिक्षा एवं जीवन कौशल

लैगिंक सुग्राहयी शिक्षा में जीवन कौशल आधारित विषयों का महत्त्व जीवन कौशल आधारित विषय विशिष्ट स्थितियों में महत्त्वपूर्ण साबित होते है। इन कौशलों को विकसित करने के लिए अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।

लैगिंक सुग्राहयी शिक्षा के अन्तर्गत लैगिंक समानता की भावना का विकास अत्यन्त आवश्यक है यह व्यक्ति की संस्कृति और परम्पराओं पर आधारित सामाजिक ढंग से रची जाती है। किशोर इन्हे तर्को से समझ इनका अर्थग्रहण करे तो समानता की भावना का विकास संभव है। किशोर विद्यार्थियों की जिज्ञासाओं का उचित निदान उच्चप्राथमिक स्तर पर अध्यापकों एवं अभिभावकों द्वारा समय-समय पर किया जाना चाहिए। महिलाओं और लडकियों से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार लैं गिक समानता के प्रति रचित करेगा। जीवन कौशल सहकारिता एंव व्यक्तिवादी स्पर्धा के स्थान पर समग्रता की पृष्ठभूमि में पनपते है।

जेण्डर-सेन्सिअिव शिक्षा में पूर्वता तभी आ सकेगी जब सभी बालक-बालिकाएं एक आधारभूत स्तर तक शिक्षा प्राप्त कर और शिक्षा को पाठ्यवस्तु में लैगिंक भूमिकाओं लैंगिंक व्यवहारो, लैंगिक सम्बन्धों और संचेतनाओं का सावधानी पूर्वक समोवशण होगा।

समूह कार्य योजना एवं बौद्धिक मंथन द्वारा जैण्डर सुग्रहय शिक्षा को सफल बनाने हेतु प्रमुख लक्ष्य स्थापित करने होगें जैसे -

1. समस्याओं के समाधान की योग्यता विकसित करना।
2. जिज्ञासात्मक प्रश्न करने की योग्यता हासिल करना।
3. चिन्तन, मनन एवं आलोचना करना।
4. प्रयोगात्मक, अनुभवात्मक एवं पृष्ठपोषण आधारित शिक्षा पर बल दिया जाना चाहिए।
5. महिला संघो के माध्यम से कार्य नियोजन एवं क्रियान्वयन किया जाना चाहिए।
6. अधिगम केन्द्रित, अध्येता केन्द्रित समूह केन्द्रित एव स्व क्रिया द्वारा सुग्रहय शिक्षा पर बल।
7. कक्षाओं में सभी स्तर पर एवं शिक्षण प्रशिक्षण के माध्यम द्वारा विद्यार्थियों को ध्यान जैण्डर आइडेनटिटी एवं किशोर की महत्त्वपूर्ण भूमिका की और आकर्षित किया जाना चाहिए।
8. सकारात्मक आत्मसम्प्रत्यय का निर्माण विद्यार्थियों में किया जाना चाहिए।
9. जनंसचार एवं मीडिया द्वारा जेण्डर समानता पर बल दिया जाए एवं दोनो के बीच परस्पर सहयोगी-भूमिका को बढावा दिया जाए।
10. पाठ्यक्रम में लैंगिक सुग्राहयता और महिला सशक्तिकरण विषय विषयों का समावेष हो।

जेण्डर सुग्राही शिक्षा द्वारा नेतृत्व शीलता, सम्प्रेषण कौशल, स्व रोजगार, दक्षता परक कौशल अर्जन, कानूनी साक्षरता, जनसंख्या शिक्षा, एड्स, जागरूकता शिक्षा एवं स्वास्थय शिक्षा के प्रति किशोर बालक-बालिकाओं को उचित मार्गदर्षन एवं परामर्श की आवश्यक है।

स्त्री-अनुपात, और स्त्री पुरूष सम्बन्धों में समझदारी पूर्ण सहयोग भारत जैसे विशाल देश की विशाल नारी शक्ति को राष्ट्रीय विकास मुख्य धारा से जोड़ते एवं विशाल मानव शक्ति के रूप् में उदीप्त करना शिक्षा के माध्यम से किया जा सकता है।

मूल अधिकारों द्वारा प्रदत्त समानता की गारण्टी लैगिक असामनता का उन्मूलन करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 ने व्यवहारिक धरातल पर शिक्षा की महिला पुरूष समता के क्षेत्र में भूमिका स्वीकारते हुए महिला सशक्तिकरण का उद्घोष किया। इसमें लैंगिक आधारो पर सुग्रहता को शिक्षा द्वारा समानता का केन्द्र बिन्दु माना।

इस दृष्टि से निम्न प्रावधान ध्यान देने योग्य है। जिनके द्वारा महिला-शिक्षक को बढावा देकर लैगिंक असमानता को दूर किया जा सकता है।

विभिन्न स्तर पर

1. शिक्षा द्वारा महिलाओं के मूलभूत स्तर उन्नयन संभव है।?
2. राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था महिला सशक्तिकरण की दिशा में सकारात्मक व प्रभावी भूमिका निष्पादित करेगी।
3. भेदभाव मूलक समस्त नकारात्मक परम्पराओं को खारिज कर महिलाओं के पक्ष में सुस्पष्ट आधार तैयार होगा।

4. स्मता-मूलक नवीन मूल्यों का सृजन व संचार करने हेतु पाठ्यपुस्तक, पाठ्यवस्तु पाठ्यक्रमीय प्रारूपों का निर्माण होगा।

5. शिक्षकों का प्रसिक्षण एवं अभिविल्यास इस उद्देश्य से किया जाएगा कि वे महिला समता के प्रति एवं सशक्तिकरण कार्यक्रमों का सही परिप्रेक्ष्य में संचालन करन सकें।

6. इस प्रकार शिक्षा महिला उत्थान की दिशा में एक सामाजिक अभियांत्रिकी के रूप में होगी।

7. महिला-विषयक अध्ययन एवं शोध कार्य महिला विकास को गति देने वाले हों।

8. महिलाओं में निरक्षता उन्मूलन, आरम्भिक शिक्षा में प्रवेश एवं रोक को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाएगी।

9. महिला शिक्षा हेतु विशेष सहायता सेवाएं होगी ये महिला उन्नयन कार्यक्रमों का समयबद्ध संचालन एवं प्रवर्तन करेगी।

10. व्यावसायिक तकनीकी और रोजगार परक शिक्षा पर प्रतिबल होगा।

11. लिंगभेद को समाप्त कर महिलाओं की गैर परम्परागत व्यवसायों में भागीदारी बढाई जाएगी।

9.5 लैंगिक सुग्राहयता शिक्षा विषयगत प्रमुख नीतिगत परिवर्तन

1. वृहद, केन्द्रीकृत नियोजन के स्थान पर सूक्ष्म, विकेन्द्रित, सहभागी नियोजन

2. कल्याण के स्थान पर विकास एवं सशक्तिकरण

3. महिला मुद्दों क साथ-साथ बालिका मुद्दों पर प्रतिबल

4. बालिका शिक्षा के नैतिक आधारों से निवेष की ओर।

5. जन शक्ति/जनपूँजी से मानव संसाधन विकास और अन्ततः मानव विकास व मानव अधिकारों की ओर जीवनकौशल के द्वारा लैंगिक समानता बढ़ी है इसी के साथ बढ़ा हुआ स्वसम्मान, आत्मविश्वास, दृढ़ता, सामाजिक संवेदना, सम्प्रेषण कौशल योजना बनाना और लक्ष्य निर्धारित करने की योग्यता, सीखने के लिए ज्ञान, विशिष्ट विषयों से संबंधित ज्ञान की प्राप्ति।

इसके द्वारा अधिगम अभिवृति, सीखने की योग्यता, ज्ञान अर्जित करना प्रभावपूर्ण, ढंग से पढ़ना-लिखना एवं संप्रेषण महत्त्वपूर्ण है। सीखने के लिए परिश्रम एवं धैर्य भी आवश्यक है। तथ्यो का विश्लेषण आवश्यक है। इस विश्लेषण के बिना व्यक्ति सामान्यीकरण और उसका उपयोग, एक विशिष्ट संदर्भ ज्ञान के बिना नहीं कर पाएगा।

जीवन कौशल व्यक्ति को उसकी कुशलताओं, योग्यताओं और सीमाओं को पहचानने मे सहायता करते है। अपनी शक्तियों के सही उपयोग में सहायता मिलती है।

सहयोगात्मक व्यवहार की शिक्षा भी जीवन कौशल शिक्षा का अभिन्न अंग है। इसके द्वारा दूसरों को ध्यान से सुनते, उन्हे समझने की योग्यता व्यक्ति के ज्ञानार्जन करनमे मे सहायता करती इसके द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता भी सुनिश्चित होती है।

जीवन कौशल शिक्षा द्वारा सही गलत का निर्णय लेने की योग्यता विकसित होती है। इसके अतिरिक्त सही कार्य करने हेतु दृढ़-विश्वास का साहस भी होना चाहिए।

जीवन कौशल द्वारा स्व-जागरूकता परानुभूति, संवेगों का सामना करना दबाव का सामना करना, निर्णय लेना, समस्या-समाधान, सृजनात्मक चिन्तन, विवेचनात्मक चिन्तन, प्रभावपूर्ण, संम्प्रेषण, अन्र्तवैयक्तिक संबंध आदि योग्यताएं एवंकुशलताएँ विकसित हो जाती है।

9.6 जीवन कौशल शिक्षा का पाठ्यक्रम में समावेष

बौद्धिक मंथन, समूह कार्य योजना एवं अन्य शैक्षिक विधियों द्वारा परामर्श शिक्षकों की मदद से विद्यालय के अन्य महत्त्वपूर्ण रिर्सोसिस ( ) द्वारा जीवन कौशल शिक्षा को एकीकृत किया गया। अध्यापक, परामर्शदाता, परिवार, अभिभावक समाज एवं एन.जी.ओ. के सहयोग द्वारा जीवन कौशल शिक्षा का व्यवहारिक समझ व स्वरूप् समझना आसान रहता हे। भारतीय विद्यालय शिक्षा प्रणाली की प्रकृति की दृष्टि से नवाचारों को शिक्षा प्रणाली मे प्रक्रिया के साथ एकीकृत करना सर्वश्रेष्ठ है। इसमं विद्यार्थियों के कौशलों (चिन्तन सामाजिक एवं व्यवहारात्मक) का निर्माण प्रयोगात्मक अधिगम के माध्यम से करना चाहिए। पाठ्यक्रम में जीवन कौशल शिक्षा किशोर प्रजनन स्वास्थ्य को शामिल करने को उचित मानती है। और बुद्धि विकास की प्रक्रिया से संबंधितकिशोरो की चिन्ताओं को भी संबोधित करती है। कक्षा iv के पाठ्यक्रम हेतु माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (राजस्थान 2003) द्वारा एक अलग विषय के रूप् में निम्न पाँच विषयी क्षेंत्र विकसित किए गए।

1. **स्वंय को समझना एवं स्वंय की योग्यता एवं कौशलों व कमियोंका ज्ञान होना -** स्व कल्पना व स्व सम्मान की भावना का विकास करना। अपने शारीरिक स्वरूप की पहचान करना एवं अन्र्तनिहित सम्भावनाओं को खोजना। राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति संवेदन्शीलता विकसित करना जीवन में अहिंसा व शान्ति का महत्त्व। बालक बालिकाओं को स्वयं के शारीरिक मानसिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास को सुदृढ करना।

   लैंगिक समानता का ज्ञान करवाना विभिन्न क्षेत्रों मे समान अवसर प्रदान करना एवं विपरीत लिंग क प्रति सम्मानजनक सोच उत्पन्न करना।

2. **स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति सवचेत करना -** स्वास्थ्य की अभिधारणा को समझना, व्यक्तिगत स्व पर्यावरणीय दृष्टि से।

   स्वस्थ व्यक्ति, स्वस्थ पर्यावरण का तात्पर्य एवं महत्त्व समझना। प्रज्जन स्वास्थ्य से संबंधित सभी विषयों का पूर्ण ज्ञान व सही जानकारी समय पर उपलब्ध करना।

   एच.आई.वी. एड्स व एस.डी.डी रोगों से संबंधित सामान्य जानकारी प्रदान करना। नशीले पदार्थ संबंधित सामान्य जानकारी देना, नशीले पदार्थों के शरीर व समाज पर प्रभाव एवं नशीलें पदार्थो का उपयोग रोकने के उपाय व व्यवहार।

   पोषक तत्वों की जानकारी उपलब्ध कराना कुपोषण के प्रभाव एक खाद पदार्थो मे राक्सिन व उनका प्रभाव।

भ्रामक विज्ञापनों का दुष्प्रभाव आदि का ज्ञान देना एवं सभी को व्यवहारिक स्तर पर उपयोग करना।

3. **संबंधो के प्रति जागरूकता -** पारिवारिक संबंधो इनके स्वरूप, उपादेयता एवं सीमाओं को जानना। परिवार के सदस्यों की पारस्परिक भूमिका, सम्प्रेषण, प्रजनन शिशुपालन एवं वृद्धो की देखभाल। परिवार के सदस्यों का उत्तर दायित्व सामाजिक संबंध एवं महत्त्व के अतिरिक्त शारीरिक, भावानात्मक एवं सामाजिक सुरक्षा समवयस्कों के पारस्परिक संबंध। परिवार एवं समाज द्वारा किशोर किषोरियों को समझाना।

4. **समस्या समाधान कौशल का विकास करना** – विद्यार्थियों को जीवन कौशल शिक्षा के अन्तर्गत समस्याओं की पहचान एवं निर्धारण से संबंधित योग्यताओं का विकास करना। असमानता का व्यवहार, सम्प्रेषण का प्रभाव, सामाजिक स्वीकारोषक्ति का अभाव आदि महत्त्वपूर्ण आयाम है जिनमें जीवन कौशल शिक्षा द्वारा सकारात्मक गुण विकसित किए जाना संभव हैं।

5. जीवन कौशल शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में भविष्य की सोच एवं जीवन मे सामाजिक एंव सास्कृतिक मूल्यों का महत्त्व की शिक्षा देना आवश्यक है। विवाह से संबंधित अवधारणाए स्पष्ट रूप से विद्यार्थियों को औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप में बता देनी चाहिए कैरियर के प्रतिसजगता, आपदाओं की परिस्थिति में विवेकपूर्ण हल ढूंढना, जनसंख्या वृद्धि एवं विकास, भविष्य की योजना बनाना एवं तनावरहित जीवन के लिए आवश्यक उपागम पर परिचर्या विद्यार्थियों के साथ समय समय पर आयोजित की जानी चाहिए।

9.7 अभिभावक शिक्षकों एवं विद्यालय की भूमिका

प्राथमिक से उच्च प्राथमिक विद्यालय के बीच के सवंमित में किशोर बालक अक्सर तनाव उत्पन्न करने वाले अनिश्चितता की भावनाओं और दवावों को झेलता है जो कि विभिन्न विकासों के फलस्वरूप (षारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक आदि) होने वाले परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होते है।

जो बालक विद्यालय में सकारात्मक दृष्टिकोण रखते है वे किशोर, बहुत अधिक प्रिय होते हैं। वे अपने आपको अस्वीकार्य व्यवहारों जैसे मदिरापान सिगरेट पीना, नशीली दवाइयों का सेवन, हिंसा और अन्य असुरक्षित क्रियाओं से मुक्त रहते है।

यदि स्व-वास्तीकरण के लिए किषोरों की मूलभूत आवश्यकताओं की प्राप्ति नही होती है तो शैक्षणिक सफलता की प्राप्ति नहीं हो सकती है। विद्यालय बालकों को समन्वयक साथियों के साथ अन्तक्रिया के अवसर प्रदान करता है जो किशोरावस्था के वर्षो मे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। इसके साथ ही विद्यालय से जुडाव अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते है क्योंकि किशोर बालकों को दूसरे साथियों के साथ सकारात्मक और प्रोत्साहन देने वाले संबंधो की आवश्यकता है। माता-पिता दूसरे बालकों के बारे में भी जानकारी प्राप्त करना चाहते है। जिन्होनें शिक्षक सम्मेलन और विद्यालय के क्रियाकलापों में भाग लेते हुए अपने किशोर जीवन में नाटकीय बदलाव भी किए है। जब अभिभावक यह दर्षाते है कि उनके लिए

विद्यालय से जुडाव महत्त्वपूर्ण है, तब किशोर, वैसा ही अनुभव करने के लिए प्रोत्साहित होंगे। विद्यार्थियों को जानकारी दी जाती है। कि पूर्व किशोरावस्था मे उनके लिए क्या महत्त्वपूर्ण है। बालकों के परिपक्व अभिभावक विद्यालय के विभिन्न क्रियाकलापों मे भाग लेने के लिए विद्यार्थियो को विद्यालय से खतरा भी उठाना पड सकता है। अन्य संकेतों मे इनको भी शामिल किया जा सकता है। यदि विद्यार्थियों मे अधिक अनुपस्थिति, विफलताएं आत्मविश्वास में कमी, भविष्य के लिए सीमित लक्ष्य और ग्रेड की गिरावट आदि हो तो अभिभावक सजगता से विद्यार्थियो की इन समस्याओं का समाधान विद्यालय के शिक्षक एवं समाधान विद्यालय के शिक्षक एवं परामर्शदाताओं की सहायता से कर सकते है।

9.8 जीवन कौशल शिक्षा में समाज एवं एन.जी.ओ. की भूमिका

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में इस बात पर जोर दिया कि सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया मे पर्यावरणीय संचेतना का विकास किया जाए। इसमें कहा गया है। कि पर्यावरणीय मूल्यों के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार की मूल्य शिक्षा को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाना चाहिए।

समाज एवं एन.जी.ओ. भी जीवन कौशल शिक्षा को विद्यार्थियों तक पहुंचाने मे सक्रिय भूमिका निभाते है।

जीवन कौशल शिक्षा का सैदांन्तिक स्वरूप विद्यार्थियो को कक्षाओं के माध्यम से प्रदान किया जाता है। जबकि इसके व्यवहारिक स्वरूप को विद्यार्थी परिवार, समाज एवं एन.जी.ओ. के माध्यम से सीखते है।

आज के बदलते परिवेश में आवश्यकता कि सजग शिक्षकगण एवं अभिभावक जीवन कौशल शिक्षा पर विशेष बल देते हुए विद्यार्थियो को सम्पूर्ण विकास की ओर अग्रसर करें।

9.9 अभ्यास प्रश्न

1. जीवन कौशल शिक्षा से आपका क्या तात्पर्य है।
2. जीवन कौशल शिक्षा के विभिन्न प्रकारो का विश्लेषण कीजिएं।
3. महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु जीवन कौशल शिक्षा का महत्त्व वर्णित कीजिए।
4. लैंगिक सुग्राहयता शिक्षा विषयगत प्रमुख नीतिगत परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए।
5. जीवन कौशल शिक्षा का पाठ्यक्र में समावेष क्यो महत्त्वपूर्ण है।
6. अभिभावको, शिक्षकों विद्यालय, समाज एवं एन.जी.ओ. की भूमिका जीवन कौशल शिक्षा में कैसी और क्यों होनी चाहिए।

9.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अरोड़ा, रीता (2005) शिक्षा में नवचिन्तन, शिक्षा प्रकाशन जयपुर।
2. राव, डी.वी. एज्यूकेशन फॉर वीमन, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. अग्रवाल, जे.सी. (2001) मार्डन इन्डियन एज्यूकेशन, शिप्रा पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

इकाई – 10

पाठन-पठन प्रक्रिया में लिंग संवेदीकरण

(पाठ्यक्रम का निर्माण (लिंग परिपेक्ष्य में), शिक्षण-प्रशिक्षण में लिंग संवेदीकरण, लिंग संवेदीकरण में वर्तमान प्रचलन, मुद्दे और चुनौतियां लिंग समानता कक्षा के संदर्भ में, विधियाँ शैक्षणिक सामग्री बनाने में जिससे लिंग समान शिक्षा हेतु)

Gender Sensitizations in Teaching Learning Process (formulations of curriculum (with gender perspective), gender sensitization in teacher training institutions, current trend towards gender sensitization, issues and challenges in regard to working towards gender equality in the class room, strategies to prepare pedagogic material to promote gender just education)

इकाई की रुपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 लिंग संवेदी अध्यापन अधिगम की आवश्यकता

10.3 नारीवादी शिक्षाशास्त्र : संप्रत्यय

10.4 नारीवादी शिक्षाशास्त्र : क्रियान्वयन

10.5 नारीवादी शिक्षाशास्त्र : नियंत्रण और मूल्यांकन
10.6 शिक्षा मे लैंगिक मुख्यधारा की आवश्यकता
10.7 शिक्षा मे लैंगिक मुख्यधारा हेतु उद्देश्यों का निर्धारण एवं व्यूहरचना की पहचान करना
10.8 शक्तियों में विभेद एवं शिक्षक विद्यार्थी सम्बन्ध
10.9 सारांश
10.10 अभ्यास प्रश्न
10.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.1 प्रस्तावना

लिंग समाज की दृष्टि में व्याप्त पुरुषों और स्त्रियों के बीच अंतर है। पुरुषों को पारम्परिक रूप से समाज में सक्रिय भूमिका में दर्शाया जाता है जबकि स्त्रियों को एक श्रृंगार की वस्तु के रूप में अधिक दर्शाया गया है। कार्यस्थल पर लिंग-आधारित मुद्दे हाल ही में श्रम-बाजार में चर्चाओं का एक महत्त्वपूर्ण विषय बन गया है। एक सर्वाधिक प्रासंगिक मुद्दा लिंग पर आधारित भेदभाव है जिसमें किसी कार्य को करने के लिए महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों को अधिक प्राथमिकता दी जाती है।

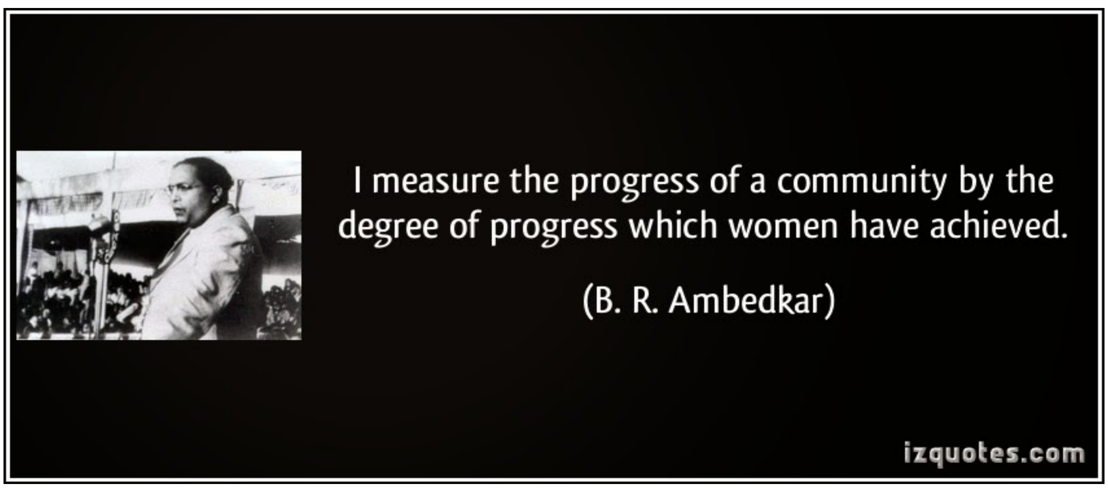

शिक्षा सामाजिक क्रांति का एक शक्तिशाली साधन है । समाज में परिवर्तन, लाने के लिए शिक्षा एक प्रभावशाली यन्त्र है । डी. राधाकृष्णन के अनुसार "शिक्षा परिवर्तन का एक साधन है, जो कार्य समाज में परिवार, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थाओं द्वारा होता था, वह आज शैक्षिक संस्थाओं द्वारा किया जाता है । समाज की शक्ति का आधार शिक्षा ही है।

कोठारी शिक्षा आयोग के अनुसार, "सामाजिक न्याय और लोकतंत्र के पर ही नहीं बल्कि औसत कामगर की क्षमता बढ़ाने के लिए, राष्ट्रीय उत्पादकता में वृद्धि करने के भी हर बच्चे के लिए निशुल्क एवं सार्वजनिक शिक्षा सबसे ज्यादा अग्रता वाला शैक्षिक उद्देश्य है । "लोकतंत्र में सब सभी नागरिक शिक्षित व साक्षर होंगे, तभी वे देश व समाज के योग्य नागरिक बन सकते है तथा आवश्यक सामाजिक परिवर्तन हो सकता है ।

आधुनिक समय में प्रत्येक राष्ट्र में शिक्षा का लक्ष्य सभी लोगों को शिक्षा सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए उचित व समान अवसर प्रदान करना है। लेकिन यह सभी नवोदित तथा राष्ट्रों की एक प्रमुख समस्या है, क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र में पिछड़े वर्ग तथा आदिवासी जातियों के लोग रहते है जो शताब्दियों से पिछड़े हुए है तथा समाज का एक प्रमुख वर्ग स्त्री वर्ग भी उन्नत अवस्था में नहीं है। इनके लिए शैक्षिक अवसर उपलब्ध नहीं है। इनके लिए शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराना प्रत्येक राष्ट्र का प्रमुख कर्तव्य होना चाहिए। इसी में समाज व राष्ट्र का हित निहित है।

लोकतांत्रिक समाज के निर्माण एवं विकास के लिए भारतीय संविधान में पुरूष एवं महिला को समान नागरिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्त्रियों की दशा में काफी सुधार हुआ है, लेकिन अभी इस दिशा में पूर्ण सफलता नहीं मिली है। इसके विभिन्न कारण हैं जैसे माता-पिता की बालिका शिक्षा के प्रति नकारात्मक सोच, शिक्षा में गुणात्मकता की कमी, विद्यालय भवनों की दूरी, महिला शिक्षिकाओं का अभाव, बाल विवाह एवं लिंग भेद।

जैसे कि हमने इस खण्ड के प्रथम इकाई में देखा कि लिंग भेद का प्रभाव किस प्रकार शिक्षा पर पड़ता है।

अत: शिक्षा में लैंगिक समानता एवं लिंग संवदेनशीलता लाने हेतु रूढ़िगत विचारों से ऊपर उठकर बालक एवं बालिकाओं को समान शैक्षिक व्यवस्थाएं उपलब्ध करवानी होंगी। ताकि उनकी शैक्षिक उपलब्धियों पर लिंग भेद का प्रभाव न हो सकें।

10.2 लिंग संवेदी अध्यापन अधिगम की आवश्यकता

लिंग संवेदी अध्यापन अधिगम की आवश्यकता को जानने से पहले आवश्यक है कि हम लिंग एवं लिंग संवेदना के सम्प्रत्यय को जान ले।

लिंग

लिंग पुरुषों और स्त्रियों की उन भूमिकाओं एवं उत्तरदायित्वों की और संकेत करता है। जिनकी रचना हमारे परिवार, समाज और संस्कृति द्वारा की गई है ये भूमिका एवं उत्तरदायित्व अधिगमित है जो कि समय के साथ और विभिन्न संस्कृतियों के अनुसार परिवर्तित हो सकते हैं।

Gender- Gender refers to the role and responsibilities of women and men that are created in our families, societies and cultures. These roles and responsibilities are learned. They can change over time and according cultures.

लिंग संवेदना

लिंग संवेना लिंग से संबंधितमुद्दों तथा विभिन्न सामाजिक स्थितियों और लिंग सम्बन्धी भूमिकाओं के कारण उत्पन्न हुई स्त्रियों की धारणाओं और रूचियों को पहचानने की योग्यता है।

Gender Sensitivity- Gender sensitivity is the ability to recognize gender issues women's different perceptions and interest arising from their different social location and gender roles.

समाज की संरचना, संगठन और व्यवस्था में लिंग की समानता और असमानता विशेष महत्त्व है। लिंग की असमानता समाज की सन्तुलन व्यवस्था और विकास को प्रभावित करती है। पुरूषों और स्त्रियों को विकास हेतु पर्याप्त समान अवसर प्राप्त न होने की स्थिति को लिंगीय असमानता कहा जाता है।वर्तमान युग में विश्व में लिंगीय समानता की स्थापना को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जा रही है तथामानवाधिकार संरक्षण के समर्थकों ने स्त्रियों के प्रति होने वाले किसी भी प्रकार के अन्याय, शोषण, अत्याचार तथा भेदभाव का अधिकाधिक विरोध करना प्रारम्भ किया है। पश्चिम से शुरू हुए नारी स्वातन्त्र आन्दोलन ने आज सम्पूर्ण विश्व की महिलाओं को आन्दोलित किया है तथा उनमें व्यापक रूप से सामाजिक एवं राजनैतिक जागरूकता उत्पन्न की है।

विश्व के विकसित देशों में लिंगीय समानता जहां वास्तविकता का ले रही है, विकासशील एवं अविकसित देशों में अभी भी यह कोरे आदर्श के रूप में ही स्वीकृत है और अभी पुरूषों की बराबरी करने में महिलाओं को काफी समय लगेगा।

पिछले कुछ वर्षो में सामाजिक विज्ञानों में लिंग के सामाजिक पक्षों (Gender) को उसके जैविकीय पक्षों (Sere) से अलग कर जेण्डर के रूप में समझने और अध्ययन करने की एक नई शुरूआत हुई है। जेन्डर सम्प्रत्यय स्त्रियों और पुरूषों के बीच सामाजिक रूप से निर्मित भिन्नता के पहलुओं पर ध्यान आकर्षित करता है। किन्तु आजकल जेण्डर का प्रयोग व्यक्तिगत पहचान और व्यक्तित्व को इंगित करने के लिए ही नहीं किया जाता, अपितु प्रतीकात्मक स्तर पर इसका प्रयोग सांस्कृतिक आदर्शो तथा पुरूषत्व एवं स्त्रीत्व संबंधीरूढ़िबद्ध धारणाओं और संरचनात्मक अर्थो में संस्थाओं और संगठनों में लिंग भेद के रूप में भी किया जाता है।

लिंगभेद हमारी व्यवस्था का प्रमुख अंग है। परिवार में लड़की एवं लड़के के पालन पोषण में भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया जाता है। जैसा कि हम जानते हैं लिंग से सम्बन्धित भूमिकाएं परिवार, माता-पिता, समाज आदि के द्वारा अधिगमित होती है। सामान्यतया यह देखा गया कि बालिकाएं व स्त्रियों का स्वसम्प्रत्यय (Self concept) नकारात्मक होता है। वे अपने आपको आवश्यक, महत्त्वपूर्ण एवं मूल्यवान नहीं समझती हैं। हमारी संस्कृति में बच्चों के साथ उनके लिंग के आधार पर व्यवहार किया जाता है।

परिवार में बालकों को बालिकाओं की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है। बालिकायें ये देखते हुए ही बड़ी होती है कि हमारे घरों, रितिरिवाजों त्यौहारों आदि में अतिमहत्त्वपूर्ण पुरूष ही होते हैं। जैसे कि छोटी लडकियाँ अच्छे पति प्राप्ति के लिए व्रत रखती है, स्त्रियाँ अपने पति की लम्बी उम्र के लिए व्रत रखती हैं, पुत्र प्राप्ति के लिए व्रत रखती हैं। हमारे कई त्यौहारों जैसे रक्षाबन्धन, भाईदूज आदि में भी केन्द्रीत पात्र भाई अर्थात् लड़का ही होता है। इस भेदभाव पूर्ण व्यवहार के कारण बालिकाओं के संर्वागीण विकास में बाधा पहुँचती है। पुरूष प्रधान समाज होने से स्त्रियाँ अपने निर्णय स्वयं नहीं ले पाती है। स्त्रियों में बचपन से ही असुरक्षा एवं हीन भावना का विकास हो जाता है। शिक्षा के अभाव व भेदभाव के कारण हीनता की भावना उनके स्वभाव का स्थाई लक्षण बन जाती है।

अत: वर्तमान में आवश्यकता है कि लिंग भेद को समाप्त कर स्त्रियों के अन्दर स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता एवं अपने अधिकारों के प्रति सजगता की भावना का विकास किया जाए। यह कार्य शिक्षा में व्याप्त असामनता को दूर कर तथा लिंग संवेदी अध्यापन-अधिगम को बढ़ावा देकर किया जा सकता है।

10.3 नारीवादी शिक्षाशास्त्र : संप्रत्यय

नारीवादी शिक्षाशास्त्र एक सिद्धान्त है जो कि शिक्षण, संस्थाएं जहां पर अधिगम होता है और ज्ञान के लोकतांत्रिक सृजन से संबंधितहै।"

शिक्षक जो कि नारीवादी शिक्षाशास्त्र का उपयोग अपने शिक्षण में करते हैं, वे कक्षा में एक सहयोगी अधिगम वातावरण स्थापित करने में विश्वास करते हैं जहां विद्यार्थियों के विचारों को भी महत्त्व दिया जाता है। उन शिक्षकों का यह विश्वास होता है कि विद्यार्थी अपने अधिगम हेतु स्वयं उत्तरदायी होना सीखते हैं। प्रोफेसर हौस्मन के अनुसार प्रत्येक विद्यार्थी पाठ्यक्रम सामग्री के प्रति अपनी समझ के लिए स्वयं जिम्मेदार होता है।

यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि एक कक्षा कक्ष में जहां नारीवादी शिक्षाशास्त्र का उपयोग किया जा रहा है, वहां विद्यार्थी अपने ज्ञान के सृजन हेतु अधिक उत्तरदायी होते हैं, बजाए अपने परम्परागत कक्षा-कक्ष के।

केरन वार्रन एलिसन हिंनेगोल्ड (1993) के अनुसार - " नारीवादी शिक्षाशास्त्र, नारीवादी सिद्धान्त का शैक्षिक स्पष्टीकरण है, जो कि एक कक्षा-कक्ष व्यवस्था में नारीवादी विचारों को अभ्यास में परिणत करता है।

नारीवादी के विभिन्न सिद्धान्त हैं जैसे - उदारवादी नारीवाद सिद्धान्त, समाजवादी मार्क्सवादी नारीवाद सिद्धान्त, आमूल परिवर्तनवादी नारीवाद सिद्धान्त आदि।

उदारवादी नारीवाद एक विचारधारा है, जो व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा कल्याण के महत्त्व में विश्वास करती है तथा जो इस बात पर बल देती है कि सामाजिक संगठन में परिवर्तन नवाचारों द्वारा संभव है। शिक्षा के दृष्टिकोण में उदारवादी नारीवाद इस बात पर बल देती है कि सभी बच्चों को समान अवसर दिए जाए एवं उनके लिए समान अवसर व उद्देश्य हों। ये पाठ्यचर्या को पुरूषप्रधान नहीं मानते हुए एक समान पाठ्यक्रम पर बल देते हैं।

मार्क्सवादी समाजशास्त्रीय सिद्धान्त स्थायीत्व की अपेक्षा परिवर्तन को अधिक महत्त्व होता है। मार्क्स ने अपने सामाजिक विश्लेषण में उत्पादन प्रणाली, उत्पादन के माध्यम, वर्ग-चेतना, वर्ग-संघर्ष जैसी अनेक अवधारणाओं का प्रयोग कर उन्हें नया अर्थ प्रदान किया हैं।

आमूल परिवर्तनवादी नारीवाद को मूलत: एक संघर्ष सिद्धान्त माना गया है। यह उन वर्गों के अध्ययन पर ज्यादा जोर देता है जो शोषित एवं अपेक्षित रहे हैं। ये समतावादी समाज की रचना हेतु अतिवादिता तथा जन सहयोग की आवश्यकता पर विश्वास करते हैं। इन्होंने अपने आंदोलनों में वैचारिक आधार पर पुरूष नारी के समेकित प्रयास पर जोर दिया।

एक अन्य नारीवादी सिद्धान्त है - रेडिकल नारीवाद। यह सिद्धान्त पाठ्यचर्या पर नियंत्रण करने एवं सैद्धान्तिक रूप से लिंग विरोधी सिद्धान्तों पर आधारित है। यह रूढ़िवादी तथा परम्परागत तरीकों का विरोध करता है।

इस प्रकार नारीवादी शिक्षा शास्त्र का उपयोग एक कक्षा कक्ष व्यवस्था में करके हम उपर्युक्त विभिन्न नारीवादी सिद्धान्तों से सम्बन्धित विचारों को व्यावहारिक रूप प्रदान कर सकते हैं।

एक नारीवादी कक्षा कक्ष में विद्यार्थियों की समझ, पाठ्यक्रम संश्लेषण और उनके स्वयं के लक्ष्यों और उद्देश्यों हेतु विचार विमर्श पर जोर दिया जाता है। विद्यार्थियों का एक निश्चित दृष्टिकोण नहीं होता है। विद्यार्थियों को चाहिए कि उनके अपने दृष्टिकोण के साथ-साथ उन्हें उन दृष्टिकोणों के प्रति भी समझ हो जिनसे वो सहमत नहीं है।

अधिकांश शिक्षाविद् शिक्षा में लिंग भेद को समाप्त करने हेतु शिक्षाशास्त्र का अनुमोदन करते हैं। नारीवादी शिक्षाशास्त्र का मुख्य सिद्धान्त है, शिक्षक को अपने विद्यार्थियों पर न तो अधिक नियंत्रण रखना चाहिए और नहीं मतारोपण करना चाहिए।

अत: यह शिक्षाशास्त्र शिक्षा को एक लोकतांत्रिक दिशा प्रदान करता है तथा कक्षा-कक्ष को व्यवहारिक बनाने का प्रयत्न भी करता है।

10.4 नारीवादी शिक्षाशास्त्र : क्रियान्वयन

एक नारीवादी कक्षा (Feminist Classroom)वह स्थान है, जहां शिक्षक एवं विद्यार्थी एक साथ कार्य करते है तथा शिक्षक एवं विद्यार्थियों के सम्बन्धों के मध्य दूरी और विरोधाभास को कम किया जाता है। नारीवादी शिक्षाशास्त्र विद्यार्थियों को अधिगम प्रक्रिया में व्यस्त रखता है जो कि शैक्षिक जगत को अधिक वास्तविक बनाता है।

नारीवादी कक्षा इस बात से संबंधितहोती है कि शिक्षक एवं शिक्षार्थी किस प्रकार एक दूसरे से सम्बन्धित है तथा पाठ्यसामग्री को किस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है। विद्यार्थियों एवं शिक्षकों दोनों के ही व्यक्तिगत अनुभवों का समाकलन पाठ्यसामग्री में करके एक ऐसे वातावरणों का सृजन किया जाता है जहां पर अनेक तथा कभी-कभी विरोधाभासी आवाजें सुनाई देती है। इस प्रकार नारीवादी शिक्षाशास्त्र के उपयोग हेतु विद्यार्थियों की कक्षा के दौरान सक्रिय भागीदारी आवश्यक होती है।

कक्षा में उन विद्यार्थियों पर विशिष्ट ध्यान दिया जाता है जो कि प्राय: खामोश रहते है एवं सभी विद्यार्थियों को बोलने और सुनने के समान अवसर प्रदान किये जाते है।

कक्षा में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि कक्षा का प्रत्येक सदस्य कक्षा में संरचित किये जाने वाले ज्ञान की संरचना में सक्रिय रूप से हिस्सा ले। कक्षा में विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी से एक ऐसा वातावरण सृजित होता है जहां विद्यार्थी यह महसूस करते है कि वे कुछ नये और भिन्न रूप से अधिगम कर रहे हैं। यह उनके सामान्य जीवन में भी सहायक होता है।

"नारीवादी शिक्षाशास्त्र के कक्षा में उपयोग के समय शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनो स्वयं ही एक दूसरे को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया पाठ्यसामग्री जिसका वे अध्ययन कर रहे है के साथ सक्रिय रूप से व्यस्त

रहते है। वे सभी जातिवाद, लिंगभेद, नस्लवाद आदि से परे ज्ञान की वृद्धि हेतु एक साथ कार्य करते है। वे समुदाय तथा सामाजिक परिवर्तन के लिए आंदोलन के साथ व्यस्त रहते है।" (Shrewsbury, 1987))

विद्यार्थी स्वयं अपने अधिगम के साधन होते है। विद्यार्थी अपने अधिगम के अनुसार ही किया करते है। शिक्षक विद्यार्थियों के अधिगम हेतु दिशा निर्देश देने के लिए विभिन्न तरीकों का सृजन करता है। शिक्षक विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर चलने वाली बहस से ध्यान हटाकर कक्षा-कक्ष में चलने वाली शिक्षक-अधिगम प्रक्रिया की और ध्यान केन्द्रित करता है। उदाहरणार्थ - कक्षा में जब विचार विमर्श विधि का उपयोग किया जाता है तो शिक्षक विद्यार्थियों को मुख्य मुद्दे पर विचार विमर्श हेतु दिशा निर्देश प्रदान करता है। इस विधि में भी छात्रों को। चिन्तन, क्रिया एवं सक्रिय सहभागिता का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है। इस विधि द्वारा विद्यार्थियों में स्वतंत्र रूप से विचार करने की आदत का विकास होता है। विद्यार्थियों की तर्क एवं निर्णय शक्तियों का विकास होता है। विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता मात्र न रहकर सक्रिय रूप से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में भाग लेते है। इस प्रकार यह विधि गहन, विस्तृत विचार की महत्त्वपूर्ण विधि है।

अत: नारीवादी शिक्षाशास्त्र विद्यार्थियों की कक्षा में अपनी आवाज को प्राप्त करने, अपने लिए बोलने तथा सामग्री पर अपने प्रश्न उठाने के लिए आहवान करती है। विद्यार्थी अपनी आवाज तब अधिक स्वभाविक पाते हैं जब कि पाठ्यसामग्री जिसका कि वे अध्ययन कर रहे है वह प्रासंगिक तथा उनके जीवन से संबन्धित होते है। उदाहरणार्थ - एक रसायन विज्ञान की कक्षा में यदि "आइसोटोप के सम्प्रत्यय को कैन्सर के उपचार और निदान के संदर्भ में पढ़ाया जाए तो विद्यार्थी अपने स्वयं के अनुभवों का योगदान देने में सक्षम हो सकेंगे।

यह शिक्षाशास्त्र परम्परागत कक्षा-कक्ष संस्कृति तथा वातावरण को परिवर्तित करने, विद्यार्थियों की समझ को वृहद रूप देने और विद्यार्थियों को कक्षा कक्ष गत्यात्मकता के प्रति संवेदनशील बनाने का प्रयत्न करता है एवं कक्षा कक्ष को लोकतांत्रिक तथा व्यावहारिक बनाने में मदद करता है।

10.5 नारीवादी शिक्षाशास्त्र : नियंत्रण और मूल्यांकन

"नारीवादी शिक्षाशास्त्र कक्षा कक्ष में शिक्षक व शिक्षार्थी के मध्य होने वाली अन्त: क्रिया तथा एक नारीवादी शिक्षक उस ऊर्जा का सन्तुलन किस प्रकार करता है इस पर मुख्य रूप से ध्यान देता है। कोही (1998) श्रेयोबेरी (1993) के अनुसार नारीवादी शिक्षाशास्त्र का निर्देशन लोकतांत्रिक सिद्धान्त करते है एवं शिक्षक अपनी ऊर्जा को विद्यार्थियों के साथ साझा करता है।

शिक्षक कक्षा में विभिन्न शिक्षण विधियों तथा उपागमों का प्रयोग करता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वो विद्यार्थियों को व्यस्त रखने के लिए क्या योजना बनाता है जैसे कि - वह उनको संवाद अर्थात् बातचीत में व्यस्त रखता है अथवा प्रत्येक विद्यार्थी की क्रिया के प्रति पृष्ठपोषण प्रदान करते हुए व्यस्त रखता है।

यद्यपि शिक्षक व शिक्षार्थियों के मध्य कक्षा-कक्ष में ऊर्जा के साझे का आदर्श सुनने में अच्छा लगता है। जैसा कि हम जानते है नारीवादी शिक्षाशास्त्र का जब कक्षा में उपयोग किया जाता है तो वहां एक लोकतांत्रिक वातावरण व लोकतांत्रिक भागीदारी होती है, लेकिन इस वातावरण में विद्यार्थियों का अधिगम कितना व कैसा हो रहा है? उनकी आवश्यकता की पूर्ति कहां तक हो रही है? यह सब ज्ञात करने के लिए एक नारीवादी शिक्षक को कक्षा में नियंत्रण बनाए रखने तथा समय-समय पर मूल्यांकन, करने की आवश्यकता होती है।

नियंत्रण

नारीवादी कक्षा में नियंत्रण के लिए आवश्यक है कि शिक्षक विद्यार्थियों को मुख्य मुद्दे पर संवाद और विचार-विमर्श करने के लिए उचित दिशा निर्देश दे, उनका मार्गदर्शन करे ताकि वो मुख्य विषय से हटे नहीं। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखे कि सभी विद्यार्थियों को बोलने और विचार प्रकट करने का अवसर प्राप्त हो। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कक्षा में विभिन्न व्यक्तित्व वाले विद्यार्थी होते हैं।

जैसे – वहिर्मुखी, अंतर्मुखी, और उभयमुखी। जो विद्यार्थी बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले होते वह अधिक बोलते है अर्थात उन्हें अपनी बात या विचार को व्यक्त करने में कोई झिझक नहीं होती है। कई बार ऐसे विद्यार्थी अन्य विद्यार्थियों जो कि अंतर्मुखी व्यक्तित्व वाले होते है उन्हें बोलने का अवसर प्रदान नहीं करते है अत: शिक्षक को इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि जो विद्यार्थी नहीं बोलते है या कम बोलते है उन्हें संवाद के दौरान अपने विचारों को व्यक्त करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए और विद्यार्थियों को लोकतांत्रिक भागीदारी हेतु अभिप्रेरित करना चाहिए। अन्यथा वे इससे वंचित रह जायेंगे। साथ ही बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले विद्यार्थियों को शिक्षक द्वारा यह समझाने का प्रयास किया जाना चाहिए कि कक्षा में संवाद के दौरान सभी को बोलने का अवसर प्राप्त होना चाहिए ताकि सभी का समान रूप से विकास हो सके। इससे उन विद्यार्थियों को यह नहीं लगेगा कि उनके साथ कुछ गलत हो रहा है तथा वे भी इससे सहयोग प्रदान करेंगे।

इसी प्रकार यदि कक्षा में बालिकाऐं है जो कि कम बोलती है तो शिक्षक को उन्हे संवाद में भाग लेने के लिए अभिप्रेरित करना चाहिए। सामान्यतया यह देखा गया है बालिकाएं अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त नहीं कर पाती है क्योंकि हमारे समाज में स्त्रियों का अधिक बोलना मूल्यों खिलाफ माना जाता है तथा उन्हें परिवार व समाज में अपने विचारों को व्यक्त करने के बहुत कम अवसर प्रदान किये जाते है। जिसके कारण बचपन से ही ये बाते अनेक मन-मस्तिष्क के घर कर जाती है।

अत: नारीवादी शिक्षक को चाहिए कि वह कक्षा में इस प्रकार के लिंगभेद को समाप्त कर स्त्रियों कों स्वतंत्र निर्णय लेने व अपने विचारों को व्यक्त करने के अवसर प्रदान करे। एक शिक्षक कक्षा में नारीवादी शिक्षाशास्त्र का उपयोग करके लिंग संवेदी अध्यापन अधिगम द्वारा तथा कक्षा नियंत्रण करके सभी विद्यार्थियों चाहे वे किसी भी जाति, लिंग अथवा नस्ल के हो, विकास के अवसर प्रदान कर सकता है एवं ज्ञान की वृद्धि एवं सृजन कर सकता है।

मूल्यांकन

केरोलीन श्रेयोबेरी (1987) के अनुसार - नारीवादी शिक्षाशास्त्र शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के बारे में सिद्धान्त है जो कि हमें वांछित लक्ष्यों और परिणामों का मूल्यांकन करने हेतु विशिष्ट शैक्षिक व्यूहरचना और तकनीकी उपलब्ध कराती है।

वेस्ले के अनुसार मूल्यांकन एक समावेशी संकल्पना है जो इच्छित परिणाम की गुणवत्ता, मूल्य एवं प्रमाणिकता को निश्चित करने के लिए सब प्रकार के प्रयासों एवं साधनों की और संकेत करती है। यह वस्तुनिष्ठ प्रमाण एवं आत्मगत निरीक्षण का यौगिक है। यह सम्पूर्ण और अन्तिम अनुमान है।

लेमबर्ट (1997) के अनुसार सूची में दिए गए सिद्धान्तों में विद्यार्थी का स्थान केन्द्र में है, लेकिन कक्षा-कक्ष में इन सिद्धान्तों का उपयोग करना कठिन है, क्योंकि ये अत्यन्त वृहद् और अस्पष्ट है। कुछ नारीवादी शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार, नारीवादी शिक्षाशास्त्र (नारीवादी आकलन की व्यूहरचना के उपर्युक्त सिद्धान्तो सहित) विद्यार्थियों के अधिगम से सीधे तौर से सम्बन्धित है।

विद्यार्थियों की प्रगति के आकलन हेतु जिस उपकरण (Tool) का उपयोग ज्यादातर किया जाता है वह ग्रेडिंग सिस्टम है। एक साझित लोकतांत्रिक कक्षा में, शिक्षक विद्यार्थियों को उनकी योग्यता व क्षमता के आधार पर ग्रेड (Grades) प्रदान करता है लेकिन वहां पर कुछ प्रश्न उठते है जैसे - क्या ग्रेड केवल निर्णय हेतु दिये गये है? क्या विद्यार्थियों को पृष्ठपोषण (Feedback) प्रदान करने हेतु दिए गये है? जिससे वे सुधार कर सके। यदि ग्रेड देकर विद्यार्थियों को यह स्पष्ट नहीं किया जाए कि वह किस प्रकार से सुधार कर सकते है तो ग्रेड देना पर्याप्त नहीं है, उदाहरणार्थ एक शिक्षक विद्यार्थियों को उनके प्रदर्शन के आधार पर ग्रेड देता है, जैसे:अच्छा – A Grade; बहुत अच्छा - B Grade; उत्तम – C Grade

माना शिक्षक ने विद्यार्थी के संवाद के दौरान प्रथम प्रदर्शन के आधार पर B Grade दिया तथा दूसरे प्रदर्शन के आधार पर भी B Grade दिया तो विद्यार्थी यह निर्णय नहीं ले सकेगा कि उनके प्रदर्शन में सुधार हुआ है या नहीं, क्योंकि यहां आकलन अथवा मूल्यांकन का विस्तार सीमित हो जाता है।

अत: मानकीकृत परीक्षणों का उपयोग करना सही प्रतीत होता है। इस प्रकार के परीक्षण-प्रतिमान निर्देशित एवं मानक निर्देशित होते है। जिनका उपयोग करके विद्यार्थियों का आकलन मूल्यांकन किया जा सकता है। Willig, Harnisch, Hilland Maehr, 1983 के अनुसार प्रतिमान निर्देशित इन परीक्षणों के साथ भी एक समस्या है, इन परीक्षणों के द्वारा यह आकलन किया जाता है कि प्रत्येक विद्यार्थी की उपलब्धि उसी आयु के एक ही जैसे परिवेश में रहने वाले अन्य विद्यार्थियों की उपलब्धि से कितनी भिन्न है अर्थात् यहां एक विद्यार्थी की तुलना अन्य से की जाती है, इसलिए विद्यार्थी को यह डर होता है कि उसकी कमी सबके सामने जाहिर हो जायेगी इससे वे बैचेन व चिन्तित रहते है तथा परीक्षण में उनके प्रदर्शन में गिरावट आती है इन परीक्षणों की कमी को दूर करने के लिए शिक्षकों द्वारा मानक निर्देशित परीक्षण का उपयोग किया जाना चाहिए। इन परीक्षणों के आधार पर विद्यार्थी की स्वयं से ही तुलना की जाती है कि उसके प्रदर्शन में कितना सुधार हुआ है। वह पहले किस स्थिति में था तथा अब किस स्थिति में है। इस प्रकार इन परीक्षणों के आधार पर किया गया आकलन सुधार हेतु सुअवसर प्रदान करता है।

मूल्यांकन के मुख्य दो उपागम होते है - रूपदेय मूल्यांकन और योगात्मक मूल्यांकन। एक नारीवादी शिक्षक को कक्षा-कक्ष में रूपदेय मूल्यांकन का उपयोग करना चाहिए, क्योंकि मूल्यांकन का यह उपागम किसी भी कार्यक्रम के दौरान उपयोग में लाया जाता है अत: इसके आधार पर उस कार्यक्रम में सुधार किया। जा सकता है। रूपदेय मूल्यांकन द्वारा शिक्षक व विद्यार्थियों को पृष्ठपोषण प्राप्त होगा, जिससे वे अपने कार्य की विशेषता व उत्कर्षता में लगातार सुधार कर सकते है।

नारीवादी शिक्षक को विद्यार्थी की आवश्यकता का ध्यान रखने और उसे अधिगम हेतु प्रेरित करने में सन्तुलन बनाए रखना आवश्यक होता है। यह कार्य वह सतत् नियंत्रण व मूल्यांकन द्वारा सरलता से कर सकता है।

पाठ्यचर्या निर्माण : लैंगिक परिपेक्ष्य

शिक्षा ही वह सीढ़ी है जिसके द्वारा मनुष्य अपने आर्थिक व सामाजिक स्तर को उच्च बना सकता है तथा यह मानवाधिकारों को प्राप्त करने का भी एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इसके बिना समाज का विकास सम्भव नहीं है। समाज की शक्ति का आधार शिक्षा ही है। सिर्फ शैक्षिक कसर प्रदान करने से ही हमारा काम नहीं चल सकता, इसके लिए समान अवसरों के समान वितरण से ही समानता लायी जा सकती है। विकसित देशों में आर्थिक,सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के लिए शैक्षिक अवसरों की समानता का होना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

भारत में जातिगत, आर्थिक तथा स्त्री पुरूष सम्बन्धों का पदानुक्रम, सांस्कृतिक विविधता और असमान विकास से, जो कि भारतीय समाज की विशेषताएँ है शिक्षा की प्राप्ति और स्कूलों में बच्चों की सहभागिता प्रभावित होती है। स्कूल में नामांकित होने वाले और पढ़ाई पूरी करने वाले बच्चों के अनुपात के मामले में विभिन्न सामाजिक व आर्थिक समुदायों के बीच गहरी विषमता में यह तथ्य प्रतिबिम्बित होते हैं। इसी प्रकार ग्रामीण व शहरी, गरीब वर्गो तथा धार्मिक एवं अन्यजातीय अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जाति व जनजाति समुदाय की लड़कियों की शिक्षा भी प्रभावित होती है।

महिला: शिक्षा का महत्त्व पं. जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में इस प्रकार है - "एक लड़के की शिक्षा एक व्यक्ति की शिक्षा है किन्तु एक लड़की की शिक्षा सम्पूर्ण परिवार की शिक्षा है।" डॉ. राधाकृष्णन आयोग (1948) ने कहा है - "शिक्षित स्त्री के बिना शिक्षित पुरूष हो नहीं सकता। यदि सामान्य शिक्षा को पुरूष या महिलाओं तक ही सीमित किया जाये, तो यह अवसर महिलाओं को दिया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से शिक्षा का प्रसार अगली पीढ़ी तक हो सकेगा।"

केन्द्रीय सरकार ने समय-समय पर शिक्षा आयोगों जैसे - डॉ. राधाकृष्णन विश्वविद्यालय आयोग (1948-49), दुर्गाबाई देशमुख राष्ट्रीय महिला शिक्षा समिति (1958-59), श्री मति हंसा मेहता स्त्री शिक्षा समिति (1962), आदि की स्थापना की थी। इन सभी ने, महिला शिक्षा का विकास हेतु आवश्यक अभिशंसाऐ की है।

विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु महिला सशक्तिकरण अत्यन्त आवश्यक है! समाज में महिलाओं की-भूमिका परंपराओं, रीति-रिवाजों और मूल्यों आदि से प्रभावित हैं। स्त्रियाँ शायद ही शक्ति का प्रयोग करती है। वे जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरूषों की तुलना में असुविधाओं का सामना करती है। इसके

अतिरिक्त वे सामाजिक व सांस्कृतिक मानदण्डों द्वारा निर्धारित परिस्थितियों के साथ समायोजन करके व लिंग आधारित हिंसा को चुपचाप सहन करके पीड़ित है।

वर्तमान में ऐसे कई उपागम (Approach) है जिसके आधार पर महिलाओं का दर्जा बढ़ाने और उनकी पहुँच में सुधार करने की आवश्यकता है, जैसे

1) वित्तीय स्थिरता उपागम - यह अतिरिक्त आय के उत्पादन पर केन्द्रित है।

2) गरीबी उन्मूलन उपागम - यह जीवन की गुणवता में सुधार पर जोर देती हैं।

3) सशक्तिकरण उपागम - यह विकास की प्रक्रियाओं में लैंगिक असमानताओं तथा लैंगिक मुख्यधारा (gender Mainstreming) से सम्बन्धित है।

शिक्षा मानव संसाधन के विकास का महत्त्वपूर्ण साधन है । इसी कारण भारत की महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु शिक्षा को एक मुख्य कारक माना गया है। स्त्रियों में शिक्षा और उनकी स्थिति के प्रति जागरूकता लाने के लिए शिक्षा की व्यवस्था में लैंगिक समानता हेतु आवश्यक परिवर्तन यथा - प्रभावी नीतियों का निर्धारण, पाठ्यक्रम परिवर्तन, समान शैक्षिक प्रावधान, शिक्षा में लैंगिक मुख्यधारा महत्त्वपूर्ण हैं।

शिक्षा में लैंगिक मुख्यधारा

वैश्विक रूप से यह स्वीकार किया गया है कि सामाजिक और आर्थिक विकास हेतु शिक्षा एक मुख्य भूमिका निभा रही है। शिक्षा जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाती है। यह स्वास्थ्य रक्षा को प्रोत्साहन देती है, रोजगार प्राप्ति को सरल बनाती है तथा उसे विस्तार प्रदान करती है, और उत्पादकता को बढ़ाती है।

भारतीय समाज पुरूष प्रधान है तथा महिलाओं का स्थान दूसरे स्थान पर आता है तथा उनका कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से घर माना जाता है। महिलाओं को घर के निर्णय लेने का अधिकार भी नहीं दिया जाता है इसलिए उनके विषय भी पुरूषों से भिन्न रखे जाते है, जिसके कारण पुरूष और महिलाओं को शिक्षा के समान अवसर प्रदान नहीं कर पा रहे हैं।

लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए 1980 के दशक में अंतर्राष्ट्रीय विकास के परिदृश्य स्तर एक सम्प्रत्यय लैंगिक मुख्यधारा (Gender Mainstreaming) का उदय हुआ है।

लैंगिक मुख्यधारा : सम्प्रत्यय

लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए, लैंगिक मुख्यधारा विश्वस्तर पर स्वीकार्य एक व्यूहरचना है। मुख्यधारा अपने आप में एक अन्त नहीं है बल्कि यह, लैंगिक समानता के लक्ष्य प्राप्त करने के लिए — एक व्यूहरचना, एक उपागम, एक साधन है। मुख्य धारा सभी क्रियाओं जैसे- विकास, अनुसंधान, वार्ता, विधि निर्माण, संसाधनों का आवंटन एवं कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं के निर्माण, क्रियान्वयन और मोनिटरिंग के केन्द्र में लैंगिक दृष्टिकोण व लैंगिक समानता के लक्ष्य का होना सुनिश्चित करती है।

''Gender Mainstreaming is a globally accepted strategy for promoting gender equality. Mainstreaming is not an end in itself but a strategy, an approach, a means to achieve the of gender equality. Mainstreaming involves ensuring that

gender perspective and the goal of gender equality are central to all activities policy development, research, dialogue, legislation, resource allocation, and planning, implementation and monitoring of programmes and projects''

-OSAGI (Office of the special Adviser on Gender Issues)

10.6 शिक्षा मे लैंगिक मुख्यधारा की आवश्यकता

बालिकाओं एवं महिलाओं की शिक्षा हेतु निवेश करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शिक्षित महिलाओं का परिवार छोटा होता है, शिशु मृत्यु दर कम होती है, और बच्चे स्वस्थ तथा शिक्षित होते हैं। शिक्षित महिलाएँ अगली पीढी का सामाजीकरण करती है। राष्ट्रीय विकास के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में योगदान देने हेतु शिक्षा महिलाओं की क्षमता में वृद्धि करती है। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन लाने में भी अहम् भूमिका निभाती है। यह पुरूषों एवं महिलाओं के मध्य और समाज के विभिन्न वर्गो के मध्य उपस्थित विषमता व असंतुलन को समंजित करती है।

हालांकि शिक्षा के क्षेत्र में विचारणीय लैंगिक असमानता व्याप्त हैं। यह असमानता हमें विभिन्न सूचकों यथा - जनगणना प्रदत्तों, साक्षरता, नामांकन, उपलब्धि तथा शिक्षा के अन्य क्षेत्रों के सर्वेक्षण जो कि लैंगिक समानता व निष्पक्षता से सम्बन्धित है जैसे - शिक्षक शिक्षार्थी अत: क्रिया, पाठ्यक्रम सामग्री एवं इसमें सुधार, नीतिगत निर्णयों सम्बन्धी भूमिका आदि के माध्यम से प्राप्त होती है।

1. जनगणना प्रदत्त एवं साक्षरता

वर्ष 1951 से लेकर वर्ष 1981 तक महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि 7.93 से लेकर 24.82 प्रतिशत रही। लेकिन जनगणना प्रदत्तों के अध्ययन से पता चलता है कि जनसंख्या के परिणाम स्वरूप निरक्षर महिलाओं की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। 1980-81 के उपलब्ध प्रदत्तों के अनुसार स्थिति इस प्रकार है - 1981 की जनगणनानुसार देश में उस समय महिलाएँ 29.75 प्रतिशत साक्षर थी। जबकि पुरूषों का प्रतिशत 56.37 था अर्थात् लगभग पुरूषों से आधी संख्या में ही साक्षर थी जो कुल महिला जनसंख्या का एक चौथाई भाग ही था। वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार कुल निरक्षरों में से लगभग 61 प्रतिशत महिलाएँ थी। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार निरक्षरों में से महिला का प्रतिशत बढ़कर 64 प्रतिशत हो गया। महिला और पुरूष साक्षरता दर के मध्य वर्ष 1951 में अन्तर 18.30 प्रतिशत बिन्दुओं का था जो वर्ष 1981 में बढ़कर 26.62 प्रतिशत हो गया। वर्ष 2001 तक यह अन्तर घटकर 21.70 प्रतिशत बिन्दु तक हो गया है।

1991 की जनगणनानुसार देश की महिलाएँ 39.42 प्रतिशत साक्षर थी तथा पुरूष 63.85 प्रतिशत साक्षर थे। 2001 की जनगणनानुसार देश में महिलाएँ 54.16 प्रतिशत साक्षर तथा पुरूष 75.85 प्रतिशत साक्षर थे। अर्थात् साक्षरता में लिंगभेद सार्थक रूप से मौजूद है। 2001 में निरक्षरों की संख्या 296 मिलियन थी जिसमें 190 मिलियन महिलाएँ थी। 253 जिलों में महिला साक्षरता दर 50 प्रतिशत से कम है।

2. नामांकनव ठहराव -

वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार 6-11 वर्ष की उम्र की 96.3 प्रतिशत जनसंख्या विद्यालयों में नामांकित थी। लेकिन बालकों के मुकाबले बालिकाओं का नामांकन कम पाया गया। वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार विद्यालय के बाहर रहे बच्चों में से 70 प्रतिशत बालिकाएं थी। वर्ष 1997-98 में प्राथमिक स्तर पर जहाँ बालकों की सकल नामांकन दर (GER) लगभग 100 प्रतिशत थी वहीं बालिकाओं की केवल 81 प्रतिशत थी। (वार्षिक प्रतिवेदन 1999, एम.एच.आर.डी.)

वर्ष 2002-2003 में बालिकाओं का सकल नामांकन अनुपात (Gross Eurolment Ratio 19.7) प्राथमिक स्तर से घटकर 56.22 मिडिल स्तर पर (कक्षा VI से VIII तक) रह गया। 2003-04 में प्राथमिक स्तर पर सभी बालिकाओं की ड्रोपआउट रटे 52.9 प्रतिशत थी जबकि SC और ST की बालिकाओं की ड्रापआउट रेट क्रमश: 62.2 और 71.4 थी। (Select Education Statisties, Gol 2004)

वर्तमान अध्ययनों से ज्ञात होता है कि मुस्लिम बच्चों, विशिष्ट रूप से बालिकाएं और -वे जो कि निचले तकवे से सम्बन्धित है उनकी शैक्षिक स्थिति SC / ST के बच्चों से अधिक खराब है। तीन मुस्लिम बालिकाओं में से एक बालिका कभी भी स्कूल नहीं जाती है। (SRI Report 2005)

3. किशोरवय बालिकाओं की शिक्षा

उपर्युक्त प्रदत्तों से यह स्पष्ट है कि जैसे-जैसे बालिकाएं प्राथमिक स्तर से ऊपरी स्तर की और अग्रसर होती है शिक्षा तंत्र में उनकी संख्या में गिरावट आने लगती है। इसका कारण उच्च प्राथमिक व माध्यमिक स्तर के विद्यालयों का उनकी पहुँच में न होना है। विद्यालयों की दूरी उनके घरों से अधिक होने तथा विद्यालयों की संख्या में कमी के कारण उनकी संख्या में गिरावट आती है।

अधिकांश देशों में शैक्षिक संस्थानों विशेष रूप से माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तरों पर महिलाओं का नामांकन पुरूषों के जितना अधिक नहीं है।

4. उच्च शिक्षा में असमानता -

उच्च शिक्षा तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में भी महिलाओं की प्रवेशिता का प्रतिशत बहुत ही कम है। उदाहरणार्थ - BA करने वाली महिलाओं का प्रतिशत, 3.39 प्रतिशत (अनुसूचित जाति), 1.38 प्रतिशत (अनुसूचित जनजाति), 40 प्रतिशत अदलित महिलाएँ) है। अधिस्नातक स्तर पर 38 प्रतिशत MA और 34 प्रतिशत M.Sc. अदलित महिलाओं का प्रतिशत है तथा दलित महिलाओं का प्रतिशत 3.8 प्रतिशत और 2.9 प्रतिशत है।

स्पष्ट है कि वर्तमान समय में महिलाओं की शैक्षिक स्थिति तुलनात्मक रूप से ठीक नहीं है। जैसा कि हम जानते है शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक मुख्य साधन है। इसके द्वारा पुरूषों व महिलाओं के मध्य

व्याप्त लैंगिक असमानता को दूर किया जा सकता है एवं महिलाओं के सामाजिक व आर्थिक स्तर को उच्च बनाया जा सकता है । अत: आज के इस युग में शिक्षा में लैंगिक मुख्यधारा की अत्यन्त आवश्यकता है !

10.7 शिक्षा मे लैंगिक मुख्यधारा हेतु उद्देश्यों का निर्धारण एवं व्यूहरचना की पहचान करना

शिक्षा में लैंगिक समानता के लिए अर्थात् रूढिगत विचारों से ऊपर उठकर बालक एवं बालिका को समान शैक्षिक व्यवस्थाएं एवं अवसर उपलब्ध करवाना जिससे उनकी शैक्षिक उपलब्धियाँ लिंग भेद के कारण प्रभावित न हो सकें, शिक्षा में लैंगिक मुख्यधारा लाने की आवश्यकता है । इससे स्त्रियों को अवसरों की समानता, शिक्षण प्रक्रिया में समानता, परिणामों में समानता की प्राप्ति हो सके।

शिक्षा में लैंगिक मुख्यधारा लाने हेतु स्पष्ट उद्देश्यों के निर्धारण एवं व्यूहरचना की पहचान करना अत्यन्त आवश्यक है।

लैंगिक मुख्यधारा की व्यूहरचना व उद्देश्यों के निर्धारण हेतु निम्न पांच पदों की योजना (Five-step plan), UNESCO के द्वारा दी गई, यह निम्न प्रकार है –

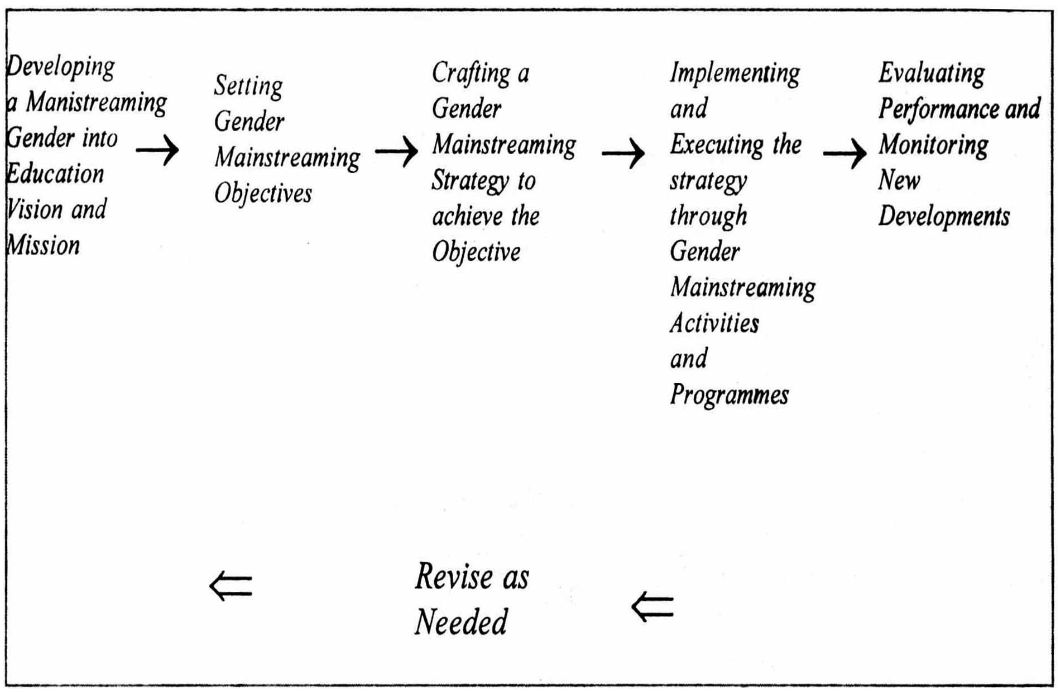

***Step 1* शिक्षा में लैंगिक मुख्यधारा के लिए दृष्टि और लक्ष्य का विकास करना**

एक संगठन, कार्यक्रम अथवा कार्य समिति के लिए दृष्टि (Vision) दीर्घावधि निर्देशन को निश्चित करती है। लक्ष्य किसी संगठन और उसकी क्रियाओं के वर्तमान समय में होने वाले निर्देशन से सम्बन्धित है। दृष्टि और लक्ष्य, लैंगिक समानता की प्रगति और शिक्षा में लैंगिक मुख्यधारा के उद्देश्यों, व्यूहरचना,

कार्यक्रमों, क्रियाओं, मोनिटरिंग और मूल्यांकन की रूपरेखा बनाने के लिए महत्त्वपूर्ण प्रारम्भिक बिन्दु है।

Step 2 लैंगिक मुख्यधारा के लिए उद्देश्यों का निर्धारण करना

उद्देश्यों के निर्धारण के कारण दृष्टि और लक्ष्य के कथनों को विशिष्ट निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में परिवर्तित करना है। उद्देश्य आवश्यकता निर्धारण और परिस्थिति विश्लेषण का भाग होते है। प्राथमिक शिक्षा से माध्यमिक शिक्षा तक पहुँचने की दर, नामांकन दर और पूर्णता की दर में सुधार के आधार पर उद्देश्यों का मापन सम्भव है।

उदारणार्थ - सर्व शिक्षा अभियान (SSA) का मुख्य बल विभिन्न व्यूहरचनाओं के द्वारा विद्यालयों से बाहर रहने वाले बच्चों की शिक्षा में मुख्यधारा के विद्यालयों में नामांकित करने एवं 6-14 आयु वर्ग के बच्चों को आठ वर्ष की जिम्मेदार शिक्षा उपलब्ध कराने पर है। इसमें लिंग एवं सामाजिक भेदों को पाटने एवं विद्यालयों में सभी बच्चों के शत-प्रतिशत ठहराव पर जोर दिया गया है।

SSA के निम्नलिखित उद्देश्य है -

- सभी बच्चे विद्यालयों, शिक्षा गारण्टी केन्द्रों, वैकल्पिक विद्यालयों तथा "रोक टू स्कूल" कैम्पों में वर्ष 2003 तक नामांकित हो जायें।
- वर्ष 2007 तक सभी बच्चे प्राथमिक शिक्षा के पांच वर्ष पूर्ण कर लेवें।
- वर्ष 2010 तक सभी बच्चे प्राथमिक शिक्षा के आठ वर्ष पूर्ण कर लेवें।
- जीवन के लिए शिक्षा पर जोर देते हुए संतोषजनक गुणवत्ता वाली प्रारम्भिक शिक्षा पर जोर दिया जाए।
- वर्ष 2007 तक प्राथमिक स्तर एवं वर्ष 2010 तक प्रारम्भिक स्तर पर सभी लिंग एवं सामाजिक श्रेणियों के भेद को पाट दिया जाए।
- वर्ष 2010 तक सार्वजनीन ठहराव हो जाए।

Step 3 **उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु लैंगिक मुख्यधारा व्यूहरचना का निर्माण करना**

विभिन्न कार्य और क्रियाओं की पहचान करने से पहले व्यूहरचना उपागम को निश्चित कर लेना चाहिए। उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यूहरचना निर्माण की अत्यन्त आवश्यकता होती है। ताकि हम उन्हें व्यावहारिक रूप में ला सके।

उदाहरणार्थ - सर्व शिक्षा अभियान के उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लाने के लिए निम्नलिखित व्यूहरचनाओं का निर्माण किया गया है -

संस्थागत सुधार

SSA के एक भाग के रूप में राज्यों में संस्थागत सुधार किये गये है। राज्यों ने उनकी प्रचलित शिक्षा प्रणाली जिसमें शैक्षिक प्रशासन, विद्यालयों में उपलब्धि स्तर, वित्तीय मुद्दों, विकेन्द्रीकरण, सामुदायिक स्वामित्व, शिक्षकों की नियुक्ति, मोनिटरिंग और मूल्यांकन, बालिकाओं की शिक्षा, अनुसूचित जाति

तथा अनुसूचित जनजाति और वंचित समूहों की शिक्षा, निजी विद्यालयों की नीति, का उद्देश्य आकलन करने के लिए संस्थागत सुधार किये है।

सामुदायिक स्वामित्व

प्रभावी विकेन्द्रीकरण के द्वारा विद्यालय आधारित हस्तक्षेप से सामुदायिक स्वामित्व के लिए कार्यक्रम कॉल करता है। यह महिलाओं के समूहों पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों की भागीदारी के द्वारा संवधित किया जाएगा।

संस्थागत क्षमता निर्माण

सर्व शिक्षा अभियान (SSA) राष्ट्रीय और राज्य स्तर की विभिन्न संस्थाओं जैसे NIEPA, NCERT, SCERT, SIEMAT, SIE'S आदि के लिए एक प्रमुख क्षमता निर्माण भूमिका की कल्पना करता है। गुणवता में सुधार हेतु संसाधन युक्त व्यक्तियों की सतत् समर्थन प्रणाली की आवश्यकता है।

शैक्षिक प्रशासन मुख्यधारा में सुधार

यह संस्थागत विकास, नये उपागमों और प्रभावी एवं कारगर विधियों के द्वारा शैक्षिक प्रशासन मुख्यधारा में सुधार हेतु कॉल करता है।

पूर्ण पारदर्शिता के साथ समुदाय आधारित मोनिटरिंग

इस कार्यक्रम की मोनिटरिंग प्रणाली समुदाय आधारित होगी। शिक्षा प्रबंधन सूचना प्रणाली (EMIS), सूक्ष्म योजना और सर्वेक्षण से प्राप्त समुदाय आधारित सूचना के विद्यालय स्तर के प्रदतों से सहसंबधित होगी। इस के अतिरिक्त प्रत्येक विद्यालय के पास एक नोटिस बोर्ड होगा, जिस पर विद्यालय द्वारा प्राप्त अनुदान और अन्य विवरण प्रदर्शित किये जाएंगे।

समुदाय के प्रति जवाबदेही

SSA अध्यापकों तथा अभिभावकों के मध्य सहयोग के साथ-साथ पादर्शिता के साथ जवाबदेही की भी कल्पना करता है।

बालिकाओं के लिए शिक्षा

बालिकाओं की शिक्षा, विशेष रूप से वे जो अनुसूचित जाति ओर जनजाति से संबन्धित है, SSA से प्रमुख रूप से संबंधितहै।

विशेष समूह पर बल

इसमें अनुसूचित जाति व जनजाति, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों, वंचित समूहों और विकलांग बच्चों की शैक्षिक सहभागिता पर बल दिया जाता है।

समानता पर जोर

SSA पाठ्यक्रम में सुधार, विद्यार्थी केन्द्रित क्रियाओं और प्रभावी शिक्षण पद्धतियों के द्वारा प्राथमिक स्तर की शिक्षा को उपयोगी एवं प्रासांगिक बनाने पर विशेष जोर देता है।

शिक्षकों की भूमिका

SSA शिक्षकों की भूमिका की पहचान करता है और उनके सतत विकास की आवश्यकताओं पर बल देता है। योग्य अध्यापकों की नियुक्ति करना, सतत प्रशिक्षण पाठ्यक्रम सम्बन्धी सामग्री के विकास को भागीदारी तथा सहायक सामग्री के माध्यम से शिक्षकों के विकास करने पर बल देता है।

***Step 4* –लैंगिक-मुख्यधारा क्रियाओं और कार्यक्रमों के माध्यम से व्यूहरचना का क्रियान्वयन एवं निष्पादन करना**

लैंगिक मुख्यधारा व्यूहरचना निर्माण के पश्चात् धीरे-धीरे उसका क्रियान्वयन भी आवश्यक है, ताकि स्त्री और पुरूष (बालक और बालिकाएं) एजेण्डा बनाने एवं निर्णय लेने में हिस्सा ले सके।

***Step 5*- उपलब्धियों का मूल्यांकनऔर नये विकास की मोनिटरिंग करना**

व्यवस्थित मोनिटरिंग के लिए लैंगिक मुख्यधारा सूचकों जो कि लिंग प्रदतों से एकत्रित किये जाते है कि आवश्यकता होती है। यह मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार के होते है।

इस प्रकार उपर्युक्त (Five-Step Plan) का अनुसरण करते हुए उद्देश्यों का निर्धारण करके एवं उचित व्यूहरचना का निर्माण करके हम शिक्षा में लैंगिक मुख्यधारा को स्थापित कर सकते हैं।

लैंगिक पक्षपात से मुक्त पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकें तैयार करना

एक राष्ट्र की गुणवता उसके नागरिकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है तथा नागरिकों की गुणवत्ता काफी हद तक उनकी शिक्षा पर निर्भर करती है। अत: शिक्षा को सामाजिक विकास की रीढ़ की हड्डी और सभ्यता का निष्कर्ष माना जाता है। शिक्षा की औपचारिक संस्थाएं अपने नियोजित और संरचित पाठ्यक्रम के द्वारा न केवल बच्चों को साक्षर करती है, बल्कि उनके चारों और होने वाले परिवर्तनों को अपनाने तथा उनके प्रति अनुकूलित होने में मदद करती है।

पाठ्यक्रम : सम्प्रत्यय

एक विद्यालय का पाठ्यक्रम, विद्यालय द्वारा किये जाने वाले सभी प्रयासों का संग्रह है जिसके द्वारा विद्यालय के अन्दर और विद्यालय के बाहर की परिस्थितियों में वांछित परिणाम प्राप्त किये जाते हैं। अन्य शब्दों में पाठ्यक्रम विद्यार्थी के सम्पूर्ण विद्यालयी जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। यह बालक का बौद्धिक, शारीरिक, भावनात्मक, अध्यात्मिक, सामाजिक और नैतिक विकास करता है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि पाठ्यक्रम बालक के संर्वागीण विकास में सहायक होता है। सैमुअल के अनुसार "पाठ्यक्रम में शिक्षार्थी के वे समस्त अनुभव समाहित होते हैं जिन्हें वह कक्षा कक्ष में, प्रयोगशाला में, पुस्तकालय में, खेल के मैदान में, विद्यालय में सम्पन्न होने वाली अन्य पाठ्येत्तर क्रियाओं द्वारा तथा अपने अध्यापकों एवं साथियों के साथ विचारों के आदान-प्रदान के माध्यम से प्राप्त करता है। "पाठ्यक्रम का निर्धारण, जीवन की सामाजिक सांस्कृतिक परम्पराएं, राजनैतिक विचारधारा, दर्शन और एक निश्चित समय में समाज की आवश्यकता के अनुसार किया जाता है।

विभिन्न आयोगों. समितियों तथा परिषदों द्वारा लैंगिक समानता के संदर्भ में दिए गए पाठ्यक्रम सम्बन्धी सुझाव

प्राचीन भारत में महिलाओं और पुरूषों के लिए सार्वजनिक शिक्षा की परम्परा थी। दुर्भाग्यवश कालान्तर में महिला शिक्षा की दशा अवनत होती गई। सार्वजनिक शिक्षा की यह व्यवस्था सामाजिक परिवर्तनों (आर्य संस्कृति के साथ अनार्य संस्कृति के मिश्रण) के कारण लगभग: पूर्णतया लुप्त हो गई। मुस्लिम काल में अनेक कुरीतियों जैसे पर्दा बाल विवाह आदि के कारण महिला शिक्षा बाधित हुई। अग्रेंजी शासन काल में इस परिस्थिति में कुछ सुधार हुआ। स्वाधीनता से पूर्व की महिला शिक्षा, सीधे तौर पर महिलाओं की भूमिका जैसे गृहिणी और माता से जुड़ी थी। शिक्षा पुरूषों को रोजगार हेतु प्रशिक्षित करने से सम्बन्धित थी, क्योंकि महिलाओं से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह घर से बाहर कार्य करे। अत: पाठ्यक्रम भी उनकी सामाजिक भूमिका के अनुसार ही था। इसी दौरान कुछ विषयों का नारीवादी विषयों की तरह उदय हुआ, यथा - संगीत, गृह विज्ञान आदि। जबकि भौतिक विज्ञान रसायन विज्ञान गणित आदि विषयों को पुरूषों से सम्बन्धित माना जाता था। इसलिए बालकों एवं बालिकाओं के लिए अलग-अलग विद्यालय खोले गये।

स्वाधीनता के पश्चात् के समय को महिलाओं की उनके घरों से मुक्ति के समय के तौर पर इंगित किया जाता है। शिक्षित लोगों के धार्मिक आडम्बर और सामाजिक रूढ़िवादी विचारो से गिरावट आने लगी। स्वाधीनता के पश्चात् महिला शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विकास 1959 में दुर्गाबाई देशमुख राष्ट्रीय समिति की स्थापना से हुआ, जिसने विस्तृत रूप से महिलाओं की समस्याओं की जांच की।

इसके बाद 1961 में महिला शिक्षा के लिए राष्ट्रीय परिषद् ने हंसा मेहता समिति का गठन किया। इस समिति ने विद्यालय शिक्षा के पाठ्यक्रम की विस्तृत रूप से जांच की। इस समिति के अनुसार एक लोकतांत्रिक, समाजवादी समाज मे शिक्षा व्यक्तिगत क्षमता, अभिवृत्ति, रूचि से होनी चाहिए ना कि लिंग से-।

पाठ्यक्रम में लैंगिक समानता सम्बन्धी शिक्षा में अन्य उपलब्धि, कोठारी (1964-66) द्वारा दी गई सिफारिशों के द्वारा प्राप्त हुई। इस कमीशन के अनुसार -

1. बालिका शिक्षा के विरूद्ध परम्परागत पूर्वाग्रहों को कम करने हेतु जनसामान्य को शिक्षित करना होगा।
2. जहां तक सम्भव हो सके मिश्रित प्राथमिक विद्यालय होने चाहिए। उच्च स्तर पर बालिकाओं के लिए अलग से विद्यालय खोले जाने चाहिए।

कोठारी कमीशन (1964-66) ने राष्ट्र निर्माण में बालिका शिक्षा की महता को भी पहचाना। इस कमीशन के अनुसार "मानव संसाधनों के पूर्ण विकास, घरों की स्थिति में सुधार, बच्चों के चारित्रिक विकास हेतु महिलाओं की शिक्षा पुरूषों की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण है !" इस कमीशन के अनुसार, पाठ्यक्रम जैसे संगीत, गृह विज्ञान, फाइन आर्ट आदि माध्यमिक स्तर पर उपलब्ध करवाये जाने चाहिए तथा बालिकाओं के लिए यह अनिवार्य नहीं होने चाहिए। माध्यमिक स्तर पर गणित अथवा विज्ञान विषयों को पढ़ाने हेतु बालिकाओं को विशिष्ट रूप से उत्साहित करना चाहिए। उच्च माध्यमिक स्तर पर

महिला विद्यार्थियों को कला, मानविकी, विज्ञान और तकनीकी में से किसी भी पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु स्वतंत्रता होनी चाहिए। हालांकि तकनीकी और व्यवसायिक पाठ्यक्रमों पर जोर देना चाहिए।

पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों को लैंगिक पक्षपात से मुक्त करने हेतु सुझाव -

वर्तमान समय में पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में सुधार का कार्य बहुत ही गम्भीर रूप से किया जाता है।NCRT ने 124 पृष्ठों का दस्तावेज तैयार किया है जिसे National Curriculum framework 2005 कहा जाता है। NCF (2005) दस्तावेज के अनुसार "समानता के लिए हमें पाठ्यपुस्तकों का प्राथमिक उपकरण की तरह उपयोग करना चाहिए, क्योंकि यह शिक्षा हेतु बहुत बड़ी संख्या में विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए भी प्राप्य संसाधन है। "

NCERT के अनुसार नई पाठ्यपुस्तकें लिखते और तैयार करते समय इस बात को ध्यान में रखना होगा कि बच्चों को कम उम्र से ही लैंगिक संवेदनशील बनाना है तथा उन्हें लैंगिक रूढ़िवादिता से दूर रखना है। इसके पीछे सम्पूर्ण भावना है कि - विद्यार्थी यह महसूस कर सकें कि महिलाएँ पुरूषों से कम योग्य अथवा समर्थ है इस सोच का कोई आधार नहीं है।

NCF मे सुधार प्रस्तावित होने के बावजूद, अनेक समितियों की रिपोर्ट के अनुसार - हालांकि अधिकांश पाठ्यपुस्तकों में कम से कम महिलाएँ दिखाई तो देने लगी है परन्तु अनेकों राज्यों की रिपोर्ट के अनुसार लैंगिक असमानता और पूर्वाग्रह अभी भी कायम है।

वर्तमान संदर्भ में उठने वाले मुद्दों के आधार पर कहा जा सकता है कि NCF (2005) में प्रस्तावित सुधार स्वागतयोग्य है, लेकिन अभी भी पाठ्यपुस्तकों व पाठ्यक्रमों से लैंगिक रूढ़िवादिता को कम करने की आवश्यकता है। कुछ सुझाव निम्नलिखित है, जो इस संदर्भ में मददगार हो सकते हैं -

- पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों में वहां संशोधन करने की आवश्यकता है, जहां महिलाओं का चित्रण केवल अच्छी गृहणियों की तरह किया गया है। पुरूषों के समान महिलाओं की उपलब्धियाँ तथा वीरोचित अवसरों को शामिल करने की आवश्यकता है।
- विद्यार्थियों की गलत धारणाओं को दूर करने के लिए शिक्षकों को लैंगिक संवेदना सम्बन्धी तकनीकी का उपयोग करना चाहिए। इस हेतु शिक्षक प्रशिक्षित होने चाहिए।
- पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें एक लैंगिक समिति जिसमें अकादमिक, नारीवादी, इतिहासकार सरकार आदि शामिल हो, में से होकर जाने चाहिए। विद्यार्थियों तक पहुँचने से पहले यह सुनिश्चित कर लिया जाना चाहिए कि पाठ्यपुस्तक लिंग भेद से मुक्त है।
- बालिकाओं के स्थान के बारे में सतही सोच से लिखने के बजाए लेखकों को परिवार में बालिकाओं की वास्तविक स्थिति को महसूस करके लिखना चाहिए।
- पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन को एक साधारण क्रिया की तरह नहीं लिया जाना चाहिए बल्कि इस पर राज्य सरकार का पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण होना चाहिए।

- शैक्षिक सामग्री का उत्पादन संविधान में निहित भावना यथा - मौलिक अधिकार एवं समानता के अनुरूप होना चाहिए।
- पाठ्यपुस्तकों को मोनिटर करने के लिए एक राष्ट्रीय पाठ्यपुस्तक समिति का गठन किया जाना चाहिए।
- यह हम सभी के द्वारा स्वीकार्य है कि समाज की संस्कृति को बच्चों तक, स्थानान्तरित करने में पाठ्यपुस्तकें व पाठ्यक्रम महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है अत: पाठ्यक्रम निर्माण व पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन का कार्य जवाबदेही के साथ किया जाना चाहिए।

लिंग संवेदी शिक्षक प्रशिक्षण

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार देश की कुल आबादी 102.70 करोड़ है जिससे 53.13 करोड़ पुरूष एवं 49.57 करोड़ महिलाएँ सम्मिलित है। तथा लिंग अनुपात प्रति 1000 पुरूष के विपरीत 933 है। राष्ट्र की पुरूष साक्षरता दर 75.8 प्रतिशत व महिला साक्षरता दर 54.1 प्रतिशत रही है। वर्ष 2001 की जनगणनानुसार राजस्थान राज्य की कुल जनसंख्या 5.65 करोड़ है, जिसमें 2.94 करोड़ पुरूष एवं 2.71 करोड़ महिलाएँ सम्मिलित है। महिलाओं की साक्षरता प्रतिशत 44.34 व पुरूषों की साक्षरता 76.46 रही हैं राज्य में महिलाओं का लिंगानुपात 922 है। उक्त वर्णित मानव संसाधन के समंक अनुसार देश व राज्य में पुरूषों की संख्या के लगभग समरूप ही महिलाओं की संख्या है। पुरूष एवं महिलाओं के सहयोग से विकास चक्र को गतिमान बनाकर विकास की ऊंचाई तक पहुँच बनाई जा सकती है।

भारतीय समाज में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत सभी प्रकार के निर्णय लेने के लिए पुरूष वर्ग का एकाधिकार माना जाता है। महिला अपने घर-परिवार के लिए सर्वस्व समर्पित करती है किन्तु पुरूष घर एवं स्त्री पर अपना अधिकार आरोपित करता है। स्त्री और पुरूष की सामाजिक एवं पारिवारिक भूमिकाओं में भिन्नता होने से स्त्री को अनुगामिनी माना जाता है।

लोकतान्त्रिक समाज के निर्माण एवं विकास के लिए उसमें विभेदों को समाप्त किया जाना आवश्यक है अत: समाज विकास के उत्कर्ष को प्राप्त कर सके इसके लिए जाति आधारित, लिंग आधारित, वर्ण आधारित भेदों को समाप्त कर समानता स्थापित करनी होगी। भारतीय संविधान में इस प्रकार के विभेदों को नकारकर पुरूष एवं महिला को समान नागरिक अधिकार प्रदान किए है !

महिलाओं में लैगिक समानता की स्थापना के लिए स्त्रियों में शिक्षा को आवश्यक माना गया है। स्त्रियों में शिक्षा और उनकी स्थिति के प्रति जागरूकता लाने के लिए शिक्षा व्यवस्था में लैंगिक समानता हेतु आवश्यक परिवर्तन- यथा प्रभावी नीतियों का निर्धारण, पाठ्यक्रम परिवर्तन, समान शैक्षिक प्रावधान एवं लिंग संवेदी शिक्षक प्रशिक्षण महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए रूढ़िगत विचारों से ऊपर उठकर बालिका शिक्षा का समुचित विकास करना होगा तथा बालिकाओं का उनके अधिकारों का बोध करना होगा।

लिंग संवेदी शिक्षक प्रशिक्षण की आवश्यकता

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में महिला शिक्षा के स्तर को सुधारने के लिए सुविचारित प्रयत्न की आवश्यकता बताई गई है। शिक्षा नीति में यह प्रतिबद्धता दर्शाई गई है कि नए सामाजिक मूल्यों के

विकास के लिए पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों को पुन: सृजितकर निर्णयकर्ताओं प्रशासकों व अध्यापकों का आमुखीकरण किया जाएगा। उपर्युक्त प्रतिबद्धता को ध्यान में रखते हुए इस नीति की प्रमुख विशेषताएं निम्नाकिंत हैं-

(1.) सरकार बालिकाओं की शिक्षा को विशेष महत्त्व देने के लिए वचनबद्ध है। यह स्वीकार करती है कि यदि सार्वजनिक प्रारंभिक शिक्षा को यथार्थ रूप में साकार करना है तो बालिकाओं की प्रवेश संख्या को बढाना होगा तथा उनकी स्कूल छोड़ने की दर को कम करना होगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संक्रमण कोल में विभिन्न पद्धतियों को अपनाना होगा जैसे औपचारिक, अनौपचारिक, संक्षिप्त कार्यक्रम एवं रात्रि स्कूल आदि प्रारंभ करने होंगे।

(2.) स्कूलों के लिए प्रावधान करना ही पर्याप्त नहीं होगा। उन कठिनाइयों पर सर्वोच्च

ध्यान दिया जाएगा जिनके कारण बालिकाएं स्कूल में उपस्थित होने से रोक दी जाती हैं। घेरलू काम के बोझ को ढोने तथा कई घण्टों तक काम करने के बाद थक जाने से, बालिकाओं के प्रति स्कूल में विशेष ध्यान रखे जाने की आवश्यकता है। बालकों को विशेषकर बालिकाओं की स्कूल में उपस्थिति बनाए रखने के लिए स्कूल के वातावरण को सुखद एवं सुरक्षित बनाना, शिक्षण कार्य को आनन्दमय बनाना आवश्यक है।

(3.) जिन बालिकाओं के ऊपर अपने छोटे भाई-बहिनों की देख रेख की जिम्मेदारी है, उनके लिए स्कूल या शिशु पालन संबंधीसुविधाएं उपलब्ध करवाई जानी चाहिए, जिससे ऐसी बालिकाओं के लिए स्कूल में प्रवेश व लम्बे अंतराल तक शिक्षा संभव हो सके।

(4.) महिलाओं के सकारात्मक चित्रण को प्रोत्रत करने, परिवार एवं समाज के भीतर उनके योगदान को स्वीकार करने, तथा उनके अधिकारों को सम्मान देने की दृष्टि से विद्यमान पाठ्यपुस्तकों एवं शैक्षिक सामग्री की समीक्षा करना।

(5.) बालिकाओं एवं महिलाओं के लिए आदर्श भूमिका प्रस्तुत करने की दृष्टि से, महिला शिक्षकों की विशिष्ट रूप से ग्रामीण विद्यालयों में नियुक्ति एवं प्रशिक्षण आदि को प्रोत्साहित करना।

(6.) बालिकाओं की विशेष स्थिति के बारे में समस्त अध्यापकों, महिलाओं एवं पुरुषों का आमुखीकरण करना, जैण्डर मुद्दों के प्रति उन्हे संवेदनशील बनाना तथा बालिका शिक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने के लिए उन्हें सक्षम व समर्थ बनाना।

(7.) महिला शिक्षकों एवं शैक्षिक कार्यकर्ताओं के लिए अतिरिक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना ताकि नियमित सेवा पूर्व एवं सेवान्तर्गत प्रशिक्षण के लिए उन्हें तैयार किया जा सके। पुरूषों की तरह उन्हें भी समान स्तर पर लाने के लिए यह कदम अति आवश्यक है।

(8.) सभी कार्यकर्ताओं के लिए जैण्डर प्रशिक्षण चालू करना।

(9.) विद्यालयों में एवं अभिमानित पंचायतों में बालिकाओं एवं उनके माता-पिताओं के लिए व्यावसायिक एवं कैरियर गाइडेंस की व्यवस्था करना।

(10.) विभिन्न पाठ्यपुस्तकों अथवा अन्य इस प्रकार की शिक्षा सामग्री में बालिकाओं व महिलाओं की दकियानूसी भूमिका चित्रित करने वाले लेखन व द्राष्टिक माध्यमों को प्रगतिशील छवि प्रस्तुत करें।

(11.) बालिकाओं के लिए उच्चतर एवं तकनीकी शैक्षिक संस्थाओं में सीटे बढ़वाना तथा उन्हें आवास की सुविधाएं देना।

(12.) प्रत्येक जिले में केवल बालिकाओं के लिए महाविद्यालय स्थापित करने को बढ़ावा देना, तथा महिलाओं के लिए छात्रावास की सुविधा प्रदान करने के साथ, कॉलेजों, पोलीटेक्नीक एवं औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं के माध्यम से उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा के लिए अवसरों मे वृद्धि करना।

(13.) नियमित पाठ्यक्रम या पाठ्येत्तर कार्यक्रम के रूप में जैण्डर अध्ययन प्रारम्भ करना, उदाहरण स्वरूप, विश्व विद्यालयों में महिला अध्ययन केन्द्र के द्वारा जैण्डर अध्ययन

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के सार्वजनीकरण के उद्देश्य से वर्ष 1990 में जोमीटन सम्मेलन (थाईलैण्ड) एवं डकार, (सेनेगल) में वर्ष 2000 मे आयोजित वर्ल्ड एज्यूकेशन फोरम की बैठक में लिंग असमानता को शिक्षा से समाप्त किए जाने का निश्चय महत्त्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत वर्ष 2005 तक प्रारंभिक एवं माध्यमिक शिक्षा से लिंग विभेद को दूर किए जाने का लक्ष्य था। इसके अतिरिक्त इसका मुख्य लक्ष्य वर्ष 2015 तक सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा सुनिश्चित करना एवं पूर्ण रूप से शिक्षा में लैंगिक समानता प्राप्त करना है। जिसमें बालिकाओं को गुणवत्ता युक्त शिक्षा देने पर विशेष बल दिया गया है। राष्ट्रीय नीति एवं अन्तर्राष्ट्रीय लक्ष्यों के उपरान्त भी यदि हम बालिका शिक्षा की स्थिति पर एक नजर डाले तो इसे संतोषप्रद स्थिति में नहीं पाते हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर प्रथम नामक संस्था द्वारा 2005 में किए गए एक सर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार 6- 10 वर्ष की आयु समूह की बालिकाओं में 5.1 प्रतिशत बालिकाएं विद्यालय में नामांकित नहीं है। 11 से 14 वर्ष की आयु समूह की बालिकाओं में व 11 प्रतिशत बालिकाएं अनामांकित है। इन अनामांकित बालिकाओं में एक बड़ा समूह (लगभग 6.3 प्रतिशत) ऐसा है जिससे विद्यालय का परित्याग कर दिया है। एक अन्य सर्वेक्षण (आईएमआरबी-इन्टरनेशल) के संख्यात्मक आकड़ों के अनुसार 6- 14 वर्ष की कुल बालिकाओं की संख्या 84.41 मिलियन है। जिसमें से लगभग 669 मिलियन बालिकाएं अनामांकित हैं अनामांकित बालिकाओं में एक बडा समूह उन बालिकाओं का है जिन्होंने विद्यालय परित्याग कर है। शेष बालिकाओं ने विद्यालयों में कभी प्रवेश नहीं लिया है।

बालिका शिक्षा की इस स्थिति के लिए जिम्मेदार कारणों तथा-माता-पिता की बालिका शिक्षा के प्रति नकारात्मक सोच, विद्यालय भवन की दूरी स्थिति, शिक्षा में गुणात्मकता की कभी, बालिका विद्यालयों व महिला शिक्षिकाओं का अभाव, बालिकाओं की सुरक्षा में कमी, गरीबी के साथ ही विद्यालय में शिक्षकों की रुढिवादी परम्परागत सोच एवं लिंग भेद भी है जिनके कारण बालिकाएं विद्यालय त्याग देती है।

शिक्षा मे लैंगिग समानता

शिक्षा में लैंगिक समानता का अर्थ होगा रूढ़िगत विचारों से ऊपर उठकर बालक एवं बालिका को समान शैक्षिक व्यवस्थाएं एवं अवसर उपलब्ध करवाना जिससे उनकी शैक्षिक उपलब्धियों पर लिंग भेद के कारण प्रभाव न हो सके। शिक्षा में लिंग संवेदनशीलता लाना आवश्यक है। इस हेतु बालिकाओं का निम्नांकित स्तरों पर समानता प्राप्त होनी चाहिए।

अवसरों की समानता :

बालिका को शिक्षा प्राप्ति के अवसर बालक के समान उपलब्ध हों अर्थात अभिभावक, अध्यापक एवं समाज उस हेतु किसी प्रकार की लिंग विभेद की अभिवृति न रखे।

शिक्षण प्रक्रिया में समानता

शिक्षण प्रकिया अन्तर्गत विद्यालय एवं कक्षा कक्ष में बालिका को बालक के समान व्यवहार दिया जाए। इस हेतु एक समान पाठ्यचर्चा, शिक्षण पद्धतियाँ एवं शैक्षिक व शिक्षण सामग्री हो जो किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह तथा लैगिंक रूढ़िवादिता से मुक्त हो। शिक्षकों के लिए इसके लिए अकादमिक पुनश्चर्या एवं परामर्श उपलब्ध करानी होगी।

परिणामों में समानता

लैंगिक संवेदनशीलता के लिए यह सुनिश्चित किया जाना होगा कि बालिका की शैक्षिक उपलब्धि, विद्यालय काल के वर्षो की संख्या, अकादामिक योग्यता डिग्री / डिप्लोमा आदि का लैंगिक कारणों से भेद न हो।

शिक्षा प्राप्ति उपरान्त अवसर व उपलब्धि में समानता

बालिकाओं की शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात उन्हें रोजगार हेतु अवसर, पूर्ण कालिक शिक्षा के बाद रोजगार प्राप्त होने में लगा समय, वेतन एवं अनुभव में पुरूषों के समान उपलब्धियाँ अर्जित करने के अवसर प्रदान करने होंगे।

यह समानता अत्यधिक आवश्यकता है क्योंकि इसमे असमानता के परिणाम गंभीर होते है। रोजगार में अवसरों को असमानता से पुरूष एवं महिला की शिक्षा प्राप्ति, प्रक्रिया एवं परिणाम सभी में असमानता आ जाती है जिससे समाज एवं अभिभावक द्वारा बालिका शिक्षा पर खर्च में कटौति एवं संभावित श्रेष्ठ रोजगार व आय में कमी की संभावना रहती है।

सामान्य लैंगिक रूढ़िबद्ध धारणाएं

भारत के विकास में महिलाओं का असीम योगदान रहा है, किन्तु शिक्षा के अभाव में उनका कार्यक्षेत्र सीमित कर दिया गया। शनैः-शनै: महिलाओं की शारीरिक क्षमताओं एवं मानसिक योग्यताओं को पुरूषों की तुलना में कम आका जाने लगा। फलत: पुरूषों द्वारा ही नहीं स्त्रियों द्वारा भी महिला के प्रति अनेक भ्रान्तियाँ को विकसित कर प्रचारित किया गया। बालिकाओं की शिक्षा खेल कूद, विषय चयन, घरेलू कार्य, पोषण से सम्बन्धित अनेक भ्रान्तियाँ सुनने को मिलती है।

जैसे-

लड़कियाँ गणित, विज्ञान नहीं पढ़ सकती यह तो लड़के पढ़ते हैं।

लड़कियाँ पढ़ लिख कर क्या करेंगी उन्हें तो शादी के बाद चूल्हा-चौका करना है।

क्यों लड़कियाँ जैसे रोते हो?

क्रिकेट, टैनिस आदि खेल लड़कों के होते हैं।

लड़कियों की पढ़ाई पर पैसा खर्च करना व्यर्थ है, आदि।

इन धारणाओं को हमारे भीतर इतना गहरा उतार दिया जाता है कि हम कभी इनकी प्रमाणिकता पर प्रश्न ही नहीं करते। यदि हम इन्हें अपनी धारणाओं का अंग नही भी बनाते हैं तो हमारे चारों ओर के वातावरण से प्राप्त इन सन्देशों से हमें प्रेरित किया जाता है कि 'पुरूष' अथवा 'महिला' होने का क्या अर्थ है। वास्तव में पुरूष हो अथवा महिला सभी मनुष्य है सभी समान संवेदनाएं यथा- खुशी, दुख, प्रेम, क्रोध आदि महसूस करते हैं। अत: लैंगिक भ्रान्तियाँ विनाशकारी होती है क्योंकि यह क्षमताओं को सीमित करती है। लैंगिक भ्रान्तियाँ जहाँ बलपूर्वक पुरूष व स्त्री के कार्यो का पृथक करती हैं वहीं वह व्यक्ति को निर्णय लेने से भी रोकती है अत: आवश्यकता यह है प्रत्येक महिला स्वतंत्र रूप से निर्णय ले सके जिससे उसके व्यक्तित्व का विकास हो सके।

भारतीय समाज एक परम्परावादी समाज है। भारतीय संविधान अन्तर्गत महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार व स्वतन्त्रता प्राप्त होने के उपरान्त भी अधिकांश पुरूष व महिलाएँ भी महिलाओं की परम्परावादी घरेलू छवि की ही अधिक पक्षधर हैं। लिंग भेद हमारी व्यवस्था का एक प्रमुख अंग है। परिवार में लड़की एवं लड़के के पालन पोषण में भेदभाव पूर्ण व्यवहार किया जाता है। इससे उसके सर्वतोमुखी विकास में बाधा पहुँचती है। पुरूष प्रधान समाज होने से स्त्रियाँ अपने निर्णय स्वतंत्र रूप से नहीं ले पाती।

महिलाओं में बचपन से ही असुरक्षा एवं हीन भावना का विकास हो जाता है। उनके मन मस्तिष्क में यह बात स्थाई रूप से बैठ जाती है कि वे पुरूषों से हीन हैं। शिक्षा का अभाव एवं भेदभाव के कारण हीनता की भावना उनके स्वभाव का स्थाई लक्षण बन जाती है।

शिक्षा का सीधा सम्बन्ध जागरूकता से होता है शिक्षा मनुष्य के अन्दर स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता एवं अपने अधिकारों के प्रति सजगता की भावना का विकास करती है। शिक्षा में असमानता से लिंग भेद को समाप्त किया जाना असंभव है जिससे समाज को गंभीर दुष्परिणाम का सामना करना होता है।

शिक्षक की परिवर्तित भूमिका

शिक्षक परिवर्तन के प्रमुख नियामक है। वे विद्यालय में बच्चों के रोल मॉडल होते है विद्यार्थी उनका अनुसरण करते है। शिक्षक को विद्यालय में लैंगिक संवेदनशीलता के लिए कार्यकर्ता के रूप में कार्य करना होगा। स्वयं उन्हें इसके लिए मानसिक रूप से तैयार करना होगा जिससे वे समानता का वातावरण विद्यालय में उत्पन्न कर सकें। विद्यालय में शिक्षण कार्य के दौरान उन्हे कार्य-व्यवहार में लैंगिक

संवेदनशीलता की समझ उत्पन्न करनी होगी । अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शिक्षक को निम्न महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को शिक्षण प्रक्रिया में स्थान देना होगा।

लैंगिक समानता की समझ का विकास

बालिका केन्द्रित शिक्षा एवं बालिकाओं का सशक्तिकरण

बालिका शिक्षा को बढ़ावा देने वाली परम्पराओं का विकास

बालिका शिक्षा में आने वाली समस्याओं की पहचान कर निवारण हेतु क्रियात्मक अनुसंधान

बालिकाओं के अधिकारों की रक्षा करना एवं प्रचार-प्रसार

शिक्षक की परिवर्तित भूमिका की जानकारी देने के लिए आवश्यक प्रशिक्षणों को आयोजन भी जरूरी है। प्रशिक्षण के माध्यम से शिक्षको को विद्यालयों में लिंग समानता के लिए वातावरण निर्मित करने के लिए तैयार करना होगा । विभिन्न शैक्षिक संगठन भी इसके प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका का निर्वहन कर सकते है । शिक्षकों ने इस विषय के प्रति जागरूकता लाने के लिए आवश्यक होगा कि -

- सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण में लैंगिक समानता हेतु संवैधानिक कानूनों की जानकारी दी जाए ।
- लिंग संवेदी मुद्दों का प्रशिक्षण इस सन्दर्भ में उन्हे उदाहरण एवं सबूत दिए जाएँ जिससे वे समाज के विकास में सहायक हों ।
- निर्देशन सामग्री उपलब्ध कराई जाए ।
- लिंग विभेद के गंभीर परिणामों से उन्हें अवगत कराया जाए ।
- विद्यालय विकास योजनान्तर्गत सार्थक योजनाओं का निर्माण करने हेतु प्रेरित किया जाए ।
- विद्यालय निरीक्षण के दौरान उक्त योजनाओं का आवश्यक रूप से निरीक्षण हो ।

इसी के साथ ही शिक्षक की लिंग पृथकता की रूढ़िवादी मान्यताओं को समाप्त करना होगा । उन्हे समाज, अभिभावक, विद्यालय प्रशासन एवं अन्य शिक्षकों में भी क्रमिक बदलाव हेतु कार्य करना होगा ।

10.8 शक्तियों में विभेद एवं शिक्षक विद्यार्थी सम्बन्ध

पितृसत्तात्मक भारतीय समाज में पुरूष एवं महिलाओं की शक्तियों के बंटवारे में पुरूषों के पास महिलाओं की अपेक्षा अधिक शक्ति रही है । अत: व्यवहार में भारतीय समाज पुरूष आधिपत्य प्रधान समाज रहा है । प्रजातान्त्रिक समाज व्यवस्था के सन्दर्भ में हमारे देश का संविधान हमारे देश का संविधान महिलाओं को लाभ पहुँचाने की मंशा रखता है । संविधान महिलाओं और पुरूषों में लैंगिक भेदभाव मिटाने थी मंशा रखता है तथा महिलाओं को हित में सरकार को विशेष प्रावधान बनाने की अनुमति देता है ।

संविधान में महिला को पुरूष के समान अधिकार प्राप्त होने के बावजूद बेटा पाने की परम्परावादी चाह में कन्या भ्रूण हत्या जैसे जघन्य अपराध होते है, शिक्षा के समान अवसर प्रदान किए जाने के बाद भी

सामाजिक व पारिवारिक स्थितियाँ के चलते लड़कियाँ स्कूल जाने से वंचित रहती हैं। उच्च शिक्षा तक महिलाओं की पहुँच अत्यन्त सीमित है। सह शिक्षा होने पर भी उनके पाठ्यक्रम अलग-अलग होते है।

लड़कियों का शिक्षा में मुख्य रूप से उन्हे विवाह के लिए तैयार करने पर बल दिया जाता है न कि समाज और देश की उत्पादक जिंदगी में पूर्ण भागीदारी के लिए। माता-पिता की सम्पति मे बराबर का हक होने के बावजूद प्राय: महिला को इससे वंचित रहना होता है। महिलाओं के बारे में पुरूष प्रधान समाज में अभी तक स्पष्ट व ठोस धारणा नहीं बन पाई। हमारी पुरानी मान्यताएँ, प्रतिमान, नियम और मर्यादाएँ पुरूषों के द्वारा निर्मित हैं, महिला की स्वतंत्रता और समानता को बाधित करती है। सामाजिक, एवं आर्थिक स्तर पर महिला एवं पुरूष के लिए नियम व सीमाएं अलग-अलग हैं। बचपन से वृद्धावस्था तक नारी पराश्रिता व परावलम्बी जीवन जीती हैं। उसमें आत्मरक्षा और स्वावलम्बी का विकास नही हो पाता। परिवार व समाज में पुरूष नियंत्रणकर्ता होता है। वहीं महिला अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं का दमन करती हैं। परिणाम स्वरूप लिंग भेद पर्दाप्रथा, पारिवारिक भेदभाव, बालिका श्रम, कन्या आ हत्या जैसी हिंसा का शिकार हैं। बाल विवाह, -दहेज प्रथा आज भी व्यापक रूप से प्रचलित हैं। महिला साक्षरता पुरुष साक्षरता की अपेक्षा निम्न स्तर पर है। अल्प आयु में ही घर-गृहस्थी की जिम्मेदारियाँ का भार आ पडता है। सामाजिक संरचना में लिंग विभेद एक स्वीकार्य तथ्य है जो स्त्री पुरूष की असमानता को प्रश्रय प्रदान करता है। स्वाधीनता के उपरान्त भारतीय संविधान में महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार एवं दर्जा प्रदान किया गया। इस संवैधानिक व्यवस्था के बावजूद विकास एवं सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में आज भी महिलाएँ पुरूष से पिछडी हुई हैं।

आर्थिक कार्यो में महिलाओं की सहभागिता न्यून है। महिलाओं की स्थिति पुरूषों की तुलना में द्वितीयक मानी जाती है तथा विकास के वास्तविक अर्थो में वह बहुत दूर है। महिलाओं की पिछड़ी हुई स्थिति में सुधार करने उन्हें अपने अधिकारों व शक्तियों के प्रति जागरूक करने व अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानवीय संसाधन को विकास कार्य में नियोजित करने के लिए उन्हें शिक्षित करने एवं समान अधिकार प्रदत्त करने की आवश्यकता है। महिलाओं को शिक्षा के माध्यम सें समानता, न्याय, स्वतन्त्रता आदि सामाजिक लक्ष्यों को प्रदान किया जा सकता है। महिलाओं की अपनी संवैधानिक एवं वैधानिक अधिकारों के प्रति चेतना प्रदान कर आत्मबल का विकास करना तथा ज्ञान व कुशलता के उच्च स्तरों को अर्जित करना हो सकता है।

लिंग संवेदी शिक्षण में अध्यापक की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो सकती है। अध्यापक अपने विद्यार्थी के साथ कैसे व्यवहार करे एवं उसके सम्बन्ध कक्षा-कक्ष में तथा कक्षा-कक्ष के बाहर विद्यार्थियों के साथ किस प्रकार हो इसको **राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा- 2005** के बिन्दु संख्या 2. 'सीखना और ज्ञान' के उपबिन्दु ‘विवेचनात्मक शिक्षाशास्त्र' में इस प्रकार वर्णित किया गया है-

"अध्यापक की भूमिका है बच्चों की अभिव्यक्ति के लिए एक सुरक्षित स्थान व अवसर देना और साथ ही निश्चित प्रकार की अन्त: क्रिया स्थापित करना। उन्हे 'नैतिक सत्ता' की परम्परागत भूमिका से बाहर निकलना होगा और यह सीखना होगा कि बिना निर्णयात्मक हुए सहानुभूति के साथ कैसे सुनते हैं। बच्चों को एक दूसरे को सुनने में सक्षम बनाना होगा। शिक्षार्थियों की समझ को समेकित कर रचनात्मक रूप से उस समझ की सीमाएँ बढ़ाते हुए इस बात के प्रति सचेत भी करना होगा कि मतभेद या अंतर किस

प्रकार व्यक्त किए जा सकते हैं। परस्पर विश्वास का वातावरण कक्षा के बच्चों के लिए एक ऐसा सुरक्षित स्थान बना देगा जहाँ वे अनुभव बाँट सकें, जहाँ विवाद को स्वीकार कर उन पर रचनात्मक प्रश्न उठाए जा सकें, और जहां विवादों के हल, परस्पर सहमति से निकाले जा सकें चाहे वह हल कितने ही अस्थाई क्यों न हों। विशेषकर लडकियों व वंचित सामाजिक वर्ग से आए बच्चों के लिए कक्षा व स्कूल ऐसे स्थान पर होने चाहिए जहाँ वे निर्णय लेने की प्रक्रिया पर चर्चा कर सकें, अपने निर्णय के आधार पर प्रश्न उठा सकें तथा सोच समझ कर विकल्प चुन सकें।"

लिंग संवेदी एवं लैंगिक समानता हेतु विभिन्न शिक्षण प्रतिविधियाँ कक्षा-कक्ष में बालक-बालिका सम्बन्धों तथा अध्यापक विद्यार्थी सम्बन्धों पर आधारित हैं। यह मुख्य रूप से निम्नांकित बिन्दुओं पर आधारित है -

लैंगिक रूढ़िवादी विचारों का चुनौती प्रदान करना यथा-बालिकाओं को उच्च शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। गणित, विज्ञान, तकनीकी आदि विषयों का पढने की उनमें कम योग्यता होती हैं।

लैंगिक हिंसा, अपशब्द आदि के विरूद्ध जागरूकता उत्पन्न करना एवं अध्यापकों के माध्यम से विद्यार्थियों में जागरूकता बढ़ाना।

विद्यालय का संगठन, वातावरण एवं अनुशासन बालिका के प्रति सहयोगात्मक हो।

सहशैक्षिक गतिविधियों यथा-खेलकूद, वाद-विवाद, नाटक मंचन आदि में बालकों के साथ बालिकाओं को अवसर प्रदान करना।

महिला शिक्षिकाओं को प्रोत्साहन एवं सम्बल देना क्योंकि वे विषम सामाजिक परिवेश में कार्य करती हैं। प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा की पाठ्यवस्तु को लिंग संवेदी बनाना जिसमें महिलाओं की सकारात्मक भूमिका दर्शाना चित्रों व उदाहरणों में लैंगिक समानता को दर्शाना।

लिंग संवेदी मुद्दों की पहचान कर, लिंग विभेद को दूर करने का प्रयास करना।

बालिकाओं को शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने हेतु विभिन्न गतिविधियों का आयोजन करना। राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित नीतियों की जानकारी रखना एवं उनका पालन पूर्ण दृढ़ता से करना।

लिंग संवेदी शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षक की निर्णायक की भूमिका के स्थान पर निर्णय प्रक्रिया में सहयोगी की भूमिका का निर्वहन करना होगा। शिक्षक अपनी कक्षा में पढने वाली प्रत्येक बालिका को प्रेरित करे कि वह शिक्षा में श्रेष्ठ उपलब्धि प्राप्त करें।

बालिका की योग्यता को कम न आंके, उन्हे, उन्हें स्वयं की इच्छानुरूप विषय चयन में सहयोग करें। कक्षा-कक्ष में उन्हें बालकों के समान ही महत्त्व दें, बालिका द्वारा किए गए कार्य की सराहना करें एवं उन्हें बेहतर कार्य हेतु प्रेरित करें।

बालिका के अध्ययन में आने वाले अवरोध को दूर करने का प्रयास करें जिससे वे सरलता से ज्ञानार्जन कर सकें। उनकी प्रगति को रोकने वाले मुद्दों को आगे न बढ़ाए।

कक्षा-कक्ष में बालिकाओं द्वारा दिए गए सुझावों एवं विचारों को महत्त्व दें। उनके साथ विनम्र व समानता का व्यवहार रखें।

बालिकाओं में आत्म सम्मान, आत्म विश्वास व सकारात्मक सोचा विकसित करें। कक्षा- कक्ष की निर्णय प्रक्रिया में उन्हे भी भागीदार बनाएं।

बालिकाओं द्वारा अनुभूत समस्याओं को नजर अंदाज न करें। ऐसी बालिकाएँ जो समस्याग्रस्त हो उनसे तद्भूति रखें। जो संभावित रूप से विद्यालय परित्याग करने वाली हों उनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान दे। अनेक बालिकाएं शिक्षा देर से प्रारंभ कर पाती हैं। उन्हे उनकी शैक्षिक यात्रा में यथा संभव सहयोग प्रदान करें जिससे वे अपनी उस की अन्य बालिकाओं के बराबर आ सकें।

किशोर बालिकाओं के स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं में सही मार्गदर्शन प्रदान करें।

10.9 सारांश

राष्ट्र के आर्थिक विकास हेतु महिलाओं की क्षमता का उपयोग पूर्ण रूप से किया जाना होगा। इसके लिए उनके नामांकन के साथ ही अच्छी गुणवत्ता वाली नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त हो यह आवश्यक है जिससे वह अपनी शैक्षिक योग्यता में सरलता से अभिवृद्धि कर सके अर्थात कक्षा पुनरावृत्ति एवं विद्यालय परित्याग की दर कम हो सकें। शिक्षा में गुणवत्ता महिला पुरूष समानता को प्राप्त करने में सहायक हो सकती है। गुणात्मक शिक्षा मात्र संसाधन जुटाने से प्राप्त नहीं होती है बल्कि लैगिक विभेद को कम किए जाने के लिए लैगिक संवेदनशीलता के साथ अध्यापन कार्य, समुदाय के सहयोग व सृजनात्मक समाधानों की आवश्यकता होगी। शिक्षक को रूढ़िवादी विचारों का परित्याग कर चेतना जागृत करनी होगी एवं स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप समाधान खोजने होंगे।

कोई भी व्यक्ति अपनी पूर्ण योग्यताओं का विकास शिक्षा के बिना नहीं कर सकता है और न ही वह सुयोग्य नागरिक के रूप में अपना योगदान दे सकता है। शिक्षित महिला अपने परिवार को सीमित रखती है जिससे वह अपने जीवन स्तर को सुधारने के साथ ही राष्ट्र व समाज में आर्थिक व सामाजिक योगदान भी देती है। विभिन्न लिंग भेदी रूढ़िवादी विचारधाराओं एवं मुद्दों को शिक्षा से समाप्त करने के लिए शिक्षकों की मानसिकता में परिवर्तन तथा उन्हें इसके लिए प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। बालिकाओं को अधिकाधिक शिक्षा की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए लिंग संवेदी शिक्षक प्रशिक्षण आवश्यकता है। इस परिप्रेक्ष्य में शिक्षका को अपनी भूमिका निर्धारित कर विद्यालय एवं कक्षा-कक्ष में ऐसे वातावरण का निर्माण करना होगा जिसमें बालिकाओं का आत्म विश्वास एवं उनमें सकारात्मक सोच विकसित हो। बालिकाएं शिक्षार्जन के दौरान स्वयं निर्णय ले सकें, अपनी रूचि अनुरूप विकल्प चुन सकें इस हेतु सक्षम बनानें का प्रयत्न शिक्षक को करना होगा।

10.10 अभ्यास प्रश्न

1. नारीवादी शिक्षक, शिक्षण अधिगम के समय कक्षा को किस प्रकार नियंत्रित करता है? प्रकाश डालिये।
2. एक नारीवादी शिक्षक मूल्यांकन हेतु किन उपकरणों एवं तकनीकियों का उपयोग करता है तथा क्यों? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

3. विभिन्न आयोगों तथा समितियों द्वारा -लैंगिक समानता के संदर्भ में दिए गए पाठयक्रम संबंधी सुझावों की व्याख्या कीजिए।

4. पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों को लैंगिक पक्षपात से मुक्त रखने के लिए इनके निर्माण के समय किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए?

5. भारतीय परिप्रेक्ष्य में लिंग संवेदी शिक्षक प्रशिक्षण क्यों आवश्यक है?

6. परम्परावादी समाज में रूढ़िबद्ध धारणाएं विकास में किस प्रकार बाधक होती हैं, वर्णन कीजिए?

7. शिक्षा के द्वारा लैंगिक समानता लाने के लिए शिक्षक की परिवर्तित भूमिका क्या हो सकती है, व्याख्या करें।

8. शक्तियों में विभेद का क्या आशय है? शिक्षा के माध्यम से किस प्रकार इस विभेद को दूर किया जा सकता है, स्पष्ट करें।

9. लिंग संवेदी शिक्षा में शिक्षक शिक्षार्थी सम्बन्धो की विवेचना करिए।

10.11 संदर्भ ग्रंथ

- Aggarwal, J.C. (2003), "Modern Indian Education(History, D\development and problem), Shipra Publication, Delhi.
- Bhuimali, Anil (2004), "Education, Employment and Empowering Women", Serial Publications, New Delhi
- Sharma, Usha and Sharma , B.M. (1995), ''Women Education in Modern India ",Commonwealth Publishers, New Delhi.
- सिंह, अमरेन्द्र (2006), "शिक्षण कला" विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
- सिंह, नरेन्द्र और दत्ता, संजय (2007), "शैक्षिक एवं उदीयमान भारतीय समाज", जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर।
- शुक्ल रमाशंकर, डागर, बी.एस. और शुक्ल अनिल (1993) "शिक्षण एवं अधिगम के आधारभूत तत्व शिक्षक प्रकाशन, कोटा
- Aggarwal,J.C (2003), "Modern Indian Education (History, development and problems)"s, Shipra Publication, Delhi.
- Bhuimali, Anil (2004), "Education, Employment and Empowering Women", Serial Publications, New Delhi

- Prasad, JANARDAN AND Kaushik, Vijay (1997), “ Advanced Corriculum Construction, “Kanishka Publishess, New Delhi
- Sharma, Usha and Sharma, B.M(1995) , “Women Education in Modern India”, Commonwealth Publishers, New Delhi.
- NCERT , New Delhi, National Focus Group-Position Paper, National Concern- Gender Issues in Education.
- Unesco, Education for all –Global monitoring Report 2003,04,07
- Arun C. Mehta- Student Flow at Primary Level National university of Educational Planning and Administration, 2007
- Pratham Resource Center “Annual Status of Education Report 2005” Pratham, Mumbai, 2006
- शिक्षा एवं उदीयमान भारतीय समाज: डॉ. सरोज शर्मा, श्याम प्रकाशन, जयपुर।
- भारत में नारी शिक्षा': जेसी अग्रवाल, विद्या विहार नई दिल्ली।
- नारी सशक्तिकरण विमर्श एवं यथार्थ: आशा कौशिक, पोईन्टर पब्लिशर्स जयपुर।
- नारी सशक्तिकरण हरिदास राम जी शेण्डे, ग्रंथ विकास, सी-37 पंचवटी, राजा पार्क, आदर्श नगर, जयपुर।
- भारतीय नारी: वर्तमान समस्याओं और भारी समाधान : डॉ. आर. पी तिवारी एवं डॉ. डी.पी शुक्ला, ए.पी.एच. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, नई दिल्ली।
- समाज और नारी मानचन्द खण्डेला, अरिहंत पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005

Websites

- http://filebox.vt.edu/users/bhausman/information/femped.html
- http://radicalpedagogy.icaap.org/content/issue2-2/Schacht.html
- http://www.csse.ca/CJE/Articles/full teret/CJE 17-3/CJE 17-3-01B
- http://www.genderandhealth.ca/en/modules/introducation-glossary.jsp.
- http://www.mynews.in/fullstory.aspx?storyid=17114.

- http.//www.rowan.edu/mass/depts./biology/faculty/tahamont/themesin.html
- http://f cis.oise. utoronto.ca/~daniel_schugurensky/faqs/qal7.html
- www.danderson@fullerton.edu.
- http://India-seminar.con\m/2004/536/536%20geetha%20b%
- http://Cities.expressindia.com/fullstory,phy?newsid
- http://www.education.nic.in/cd50year\9\T\HP\OTHPOIOI.htm
- http:/Jharkhand.gov.in\new-Depts\healt/healt-intervention3.html
- http://www.genderandhealth.ca/en/modules/intoroductionalintroduction-glossary.jsp
- http://www.education.nic.in\cd50year/Z/51/75/51750col.
- http://www.Un.org/women watch/daw/cedaw/text/econvention.htm
- http://www.coe.int/T/E/Human-Rights/Equality/02-Gender-manstreaming
- http://www.thecommonwealth.org/shared-asp-files\upfolded-files
- http://www.desk.inc.in/schemes/SSA.html
- 11http://www.Unescobkk.org/education/appeal/programme-themes/gender/themes/gender-resp.
- http: www.wadanatodo.net/images/160407/Gender Ncmp-Eng.pdf
- http://www.Un.org/women watch/osagi/gendermainstreaming.htm.